हिंदी साहित्य विशेषांक

भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य

VALUME- 5

SPECIAL ISSUE NO - 22

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal

Impact Factor 4.574 ISSN –2349-638x

UGC Approved Sr.No.64259

अतिथी संपादक

डॉ.अरिफ महात

मुख्य संपादक

प्रमोद प्र. तांदळे

PUBLICATION DETAILS

विषय	भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य
संपादक	प्रमुख संपादक – प्रमोद प्र. तांदळे अतिथी संपादक डॉ. अरिफ महात
प्रकाशक	**Aayushi International Interdisciplinary Research Journal** **Impact Factor 4.574** **UGC approved No.64259** **Website :- www.aiirjournal.com**
ISSN No.	**2349-638x**
Edition	Published in March 2018
Disclaimer	• We do not warrant the accuracy or completeness of the information, text, links or other items contained within these articles. • We accept no liability for any loss, damage or inconvenience caused as a result of reliance on such content. • Only the author is the authority for the subjective content and may e contacted. • Any specific advice or reply to query on any content is the personal opinion of the author and is not necessarily subscribed to by anyone else.
©	All rights are reserved
Warning	• No part of this publication may be reproduced, reprinted, translated and stored in the retrieval system, transmitted or utilized in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author.

संपादकीय

20 वीं शताब्दी के अंतिम दौर में भूमंडलीकरण ने अपने पैर पसारने शुरू किए। लेकिन आज ये अपने उच्चतम स्तर पर विराजमान है। भूमंडलीकरण का संबंध अर्थतंत्र से जुड़ा हुआ है। समूचा वि"व आर्थिक मापदंड को केंद्र में रखकर अग्रेसित हुआ। बाजारवाद का एक भूचाल चला जिसकी चपेट में समूचा वि"व आ गया। जब कोई नई व्यवस्था जन्म लेती है तो अपने साथ बदलाव लाती है। पूरी व्यवस्था को उससे तालमेल बिठाने में अर्सा बीत जाता है। कहीं–कहीं नए पुराने के बीच टकराहट होती है। इससे उत्पन्न मोह, आकांक्षा, संघर्ष आदि तत्कालीन समय पर छाए रहते हैं। भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बात की जाए तो, अर्थतंत्र का फैलता यह मायाजाल समाज, साहित्य एवं संस्कृति को भी अपने घेरे में लेने से नहीं चुका। भूमंडलीकरण से वि"वभर में आर्थिक क्रांति संभव हुई। समुचा वि"व एक ग्राम में तब्दील हुआ। 'वसुधैव कुंटुंबकम' की संकल्पना को मूर्त रूप देने का काम भूमंडलीकरण से संभव हो पाया, इसमें दोराय नहीं।

प्रस्तुत वि"ोषांक में भूमंडलीकरण का हिंदी साहित्य पर पड़े प्रभाव को रेखांकित किया गया है। भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, भूमंडलीकरण का भाषा पर पड़ता प्रभाव , भूमंडलीकरण और राष्ट्रीयता आदि पर सविस्तार चर्चा की गई है। यकिनन यह विषय गहन चर्चा एवं शोध की माँग करता है। वि"ोषांक प्रस्तुत लेखों की प्रामाणिकता एवं मौलिकता का संपूर्ण दायित्व लेखकों पर है। हाँ सभी साथी लेखकों के बिना कार्य करना हमारे लिए सहज एवं सरल न था। इस वि"ोषांक के अतिथि संपादक का दायित्व मुझे सौंपने के लिए मैं प्रमुख संपादक श्री. प्रमोद तांडले जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

मुझ आ"ाा है इस वि"ोषांक को हिंदी के पाठक पढ़कर लाभान्वित होंगे और यह वि"ोषांक शोधार्थियों, पाठको को एक नि"चित सुगम मार्ग प्रदान करने का काम करेगा।

डॉ. आरिफ महात।
अतिथि संपादक
हिंदी विभागाध्यक्ष्य, सहायक प्राध्यापक,
विवेकानंद महाविद्यालय, कोल्हापुर।

Sr.No.	Author Name	Research Paper / Article Name	Page No.
1.	डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल	भूमण्ड़लीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य	1 To 5
2.	डॉ. ओमप्रकाश बन्सीलाल झंवर	भूमंडलीकरण और हिन्दी भाषा	6 To 7
3.	डॉ. भानुदास आगेडकर	वैश्विक संदर्भ में शोषितों का साहित्य: हिंदी नाटक	8 To 12
4.	डॉ. गोरखनाथ किसन किर्दत	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य 'दौड' के विशेष संदर्भ में	13 To 14
5.	डॉ. मीना भंडारी	भूमंडलीकरणः आर्थिक परिणाम और साहित्य (शंकर पुणतांबेकर के विशेष संदर्भ में)	15 To 19
6.	डॉ. बबन शंकर सातपुते	सन्त साहित्य और वैश्वीकरण : मूल्याधिष्ठित सामाजिकताकी प्रत्याशा	20 To 22
7.	प्रा॰ स्मिता मिस्त्री	भूमंडलीकरण और भाषा	23 To 25
8.	डॉ.सरोज पाटील	भूमंडलीकरण से प्रभावित भारतीय युवा वर्ग (उपन्यास 'दौड' के विशेष संदर्भ में)	26 To 28
9.	डॉ.नजमा मलीक	वैश्वीकरण और साहित्य (वैश्वीकरण और समकालीन कविता)	29 To 31
10.	प्रा. हेतल डी देसाई	भूमंडलीकरण और मानवीय मूल्य	32 To 34
11.	आशीष कुमार गुप्ता	आधुनिक हिन्दी कविता का यथार्थः वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में	35 To 36
12.	डॉ.शोभा माणिक पवार	भूमंडलीकरणके परिप्रेक्ष्य मे बदलते सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य (कविताओं के संदर्भ में)	37 To 39
13.	डॉ.शाहीन अब्दुल अजीज पटेल	हिंदी काव्य में भूमंडलीकरण	40 To 42
14.	डॉ. पर्वज्योत कौर	भूमण्डलीकरण और हिन्दी	43 To 46
15.	प्रा. अंजना एल. पटेल	भूमंडलीकरण और बाजारवाद	47 To 50
16.	गणेश ताराचंद खैरे	नासिरा शर्मा के कथा साहित्य पर भूमंडलीकरण का प्रभावः 'संस्कृति' के विशेष संदर्भ में	51 To 53
17.	प्रा.डॉ. संतोष विजय येरावार	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य- विशेष संदर्भ हिन्दी उपन्यास	54 To 56
18.	डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा का परिवर्तित रुप	57 To 58
19.	प्रा.डॉ.उत्तम लक्ष्मण थोरात	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य- 'दौड' उपन्यास के विशेष संदर्भ में	59 To 60
20.	प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य(मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	61 To 63

Sr.No.	Author Name	Research Paper / Article Name	Page No.
21.	प्रा. डॉ. शेख मुखत्यार शेख वहाब	सुनीता जैन के कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण	64 To 67
22.	प्रा. डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर	भूमंडलीकरण और हिंदी भाषा	68 To 70
23.	डॉ.नवनाथ गाड़ेकर	हिंदी सिनेमा : संदर्भ और प्रकृति	71 To 72
24.	प्रा. एन. व्ही. जाधव प्रा. वाय. एस. गायकवाड	भूमंडलीकरण और हिंदी कविता : संवेदना के स्वर	73 To 76
25.	डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य ('ईंधन' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	77 To 80
26.	प्रा. चौधरी अनिता विश्वानाथ	भूमंडीलीकरण की चुनौतियाँ : संचार माध्यम और हिंदी का संदर्भ	81 To 83
27.	डॉ. आरिफ जमादार	भूमंडलीकरण और राष्ट्रवाद	84 To 85
28.	प्रा. नयन भादुले–राजमाने	भूमंडीलीकरण और हिंदी भाषा	86 To 87
29.	प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड	'नस्ल' कहानी में बाजारवाद	88 To 94
30.	डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत	वैश्वीकरण – बाजारीकरण और हिंदी	95 To 97
31.	डॉ.दीपक रामा तुपे	टूटते सपनों का कडुआ सचः जानकीदास तेजपाल मैनशन	98 To 100
32.	व्यंकट बा. धारासुरे	समकालीन हिंदी कविताओं मेंभूमंडलीकरण एवं युगबोध	101 To 104

www aiirjournal.com
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

भूमण्ड़लीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल,
शिवळे महाविद्यालय, शिवळे,
ता. मुरबाड, जि. ठाणे.

विषय प्रवेश :-

२० वीं शताद्वी के अंतिम दशक की शुरूआत में यूपीए सरकार में जब मनमोहन सिंह वित्त मंत्री बने, तब से हमने भूमण्ड़लीकरण को अपनाना प्रारम्भ किया था। उन्होंने 'विश्वग्राम' की अवधारणा को कार्यन्वित करते हुए भूमण्ड़लीकरण के महत्त्व को स्थापित करने का संकल्प लिया था। सन् १९९५ में गैट (GATT) करार का परिवर्तित स्वरूप, विश्व व्यापार संघटन (WTO) की स्थापना के उपरान्त भारत में भूमण्ड़लीकरण का दौर अधिक तेजी से पनपने लगा। वस्तुतः भूमण्ड़लीकरण की प्रक्रिया व्यापार को लेकर है। आज पूरा विश्व एक गाँव (Golbal Village) में परिवर्तित हो रहा है। आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण इसीकी उपज है। इन्टरनेट, स्पेशल इकॉनॉमिक झोन (SET), मॉल, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDT), आऊट सोअर्सिंग (BPO), इलेक्ट्रानिक मीडिया, मॉडेलिंग, विज्ञापन, विपनन (Marketing), ई-बैंकिंग, ई-कॉमर्स जैसे क्षेत्र भूमण्ड़लीकरण के साथ विस्तार पा रहे हैं। बढ़ते व्यापारीकरण ने समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य, संस्कृति के साथ रोजमर्रा की जिन्दगी को भी प्रभावित किया है।

'भूमण्ड़लीकरण' का पर्यायवाची शब्द है- 'वैश्वीकरण', जिसे अंग्रजी में 'Globalozation' कहा जाता है। 'भूमण्ड़लीकरण' शब्द का अर्थ हैं- 'भू' अर्थात् 'भूमि' और 'मण्डलीकरण' का अर्थ है- 'समाहित करना'। भूमण्ड़लीकरण व्यापार विषयक नियमों की वैश्विक एकता के लिए लायी गयी प्रक्रिया है, जो विश्व के लोग, कम्पनियाँ तथा विविध राष्ट्रों की सरकारों को एक ही व्यापार विषयक नियमावली में बाँधने का कार्य करती है। उत्पाद, विचार, दृष्टिकोण तथा अन्य सांस्कृतिक आयामों का यह एक साझा मंच है। यह आर्थिक परिवेश का अन्तर्राष्ट्रीय संजाल है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एकीकरण भूमण्ड़लीकरण या वैश्वीकरण कहलाता है। भूमण्ड़लीकरण विविध राष्ट्रों के लोगों, कम्पनियों तथा सरकारों के एकत्रीकरण की प्रक्रिया है, ऐसी प्रक्रिया जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा निवेश द्वारा चलयी जाती है और सूचना प्राद्योगिकी से पोषित होती है। इस प्रक्रिया का परिणाम पर्यावरण, संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक विकास तथा तरक्की और विश्वभर के मनुष्य के सामाजिक कल्याण पर होता है।''[१]

भूमण्ड़लीकरण को 'अपसंस्कृति' कहते हुए डॉ. पुष्पपाल सिंह ने लिखा है - ''भारत के परिप्रेक्ष्य में इस अपसंस्कृति ने विशेषतः हमें किस प्रकार प्रभावित किया है इसका संक्षिप्त आकलन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है -

१. उपभोक्तावाद तथा ब्राण्डिड़ संस्कृति,
२. मीड़िया जगत : टी. वी. तथा समाचार पत्र,
३. विज्ञापन का मायावी जगत,
४. अश्लीलता और नई नैतिकताएँ,
५. नई नारी चेतना,
६. सांस्कृतिक विस्तापन (डॉयस्पोरा),
७. भ्रष्टाचार,
८. अपराध जगत,
९. आतंकवाद,
१०. भाषा और साहित्य।

इन सब बातों को बिल्कुल अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। ये परस्पर अन्तर्ग्रन्धित है।''[२]

भूमण्ड़लीकरण पूरे विश्व को एक परिवार में तब्दील करने में लगा है। पूरे विश्व को एक गाँव (Global Villege) में परिवर्तीत करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सपनें दिखा रहा है, सबको बराबरी के मोहजाल में फँसाने की कोशिश कर रहा है, लेकिन यह भ्रम है। भूमण्ड़लीकरण के असली चेहरे पर प्रकाश डालते हुए विख्यात वैज्ञानिक प्रो. यशपालजी ने लिखा है- ''भूमण्ड़लीकरण का अर्थ यह नहीं कि यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी बात बिल्कुल नहीं हैं। भूमण्ड़लीकरण एक स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है, जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके

पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होगी। उन्हें कैसे होना चाहिए।"[३]

भूमण्ड़लीकरण अपने मूलभूत आशय में मुक्त अर्थव्यवस्था का पक्षधर है। इसमें व्यापार सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने, पूँजी पर से राज्य के नियंत्रण को हटाने तथा विदेशी विनिमय के स्वच्छन्द प्रसार को प्रमुखता दी जाती है। भूमण्ड़लीकरण देश के नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के अपने संवैधनिक दायित्व का निर्वहन करने की बजाय बाज़ार के हितों के संरक्षण को प्राथमिकता देता है। पिछले ढ़ाई दशकों में बाज़ार भूमण्ड़लीकरण की समूची प्रक्रिया की चालाक शक्ति बनकर उभरा है। यहाँ सपने दिखाए ही नहीं जाते, बेचे भी जाते हैं, और इस समूची प्रक्रिया में उलझकर व्यक्ति एक उपकरण बनकर रह जाता है। आज की विचारहीनता, तनवाग्रस्त मनःस्थिति तथा वृद्धावस्था का एकाकीपन भूमण्ड़लीकरण के सह उत्पाद है । उसने आतंकवाद एवं साम्प्रदायिक घृणा को वैश्विक प्रसार दिया है। आतंकवाद पूँजीवादी शक्तियों के हाथ का खिलौना है। बाज़ार की शक्तियाँ इसका अपने निहित स्वार्थों के लिए उपयोग करती है। भूमण्ड़लीकरण ने हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं आत्मीय सम्बन्धों पर सर्वाधिक चोट की है। इसने मानव जीवन के सभी पक्षों- धर्म, संस्कृति, राजनीति, व्यक्ति, समाज और विचार- को गहराई से प्रभावित किया है। "भूमण्ड़लीय दुष्प्रभावों को लेकर समस्त देशों का साहित्य चिंतित हैं। विशेषतः तीसरी दुनिया के विकसनशील राष्ट्रों के साहित्य में अमीरी-गरीबी के बीच की बढ़ती खाई और मनुष्यता को छीजने की पीड़ा गहराई से अभिव्यक्त हुयी है।"[४]

हिन्दी कविता में अभिव्यक्त भूमण्ड़लीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य :-

भूमण्ड़लीकरण ने विश्व को पहले की अपेक्षा आज कहीं अधिक प्रभावित किया है। एक बहुत बड़ी आबादी का गाँव से शहर की तरफ तेजी से पलायन, विकासशील देशों में नगरीकरण की प्रक्रिया में अभिवृद्धि, निम्न-जीवन-स्तर, पारिवारिक विघटन, सामाजिक एवं पारिवारिक हिंसा में बढ़ोत्तरी, प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति की ओर झुकाव, धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में विवेक का ऱ्हास, सहनशीलता में कमी तथा जातीय अस्मिता, परिवार एवं परम्परा की अवधारणा में तीव्र परिवर्तन तथा मादक द्रव्यों के व्यापार और अपराध के स्वरूपों में आश्चर्यजनक बढ़ोत्तरी को भूमण्ड़लीकरण के परिणाम के रूप में देखा जाता है। भूमण्ड़लीकरण ने समूचे विश्व में पूँजीवादी संस्कृति, तर्कहीन-विचार-प्रणाली एवं उन्मुक्त अर्थतंत्र को बढ़ावा दिया है। इससे बहुराष्ट्रीय निगमों को स्वयं को प्रमुखता से स्थापित करने में मदद मिली है। इस नई आर्थिक संस्कृति में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को निरंतर प्रश्रय मिला है। भौतिकतावादी लिप्सा अब चरम पर पहुँची है। इसने व्यक्ति के मन और सोच को बदल दिया है। अपना ही परिचित अपरिचित लगने लगा है। नैतिकता दम तोड़ चुकी है। मानवीय मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं बचा है। विकास कार्यों के कारण स्थानगत दूरियाँ तो घट गई हैं लेकिन दिलों की दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। व्यक्ति संवेदनहीनता और संवादहीनता का शिकार बनता जा रहा है। इस कटु यथार्थ को कवि मंगेलश डबराल अपनी 'यह नम्बर मौजुद नहीं' कविता में इस तरह व्यक्त करते हैं-

"जहाँ भी जाता हूँ जो भी फोन मिलता हूँ
अक्सर एक बेगानी-सी आवाज सुनाई देती है
दिस नम्बर इज नॉट एग्जिस्ट, यह नम्बर मौजुद नहीं हैं।"[५]

बाज़ारवाद हमारी सांस्कृतिक धरोहर को नष्ट कर रहा है। हमारे रिश्ते-नाते टूट रहे हैं, रिश्तों की आत्मीयता, गरमाहट बाज़ारवाद के कारण खत्म हो रही है। लोग मोबाईल फोन द्वारा मैसेज से, ई मेल से, वॉटसअप से अपना समाचार देकर और लेकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ रहे हैं। कवि राजेश जोशी इस बाज़ारवाद से उपजी संचार संस्कृति के खतरों से लोगों को आगाह करते हुए लिखते है- "कम हो रहा है मिलना-जुलना/ कम हो रही है लोगों की जान पहचान/ सुख-दुःख में भी पहले की तरह इकठ्ठे नही होते लोग/ तार से आ जाती है बधाई और शोक संदेश/"[६]

विकास के नाम पर बाज़ार द्वारा दिया गया नायाब तोहफा अर्थात् गजट्स से अपसंस्कृति बढ़ती जा रही है। इसके माध्यम से युवाओं को अपनों की दुनिया में ले जाकर मानवीय दुनिया को उजाड़ने की कोशिश हो रही है। जितने ज्यादा रिश्ते बनते जा रहें हैं, उतने ही सम्बन्ध कम होते जा रहे हैं। फ्रेंड लिस्ट जितनी लम्बी हो रही हैं, मित्रों की संख्या उतनी ही कम हो रही है। विनोद दास की 'युवा' कविता आज के युवाओं की मनःस्थिति और सम्बन्धहीनता को बखूबी व्यक्त करती है-

"रिश्तों के व्यापार में/ बदलने की कला में पारंगत यह नौजवान अकेला नहीं हैं/ मोबाईल, लैपटॉप की बटनों में छुपे हैं/ बेशुमार दृश्य।"[७] बाजारवाद का असर हमारे जीवन के हर क्षेत्र में पड़ा है, पर सबसे ज्यादा हताहत हमारी संवेदनाएँ हुयी हैं। आज रिश्ते बेमानी हो गये हैं, दिखावटी संस्कृति

जीवन की वास्तविकता बन गई है। आकर्षण हमारे जीवन का केन्द्र बन गया है। हमारे सांस्कृतिक मूल्य अपना महत्त्व खोते जा रहा हैं। युवकों में बढ़ती हुयी अपसंस्कृति और नैतिक मूल्यों का ऱ्हास स्पष्ट दिखाई दे रहा है। आज का युवक- ''सीटी बजाते हुए/ कई लड़कियों को एक साथ करेगा/ एस. एम. एस./ कोई फूहड़ चुटकुला/ अथवा घटिया शेर/''[८] कहता हुआ नज़र आ रहा है।

भूमण्ड़लीकरण, उदारीकरण और नीजीकरण की प्रक्रिया में ना केवल आर्थिक नीति का विश्वस्तर पर आदान-प्रदान हुआ, बल्कि सम्पूर्ण वैश्विक धरातल पर अनेक संस्कृतियों का मिश्रण भी हुआ। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने नए रोजगार के द्वार खोलकर जीवन समृद्ध बनाने का अवसर तो दिया, साथ ही स्थलांतरण की विभीषिका भी प्रदान की। गाँव से शहर, शहर से महानगर तथा महानगर से विदेश की तरफ पलायन आज के उच्चशिक्षित वर्ग की नियति बन गया। महानगरीय जीवन की पीड़ा को भोगने के लिए वह अभिशप्त बन गया। अजनबी शहर उनके लिए शाप बनता गया। कवयित्री नीलेश रघुवंशी अपनी कविता 'अजनबी शहर' में इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखती है-

''बहुत अजनबी है यह शहर
अजनबी शहर का हर पेड़ भी अजनबी-सा
अजनबी से कतराते से फूल
इस अजनबी से शहर में ढूँढ़ती हूँ
अपने शहर-सी कोई गली।''[९]

कवयित्री निर्मला तोदी ने अपनी 'कुली' शीर्षक कविता में स्टेशन पर कुलीयों के कम दिखने पर चिंता व्यक्त कहते हुए लिखा है-

''छोटी-बड़ी पेटियों में चक्के जो लग गये हैं/ वही चक्के/ कुलियों को भी लग गये हैं/ वे चले गये हैं। किसी दूसरे ही स्टेशन पर/''[१०] यहाँ चक्का विस्थापन का प्रतीक है। चक्के से सुविधाएँ बढ़ी लेकिन कुलियों का विस्थापन हुआ, जो चिंता का विषय हैं।

भूमण्ड़लीकरण से उपजे बाजारवाद और मॉल संस्कृति का आकर्षण इतना अधिक लुभावना और मोहक हैं कि हम भूल जाते हैं कि बाजार का एक ही लक्ष्य होता है- मुनाफा कमाना। बाज़ार में केवल चीजें और आवाजें होती हैं। वहाँ स्थित व्यक्ति या तो दूकानदार होता है या खरीददार। बाज़ार केवल सिक्के की भाषा बोलता-सुनता है-

''कुछ आवाजों में/ सिर्फ सिक्के सुनाई देते हैं/ मैं उनपर यकीन नहीं करता/ चाहे सचीन बोल रहे हो/ या अमिताभ या मनमोहन सिंह/''[११]

बाज़ारवाद की समस्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। इस बाज़ारवाद ने केवल नगरों एवं महानगरों को ही प्रभावित नहीं किया है, अपितु इसके प्रभाव में छोटे-छोटे शहर और गाँव भी आ रहे हैं। भूमण्ड़लीकरण की उपज इस बाज़ारवाद ने पूरे विश्व को आकर्षित किया है। आज बाज़ार बोलता है और आदमी सुनता है। बाज़ार के शोर मे आदमी की आवाज मन्द पड गयी है। अब बाज़ार की वस्तुएँ जो बोलती है, आदमी वही सुनता है। वस्तुओं से बाज़ार पटा हुआ है। जहाँ कल होटल था, वहाँ चाय पीने के बहाने मित्र एक-दूसरे से मिलते थे, सुख-दुःख, प्रेम की बातें हेती थी, वही आज जूतों की चमचमाती आलीशान दुकान बन गयी है- ''यही है हमारे समय का एक सबसे पूरा बिम्ब/ और एक दिलचस्प प्रहसन भी/ कि जो जगह भरी होती थी कभी खूबसूरत शब्दों से/ वहाँ अब चमकदार जूते भरे हैं/ और उनमें न किसी यात्रा की धूल है/ न किसी पाँव के पसीने की गंध/''[१२]

उपभोक्ता संस्कृति ने इतने लोक लुभावने बाजार लगा दिये हैं कि हर वर्ग उसकी तरफ खिंचता जा रहा है। बाज़ार में व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है, चीजों से भरे हुए इस मायावी संसार में अजनबी। इस अकेलेपन को कवि कुँवर नारायण अपनी कविता 'बाज़ारो की तरफ भी' में व्यक्त करता हुआ कहता है-

''वैसे सच तो यह है कि मेरे लिए
बाज़ार एक ऐसी जगह है
जहाँ मैंने हमेशा पाया है
एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे
बड़े-बड़े जंगलों में भी नही मिला।''[१३]

बाज़ार ने मनुष्य के जीवन में इतनी गहरी पैठ बनायी है कि उसका पूरा जीवन अब बाज़ार नियंत्रित कर रहा है। सुबह जागने से लेकर सोने तक बाज़ार मनुष्य पर हावी है। चाहते हुए भी और न चाहते हुए भी वह बाज़ार की गिरफ्त में फँस गया है-

''कभी-कभी टहलते हुए निकल जाता हूँ,
बाज़ारों की तरफ भी
नहीं, कुछ खरीदने के लिए नहीं,
सिर्फ देखने के लिए कि इन दिनों
क्या बिक रहा है किस दाम
फैशन में क्या है आज कल।।''[१४]

बाज़ारवाद ने एक ऐसा मायाजाल निर्माण किया है कि सारे मानवीय सम्बन्ध बाज़ार के मापदण्ड पर आँके जाने लगे हैं। मुनाफा कमाना बाज़ार का एकमात्र लक्ष्य एवं धर्म होता है। इस लाभ की संस्कृति ने सभी मूल्यों को आज अप्रासंगिक बना दिया है। इसमें मीडिया का सहयोग भी महत्त्वपूर्ण रहा है। जिन वस्तुओं की हमें जरूरत नहीं होती, उन अतिरिक्त चीजों के प्रति आकर्षण पैदा करने में मीडिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पहले हमारी आवश्यकताओं के अनुसार बाज़ार होता था, अब बाज़ार के अनुसार हमें ढ़ाला जा रहा है। धीरे-धीरे घर अतिरिक्त चीजों से भर रहा है। कवि राजेश जोशी बाज़ारवाद के इस मायाजाल को 'अतिरिक्त चीजों की माया' कविता में इसतरह बयान करते हैं- ''बाज़ार से लेने जाता हूँ जरूरत की कोई चीज/ तो साथ थमा दी जाती है एक और चीज मुक्त/ उस चीज की कोई जरूरत नहीं मुझे/ पर लेने से इंकार नहीं कर पाता उसे/ और बस इसी तरह एक पल में पकड़ लिया जाता हूँ/ उस अतिरिक्त के लिए जरूरत की चीजों के बीच/ थोड़ी जगह बनाता हूँ/ तो जल्दी चीजों की जगह थोड़ी सिकुड़ जाती है/ अतिरिक्त हमारे मन की कमजोरी को पहचानता है/ लालच धीरे-धीरे पाँव पसारता है/ एक अतिरिक्त दूसरे अतिरिक्त को बुलाता है/ और दूसरा अतिरिक्त तीसरे अतिरिक्त के लिए जगह बनाता है/ एक दिन सारी जगह। अतिरिक्तों से भर जाती है/''[१५]

उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देने का श्रेय उन नेताओं को है जो व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति के लिए देश की बलि चढ़ा ने में संलग्न है। प्राकृतिक एवं जरूरत की वस्तुएँ भी अब ब्राण्ड बनती जा रही है-

''आज कल बेखौफ हमारी सरहदें पार कर रहें हैं
दवा, दारू, दन्तमंजन, लिपिस्टिक, कोक, पेप्सी, बर्गर
पूरे बाज़ार में मची है अफरा-तफरी।''[१६]

यह ग्राण्ड संस्कृति हमारी प्राकृतिक वस्तुओं पर भी कब्ज़ा करती जा रही है और हम लालसाओं के बाज़ार में इनकी किंमत लगाते जा रहे है। कवि विनोद दास इसी ब्राण्ड संस्कृति के आक्रमण से सचेत करते हुए कहते हैं-

''सब पर होता जा रहा है/ उनका कब्जा/ चाहे हवा हो या पानी/ अथवा हो सड़क/ बेसुध लगाते जा रहे हैं अपना मोल/ लालसाओं के बाज़ार में/''[१७]

परिवर्तन भले ही प्रकृति का नियम हो, लेकिन उदारीकरण की आँधी ने परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया को बाधित करके जो नई स्थितियाँ पैदा की हैं, उसमें सहजता के लिए स्थान नहीं हैं। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही हैं। ग्लोबल बनने के प्रयास में मानवीय सम्बन्ध लगातार क्षीण होते जा रहे हैं-

''बड़ी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बड़ा गाँव
लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के लिए अब कहीं नहीं जाना पड़ता
हर चीज समान रूप से मिलने लगती है, हर जगह
मनुष्य के सम्बन्ध बहुत पतले तारों से बाँध दिये गये हैं
जो बात-बात में टूट जाते हैं।''[१८]

वैश्वीकरण के तहत बन रही विकास योजनाओं ने सबसे अधिक अगर किसी को प्रभावित किया है, तो वह है आदिवासी समाज। प्रकृति के सान्निध्य में जीवन जीनेवाले आदिवासी समाज की एक अलग पहचान उनकी उन्मुक्त हँसी और संगीत-प्रेम के कारण रही है, लेकिन नये युग में यह आदिवासी ड़रा-सहमा, और उदास दिखाई दे रहा है। हर एक विकास परियोजना आदिवासी को उसके जंगल से खदेड़ने का खाका बन रही है। उन्हे निरंतर अपनी धरती से दूर किया जा रहा है। कवि मोहन कुमार डहेरिया आदिवासी प्रजाती के खत्म होने की पीड़ा को दर्ज करते हुए कहता है-

''वे जो लगाते थे अठ्टहास,
सुनाई देती उनके उल्हास में किसी आदिम नगाड़े की गड़गड़ाहट
झनझना उठती जिनके विलाप से पेड़ों की पत्तियाँ
किसी तहजीब में शामिल नहीं की गई कभी
जिनकी भाषा, तीज और त्यौहार
सेते रहे जो ताउम्र भूजाओं के डैने तले पक्षियों के अण्डों-सा,
इस पृथ्वी के जंगल, नदी, झरनें और पहाड
थे जो इस धरती के सबसे प्राचीन बाशिंदे,
जा रहे हैं इस धरती से बाहर।''[१९]

कितनी बड़ी विडम्बना है यह, मनुष्य के इतिहास में यह पहली बार हो रहा है कि मनुष्य की प्रजातियाँ खत्म हो रही है और मानव समाज अपने विकास की चरम राह पर है।

२०वीं शताब्दी के अंतिम दशक में समाज के आर्थिक ढ़ाँचे में तोड़फोड़, विचारधारा के संकट और वैश्वीकरण के चलते बने रहे नये सामाजिक यथार्थ को आत्मसात करने की चुनौती ने हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी कविता ने प्रतिवादधर्मिता का धर्म अपना लिया है। आज जब देश में अपहरण, हत्या और सामूहिक बलात्कार की घटनाएँ बढ़ती जा रही है, भ्रष्टाचार चरम शिखर पर है, विधि-व्यवस्था में लगातार गिरावट हो रही है और अमीर अमीर तथा गरीब गरीब होते जा रहे है, तो कौन

संवेदनशील प्राणी होगा जो संत्रस्त न होगा? देश का कोई सरकारी कार्यालय ऐसा नहीं है जहाँ बिना घूस दिये फाइल इधर से उधर कदम बढ़ाती हो। क्या मजाल कि ढूँढ़ने पर इसका तिनका भी मिल जाय। झूठ और भूख का यह कारोबार निरंतर फैल रहा है। बेहिसाब तरीके से। सच कही गायब है। भारतीय समाज में समय-समय पर जो सरकारी दमन-चक्र चलाये जा रहे है, उनका बेहद यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए विजेद्र अनिल अपनी प्रसिद्ध कविता 'फाइलें' में लिखते हैं-

"कहाँ हैं तुम्हारी फाइलें। जिनमें हड़ताली खान मजदूरों पर चलायी गयीं। गोलियों के आँकड़े हैं? कहाँ हैं वे फाइलें, जिनमें कैदी जवानों के सीनों में घुसेड़ी गई संगीनों के दाग हैं? कहाँ हैं वे फाइलें जिनमें आन्दोलनकारी छात्रों पर फेंके गये। टीयर गैस के गोलों और बन्दूक के छर्रों के निशान हैं? कहाँ हैं वे फाइलें? जिनमें जिन्दा जलाये गये हरिजनों और आदिवासीयों की। लावारिस लाशों की गंध हैं?"[२०]

भूमण्ड़लीकरण ने हमारे सामाजिक, राजनीतिक, संस्कृतिक, पारिवारिक एवं आत्मीय सम्बन्धों पर सर्वाधिक चोट की है। सब कुछ जैसे तार-तार होता जा रहा है। व्यक्ति की निजता एवं अस्मिता के दावे के बावजूद अधिकांश महिलाओं के घरेलू दायित्व में कमी नहीं आई है। भले ही कंम्पुटर एवं तकनीक ने मध्यवर्गीय शिक्षित महिलाओं को पहले से बेहतर मौके दिये हैं, लेकिन स्त्री-पुरूष के श्रम को आज भी बराबरी नहीं मिल पाई हैं। वेश्यावृत्ति, दुर्व्यवहार और दहेज से सम्बन्धित हत्याओं - आत्महत्याओं में वृद्धि हुयी हैं। कवि उदय प्रकाश 'पंचनामे में जो दर्ज नहीं है' शीर्षक अपनी कविता में नारी की दशा को इसतरह व्यक्त करते हैं-

"वर्षों तक, उन्हीं के खून और उन्हीं के रज से उनको नहलाते हुए/... किसी एक दिन उन्हें मिट्टी तेल या पेट्रोल में/ भिगोया गया और एक तीली उन्हे दिखाई गई/ या जिस तकिए में उन्होंने 'गुडनाइट' या नमस्ते और अज्ञात फूल काढ़/ रखे थे/ वही तकिया/ उनकी नाक में देर तक दबाया गया/"[२१]

सबको बराबरी का दावा करनेवाले भूमण्ड़लीकरण के समय भ्रूण-हत्याएँ बराबर हो रही है। 'औरतें' कविता में कवि उदय प्रकाश इसी समस्या से आँखे चार करते हुए लिखते हैं-

"हजारों, लाखों छुपती हैं गर्भ के अँधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इन्कार करती हुई
वहाँ भी खोज लेती हैं उन्हें भेदिया ध्वनि तरंगें
वहाँ भी, भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार।"[२२]

अंत में हम इतना ही कह सकते हैं कि भूमण्ड़लीकरण से उपजे इस अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संचालित और भारतीय उपमहादेश में घटित होनेवालें दुष्चक्रों से बचना हो तो भूमण्ड़लीकरण के इस मायवी राक्षस के खिलाफ खड़ा होना होगा। कवि पाषाण की 'सिर्फ उस एक के लिए' कविता के भाव को अपनाना होगा-

"अपने वक्त की जिन्दगी और जिन्दगी के अन्तहित
सिलसिले के लिए फिक्रमन्द लोगों!
खड़े होओं कतार-कतार एक अखिरी युद्ध के लिए,
सिर्फ उस एक के खिलाफ जो अभी रचा सकता है,
हिरोशिमा और नागासाकी का ध्वंस,
बना सकता है धरती के किसी हिस्से को,
भिंडरवाले का पंजाब, चौरासी की दिल्ली,
बानवे की अयोध्या और दो हजार दो का गुजरात।"[२३]

संदर्भ :

१. www.gobaliozation.101
२.(डॉ.)सिंह, पुष्पपाल, भूमण्ड़लीकरण और हिन्दी उपन्यास,पृ. ४२
३. रोशनकुमार, भूमण्ड़लीकरण और हिन्दी उपन्यास, पृ. २११
४.(डॉ.) सिंह,पुष्पपाल, भूमण्ड़लीकरण और हिन्दी उपन्यास,पृ. ७३
५. डबराल, मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृ. ३४
६. जोशी राजेश, दो पंक्तियों के बीच, पृ. ५५
७. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. २१
८. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. २१
९. रघुवंशी निलेश, घर निकासी, पृ. ६४
१०. तोदी निर्मला, सड़क मोड़ घर और मैं, पृ. २८
११. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. ३१
१२. जोशी राजेश, दो पंक्तियों के बीच, पृ. ७४
१३.(संपादक)आग्रवाल, पुरूषोत्तम, कुँवर नारायण प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. १८५
१४.(संपादक) आग्रवाल, पुरूषोत्तम, कुँवर नारायण प्रतिनिधि कविताएँ, पृ. १८५-१८६
१५. वागर्थ, जुलाई, २००७, पृ. १८
१६. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. ३३
१७. दास विनोद, कविता का वैभव, पृ. ३२
१८. डबराल, मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृ. ४१-४२
१९. डहेलिया मोहनकुमार, इस घर में रहना एक कला है, पृ. ४३
२०. विजेन्द्र अनिल, विजेन्द्र अनिल होने का अर्थ (२०१२),पृ. १९
२१. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. ५७
२२. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. ४९
२३. पाषाण, ध्रुवदेव मिश्र, पतझड-पतझड वसंत, (२००९), पृ २८

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

भूमंडलीकरण और हिन्दी भाषा

डॉ. ओमप्रकाश बन्सीलाल झंवर
स्वा. सावरकर महाविद्यालय, बीड

वैश्वीकरण शब्द अंग्रेजी के ग्लोबलाइजेशन का हिंदी रूपांतर है। ग्लोबलाइजेशन के लिए हिंदी में भूमंडलीकरण शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द भारत की सभ्यता एवं संस्कृति श्वसुधैव कुटुम्बकमश पर आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि समूचा विश्व एक परिवार है। मोटे रूप में वैश्वीकरण विश्व स्तर पर एक ऐसे प्रक्रिया है जो समय ओर स्थान की सीमाओं को तोड़ते हुए व्यक्तियों को अन्तर्पारस्पारिकता सम्बंधों में बॉधती है। ष्वैश्वीकरण का बहुप्रचलित अर्थ आपस में नजदीकी और गहराई से जुड़ा हुआ संसार होता है।ष्१ आज का पूँजीवाद दूसरे देशों में जाकर उन्हें अपना परिवेश नहीं बनाता ष्बल्कि नयी टेक्नॉलॉजी के जरिये मसलन कंम्प्यूटर और इंटरनेट के जरिये, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जरिये सारी दुनिया में फैलता है।२

किसी भाषा के वैश्विक स्वरूप से परिचित होने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उसे कितने लोग बोलते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सर्वेक्षण के अनुसार १११.२ करोड़ जनता हिंदी जानती है। तात्पर्य यह है कि हिंदी भाषा का प्रयोग केवल भारत में ही नहीं अपितु भारत के बाहर भी हो रहा है। वैश्विक स्तर पर लगभग १५४ देशों में १६० से अधिक देशों के विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन एवं अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है। अमेरिका में ही ६८ विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन चला रहा है, जब कि जर्मनी के १७, रूस के ७, चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय, पाकिस्तान के पंजाब और कराची विश्वविद्यालय एवं जापान के क्योटो तथा ओसाका विश्वविद्यालय में हिंदी पाठन की व्यवस्था है। फिजी, सूरनीनाम, त्रिनिडाड, गुयाना, मॉरिशास आदि देशों की भाषा हिंदी ही है। इसलिए यहॉ के अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। लंदन, केम्ब्रिज, फ्रांस, इटली, ऑस्ट्रेलिया, डेनमार्क, नार्वे, स्विट्जरलैंड, हॉलैंड, बुल्गारिया, रोमानिया, हंगरी आदि राष्ट्रों में भी हिंदी का अध्यन–अध्यापन कार्य चल रहा है।

वैश्विक बाजारवाद के दबाव के कारण जनसंचार माध्यामों का विकास हो रहा है। पिछले कुछ दशकों में हिंदी मीडिया की वैश्विक भाषा बनकर तेजी से विकसित हो रही है। भारत एवं विश्व के अन्य देशों से हिंदी के पत्र–पत्रिकाओं की संख्या दिन–ब–दिन बढ़ती जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में रेडियो, टेलिविजन, इंटरनेट आदि में हिंदी का वैश्विक स्वरूप दिखाई देता है। कम्प्यूटर और विज्ञापन ने हिंदी को विश्वभर में पहुँचा दिया है। वैश्विक परिदृश्य में बी.बी.सी, वायस ऑफ अमेरिका, जर्मन रेडियो, कोलोन रेडियो पेइचिंग आदि माध्मयों ने हिन्दी को वैश्विक भाषा बनने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

१९७५ में पहली बार विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने की मॉग उठी थी। अटल बिहारी वाजपेयी ने हिंदी में भाषण देकर इस मॉग को बल दिया था। प्रत्येक हिंदी सम्मेलन में इसबात को दोहराया जाता है लेकिन अभी तक यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है।

हिंदी भारत देश की प्रमुख भाषा है। भारत देश को ठीक तरह से समझ लेने के लिए हिंदी का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। ठीक यही बात आज विश्व–मन को स्पर्श कर रही है। इस कारण ही विश्व मन हिंदी की ओर आकर्षित हो रहा है। दूसरी बात यह है कि जनसंचार माध्यम हिंदी का व्यापक प्रचार–प्रसार कर रहे हैं और हिंदी भाषा की विशेषताएँ एवं उपयोगिता भी सिद्ध कर रहे है। इस कारण हिंदी का वैश्विक क्षितिज बढ़ रहा है।

आज सम्पूर्ण दुनिया सूचना–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आयी क्रांति को उपभोक्ता केंद्रीत बनाने के लिए अपने गतिशील दृष्टि का परिचय दे रही है। 'विश्वबाजारवाद', 'वैश्वीकरण' और 'विश्वग्राम', ये संकल्पनाएँ आज वास्तविक रूप में दिखाई देती हैं। इसी कारण अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना प्रभाव दिखाने के लिए हिंदी को अपना वैश्विक रूप दिखाना अनिवार्य है। इसीलिए ही हिंदी को शुद्धतावाद को छोड़ना आवश्यक है। इसके साथ ही हम सभी भारतीयों को राष्ट्रवादी बनकर हिंदी के लिए जो उपयोगी है, उसका स्वागत करने की तत्परता दिखना क्रम प्राप्त है। नही तो शुद्धतावाद के लिए हठवादी भूमिका लेना हिंदी का गला घोंटने के समान है।

आज हम देख रहे हैं कि हिंदी चैनलों की संख्या बढ़ रही है। बाज़ार की स्पर्धा के कारण अँग्रेजी चैनलों का हिंदी

अनुवाद हो रहा है। यह हिंदी के लिए बहुत शुभ संकेत है।

भी करना सम्भव होगा। बहु माध्यमों का उपयोग कर वैश्विक स्तर के अनेक उपेक्षित क्षेत्रों में हिंदी संवाद करना सहज हो जाएगा। इसी कारण हिंदी सभी क्रिया व्यापारों की वाहक बन जाएगी। इस आधार पर वैश्विक संदर्भ में हिंदी की बढ़ रही भूमिका और अधिक प्रखर हो जाएगी।

हिन्दी के विकास के लिए देश के प्रत्येक विभाग ने योगदान दिया है और दे रहा है। आज आवश्यकता है कि पत्येक भारतीय हिंदी सम्बंधी अपना दायित्व पूरा कर सक्रिय भूमिका निभाए। हिंदी के प्रति सम्मान भावना बढ़ाकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रयोग करना आवश्यक है। हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने से वह सहज, सरल और नित्य बनेगी। वैश्विक स्तर पर उसका निर्विवाद महत्व बढ़ेगा। महादेश की यह भाषा जीवन की नई–नई उपलब्धियों को स्पर्श कर विश्व में अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेगी।

इसका फायदा उठाकर हिंदी का प्रयोंग अनेक अस्पर्श क्षेत्रों में

आज बाजारवाद के कारण अनेक देश एवं कम्पनियॉ हिंदी को अपना रही हैं। मीडिया के कारण सबसे अधिक हिंदी का प्रचार–प्रसार हो रहा है। प्रिंट – मीडिया के साथ ही साथ इलैक्ट्रॉनिक मीडिया भी हिंदी को अपनाकर हिंदी अभिव्यक्ति का सामर्थ्य प्रस्तुत कर रहा है। इस कारण हिंदी का प्रभाव दुनिया की भाषाओं पर दिखाई देता है। विज्ञापन ओर अनुवाद की बढ़ती हुई मॉग के कारण हिंदी का व्यापक प्रचार–प्रसार हो रहा है। फिल्म और इंटरनेट ने हिंदी को अनेक देशों में पहुॅचाया है। इस कारण हिंदी आंतर्राष्ट्रीय मंच पर अपना प्रभाव दिखा रही है। वैश्वीकरण के इस युग में अन्य भाषा भी हिंदी में अपनी अभिव्यक्ति करने में अपने–आप को गौरव की अनुभूति महसूस कर रहे है।

संदर्भ सूची

१.भूमंडलीकरण – विचार, नीतियॉ और विकल्प – कमलनयन कांबरा, पृ. १४०

२.भाषा और भूमंडलीकरण– संपा. रमेश उपाध्याय, कुमकुम संगारी, पृ. ३१

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

वैश्विक संदर्भ में शोषितों का साहित्य: हिंदी नाटक

डॉ. भानुदास आगेडकर
किसन वीर महाविदयालय, वाई.
जिला. सातारा,महाराष्ट

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पन होता है। यह घिसीपिटी उक्ति होकर भी चीर सत्य का कथन और दर्शन करानेवाली उक्ति रही है। इस उक्ति के अनुसार साहित्य और समाज का संबंध अटूट है। इसमें समाज के वास्तविक जनजीवन का चित्र साहित्य में चितारा जाता है। यह बात एक अलिखित नियम बनकर अब स्वीकारी गई है। यही कारण है कि हम हर युग के साहित्य में चित्रित समाज की स्थिति उसकी मान्यताएँ, उसमें चित्रित सामाजिक मूल्य, नीति–नियम आदि से भालि–भाँति यह समजने की कोशीश करते है कि उस युग में सामाजिक स्तर पर हर एक नागरिक का नागरिको से बने हर एक वर्ग, समुह का दैनंदिन जीवन कैसा था। हर युग के साहित्य में इस तरह का समाज जीवन चित्रित हुआ दिखाई देता है। वैश्विक स्तर पर देखे तो यही बात नजर आती है कि दुनिया की हर एक भाषा में लिखे गए साहित्य में अपने युग के समाज की वास्तविक स्थिति को केंद्र में रखकर ही साहित्यकारों ने अपनी साहित्यकृतियाँ प्रस्तूत की है। वैश्विक साहित्य में चित्रित मानवीय समाज दो वर्गो में विभाजित है। एक शोषक और दुसरा शोषित। मानवीय समाज का यह वर्गीकरण दुनियाभर में स्वीकारा गया है। इस वर्गीरिण की आधारभूमी मात्र आर्थिक विषमता है। यह मूलत: कार्ल–मार्कस की विचारधारा है। कार्ल मार्कस के अनुसार "समाज की विषमता का कारण अर्थ का आसमान रुप में वितरण है। इसी कारण समाज दो हिस्सो में बटां है एक शोषक और दुसरा शोषित। इन दोनों में वर्गसंघर्ष सदियों से चल रहा है। यह वर्ग संघर्ष तब खत्म होगा जब अर्थ का संम्पत्ती का समान बँटवारा होगा। और यह कार्य क्रांति के माध्यम से ही संभव है।" कार्ल मार्कस के यह क्रांतिकारी विचार विश्वस्तर पर अनेक विचारको ने नेता और कार्यकर्ताओं ने स्वीकारकर अपने अपने राज्य और राष्ट्र में क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए सफल आंदोलनकिए हुए दिखाई देते है। कार्लमार्कर्स के इन विचारों को मार्कसवाद नाम से जाना जाता है। राजनीतिक क्षेत्र में इन्ही विचारों को कम्युनिस्ट, सामाजिक क्षेत्र में इसे समाजवादी और हिंदी साहित्य क्षेत्र में इसे प्रगतीवाद नाम से स्वीकारा जा चुका है। कार्लमार्कस ने जिस शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष द्वारा क्रांति की चर्चा की है, हिंदी साहित्य में उस क्रांति का सामाजिक चित्रण साधारणत: सन १९६० के बाद अनेक साहित्यकारों ने अपनी –अपनी साहित्यकृतियो मे किया हुआ मिलता है। इन सभी साहित्यिक रचनाओं में साधारणत: समाज के दो वर्गो का वास्तविक चित्रण किया गया है। यह दो वर्ग है – शोषक और शोषित। भारतीय व्यवस्था में इन्हें अमीर–गरीब, मालिक–मजदूर कहा गया है। इनमें से शोषित वर्ग अर्थात गरीब मजदूर वर्ग का चित्रण जिन साहित्यकृतियों मे हुआ है वही साहित्यकृतियाँ,मेरी दृष्टी में शोषित का साहित्य है। सैध्दांतिक मान्यताएँ तथा विचारधाराओं द्वारा निश्चित किए गए मापदंडो के अनुसार भी वही साहित्य शोषितों का साहित्य है।

भारतीय समाज व्यवस्था कार्ल मार्कस की समाजव्यवस्का की तुलना में पूर्णत: भिन्न प्रकार की है। मार्क्स ने अपने सैध्दांतिक विचारो द्वारा मानवीय समाज समुह को दो वर्गों में विभाजित किया है। एक शोषक वर्ग और दुसरा शोषित। इनमें से शोषक वर्ग अर्थात पूँजीपातियों का वर्चस्व जीवन आवश्यक वस्तुओं पर रहता है। वही मालिक होता है और यही वर्ग शोषितों का सदियों से शोषण करता आया है। यहशोषण मार्कस के अनुसार धन का श्रम का और सम्पत्ति सहित हर एक किस्म का होता है। यह शोषण शोषक को दिन प्रति दिन अधिक धनवान बनाता है और शोषितों को अधिकाधिक अभावग्रस्त, गरीब बनाता है। परिणामत: इन दोनो के बीच में संघर्ष शुरु होता है। माकर्स के अनुसार यह संघर्ष सदियों से चल रहा है। यह तभी खत्म होगा जब अर्थ का समान बँटवारा होगा। इस संघर्ष में स्वयं कार्लमार्कस शोषितों के पक्ष में खडा होकर शोषकों के विरोध में शोषितों को तीव्र संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करता है। उसके अनुसार यह संघर्ष इतना तीव्र होना चाहिए कि शोषितों ने अपने कपडे खून से रंगाने चाहिए, मजदूरों ने मोर्चे निकालकर हरताल करके मालिकों के कल–कारखाने बंद करने चाहिए या जलाकर भस्म कर देने चाहिए तभी समाज में निर्माण हुअी विषमता नष्ट हो जाएगी

और आर्थिक समानता के तत्व पर नया समतावादी, समाजवादी मानव समुह निर्माण हो जाएगा। कार्ल मार्कस इस तरह समाज को केवल दो वर्ग में विभाजित करके अपनी सैध्दांतिक सोच विश्व के सामने रखकर अपनी विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार किया था। मार्कस के इन्ही क्रांतिकारी विचारों का स्वागत विश्वभर में बसे अनेक छोटे–बडे राज्यों ने किया हुआ दिखाई देता है। आज भी ऐसे अनेक राज्य एवं मानव समुह है जो कार्ल मार्क्स के इन्ही साम्यवादी विचारो को अपनाकर चल रहे है। सन–१९६० के दरम्यान हमारे देश में भी कार्लमार्क्स के इन सैध्दांतिक विचारों से काफी बडा जनसमुदाय प्रभावित होकर सामाजिक, राजनितिक साहित्यिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए प्रयत्नशील था। आज भी हमारे देश में मार्क्स के विचारानुसार परिवर्तन करने के लिए अनेक क्षेत्र में असंख्य लोग कार्यरत रहे दिखाई देते है। राजनीती के क्षेत्र में रहे अलग–अलग कम्युनिस्ट राजकिय पक्ष, समाज में कार्यरत अनेक समाजवादी प्रचारक और साहित्य क्षेत्र में "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना के बाद प्रगतिवादी रचनाकार के रूप में लिखनेवाले अनेक लेखक इसी बात का प्रमाण है। इस प्रकार भारतीय व्यवस्था में कार्लमार्क्स के विचारों का स्वागत बहुत पहले हो चुका है जिसका असर आज तर कायम है। किंतु यह भी सच है कि भारतीय समाज व्यवस्था मार्क्स के सिध्दांतानुकुल वर्गवादी व्यवस्था नहीं है। इसके विपरीत हमारी व्यवस्था रह चुकी है इस व्यवस्था मे व्यक्ति का सामाजिक स्तर आर्थिक स्थिती पर निर्भर नहीं होता तो वह किस वर्ण में उसका जन्म हुआ है उस पर निर्भर होता है। कार्ल मार्क्स का गरीब व्यक्ति अमीर बनने के बाद शोषित वर्ग से शोषक वर्ग में दाखील होता है। अर्थात वह दोनों वर्ग का प्रतिनिधीत्व अपनी आर्थिक स्थिती के अनुसार कर सकता है। एक वर्ग से दुसरे वर्ग में वह आ या जा सकता है। इसके विपरीत भारतीय समाज व्यवस्था में जन्माधारीत वर्ण में अपना जीवन व्यतीत करता है चाहे वह सधन हो या निर्धन, लायक हो या नालायक। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक सैध्दांतिक पहलू है जिनके माध्यम से यह प्रभावित हो चुका है कि कार्लमार्क्स के साम्यवादी विचार भारतीय व्यवस्था में किसी भी तरह का क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए परिपूर्ण नहीं है। फिर भी उनके द्वारा स्थापित किए गए शोषित वर्ग की संकल्पना को हमारे यहां। पूरी प्रामाणिकता से स्वीकारा जा चुका है। भारतीय समाज व्यवस्था की दृष्टी देखे तो शोषित शब्द का अर्थ है–"सोखा हुआ", अनुचित फायदा उठाया हुआ"[१] व्यक्ति और शोषक का अर्थ है– सोखनेवाला, दुसरों का धन आदि हरण करनेवाला व्यक्ति," गरीब तथा कमजोर वर्ग के लोगों का श्रम और धन का शोषण करनेवाला समुह[२]यही अर्थ मार्क्स ने दिया है मगर उसके द्वारा किया गया शोषक और शोषित वर्गीकरण आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। हमारे यहा यही वर्गीकरण वर्णाधारीत,जन्माधारीत,जातिआधारीत किया गया है। भारतीय समाज व्यवस्था में यह वर्गीकरण सदीयों से चला आ रहा है। हमारे यहां हर एक उच्चवर्ण में जन्मा व्यक्ति अपने से निचले वर्ण के समुह का शोषण करना अपना अधिकार समझता है और हर निचले वर्ण में जन्म व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ, उपर के वर्ण में जन्मे व्यक्ति ने किए हुए शोषण को अपना धर्म मानकर चुप–चाप सहन करता है। मार्क्स ने अपने सिध्दांत में जीस वर्ग संघर्ष चर्चा की है, वह वर्ग संघर्ष भारतीय समाजव्यवस्था में वर्ण संघर्ष का रुप धारण नही कर सकता। क्योकि आर्थिक विषमता नष्ट की जा सकती है,परंतु भारतीय समाजमान्यता के अनुसार जन्माधारीत जातिव्यवस्था में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं होता। परिणामत: भारतीय समाज व्यवस्था सदियों से वर्णाधारित जन्माधिरीत जैसी की वैसी कायम है। हिंदी साहित्यिको ने भारतीय समाज की इसी व्यवस्था को कार्ल मार्क्स के वैचारिक चौखट में प्रस्तूत करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है। इन साहित्यिको ने कार्लमार्क्स के शोषित वर्ग में निश्चित किए गए अर्थ अभाव के कारण गरीब रहे समुह को अत्यंत व्यापक रुप में स्वीकारा है। उनके अनुसारआज केवल गरीब समुह का ही अनुचित फायदा उठाया नहीं जाता तो आज हर क्षेत्र में कार्यरत स्वतंत्र व्यक्ति से लेकर अलग अलग वर्ण से संम्बधित जनसमुदाय के श्रम का, धन का कमजोरीयों का फायदा उठाया जाता है। इन जन समुदायोने आज अपनी–अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनई है जैसे–दलित, स्त्री, आदिवासी, बालक, युवक, कामगार, हॉकर्स आदि। साहित्य क्षेत्र मे भी इनसे संबंधित लिखे गए साहित्य का स्वत्रंत अस्तित्व आज स्वीकारा गय है जैसे–दलित साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, आदिवासी साहित्य आदि। मुझे लगता है कि यही साहित्य आज शोषितों का साहित्य बनकर सामने आने लगा है। इस संदर्भ में मेरा यह मानना है कि इस साहित्य ने कार्लमार्क्स के सैध्दांतिकविचारधारा से शोषित शब्द के कारण निर्माण होनेवाला हिंसात्मक रिश्ता नकारकर आज विश्व स्तर पर अपनी एक अलगसी स्वतंत्र पहचान निर्माण की है। यही कारण है कि इसका संम्बध मार्क्सवादी विचारधारा से जोडना समिचिन नहीं होगा।

शोषितों का साहित्य : हिंदी नाटक स्माज का सही चेहरा हम अन्य साहित्यिक विद्याओं कि तुलना में अधिक स्पष्टता से नाटक विद्या में देखते है। क्योंकी नाटक एक ही समय में दृश्य, श्राव्य दोनों रुपों में प्रस्तुत होनेवाली विद्या है। रंगमंचिय प्रयोग के माध्यम से यह विद्या दर्शकों के सामने विषयगत वास्तविकता का परिचय देती है। यह परंपराभरतीय क्षेत्र में प्राचिन काल से चली आ रही है। इसमें मानवीय जीवन के शाश्वत मूल्य एवं समकालीन परिवेश की वास्तविकता को नाटककार पहले साहित्यकृति के रुप में और फिर कलाकार मंचिय प्रयोग के माध्यम से वापस समाज को ही अर्पित करता है। यही कारण है कि नाटक अन्य विद्याओं कि तुलना में अधिक प्रबोधनात्मक लोकप्रियविद्या रही है। हिंदी नाटयविद्या के जन्मदाता आचार्य भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के युग से लेकर आज के वर्तमानयुग तक के सभी नाटककारों एवं मंचिय प्रयोग द्वारा इसे दर्शको के सम्मुख प्रस्तुत करनेवाले कलाकारों ने इस लोकप्रियता को कायम रखा है। इस विद्या का प्रतिनिधित्व करनेवाले सभी नाटककारों ने अपने अपने नाटयकृतियो में समकालिन समाज का वास्तविक चित्रण बडे ही प्रमाणिकता से किया हुआ दिखाई देता है। दलित, पिडित, शोषित वर्ग का इनमें से अधिकतर नाटयकृतियों में हुआ चित्रण अत्यंत वास्तविक रहा है। मानों इन सभी नाटयकृतियों में " समकालिन समय में जन्म लेनेवाले स्वेच्छाचारी शासक और शोषकों के शोषणों के सामने अपने आप को सौंपनेवाली प्रश्नहीन, प्रतिक्रिया हीन जनता की त्रासदी को ही रचनाकारों ने रेखांकित किया है। " स्वातंत्र्योत्तर कालाखंड में इस प्रकार की अनेक रचनाए अलग–अलग नाटककारों द्वारा प्रस्तुत हुई दिखाई देती है। जिनमें दलित, अस्पृश्य, नारी, मजदुर, किसान आदी भिन्न भिन्न वर्ग मे विभाजित शोषित समाज वर्ग का स्वतंत्र रूप में उनकी पीडा, वेदना, उनका संघर्ष, उनकी छटपटाहट का चित्रण किया गया है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर शोषकों द्वारा उनके किए गए शोषण का चित्रण अनेक नाटककारोंने अपनी–अपनी नाटयकृतियों में बडे ही प्रामाणिकता से किया हुआ दिखाई देता है। यह सभी रचनाएँ असल में शोषितों का साहित्य के रूप में स्वीकारी जा सकती है। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में इस प्रकार की असंख्य नाटयकृतियॉ लिखी जा चुकी है। उन सभी नाटयरचनाकारों में से डॉ. शंकर शेष, डॉ. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ला और स्वदेश दिपक यह चार नाटककार मेरी दृष्टी में सशक्त नाटककार है जिन्होंने अपनी अधिकतर रचनाओं में समाज के शोषित वर्ग का बदलते संदर्भ के अनुसार चित्रण किया है। यह सभी रचनाकार मार्क्सवादी अर्थात साम्यवादी विचारधारा के न समर्थक है,न वाहक है। मगर समाज में निर्माण हुई विषमता, मुठ्ठीभर लोगों के पास रही सत्ता, सम्पत्ती और उस सम्पत्ती के बल पर समाज में स्थीत गरीब, निर्धन घटकों पर, उनके द्वारा किए गए अन्याय का, अत्याचार का, धन और श्रम का किया गया शोषण का वर्णन इनकी रचनाओं में बहुत ही प्रामाणिकता से हुआ दिखाई देता है। इनकी रचनाओं में केवल शोषित वर्ग की वेदना का चित्रण नहीं हुआ है तो उसमें परिवर्तनात्मक क्रांती के लिए आवश्यक रहे संघर्षात्मक जनजागरण का स्वर भी गूँजता हुआ सुनाई देता है। इनमें से डॉ.शंकर शेष स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक आन्दोलन के प्रमुख नाटककार रहे है। साधारणत: आठवे दशक के प्रारंभ में उभरते हुए नाटककारों में शंकर शेष जी प्रमुख हस्ताक्षर की हैसियत से संम्पूर्ण हिन्दी–नाटय–जगत में चर्चित एवं प्रतिष्ठित रहे है। हिन्दी नाटय साहित्य क्षेत्र में उनके लगभग दो दर्जन नाटक है। जिनमें से अधिकांश नाटक समकालिन सामाजिक राजनीतिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिती का सही परिचय करा देते है। उनमें से "एक और द्रोणचार्य" 'धरौंदा','रक्तबीज', 'चेहरे', 'पोस्टर', 'कालजयी', 'बाढ का पानी', 'फन्दी', 'आधि रात के बाद' और 'रत्नगर्भा' आदि नाटयकृतियों में समाज में स्थित समकालिन शोषित मजदूर वर्ग का यथार्थ चित्रण किया गया है। इन सभी नाटयकृतियों में से उनका 'पोस्टर' शोषित मजदुर वर्ग की भयानक स्थिति का अत्यंत सशक्तता से प्रस्तुतीकरण करता हुआ दिखाई देता है। इस नाटक का संम्पूर्ण कथानक शोषण और अन्याय के विरूध्द शोषित मजदुर वर्ग में विद्रोह की आग प्रज्वलित करता है तो 'बाढ का पानी' दलित और सवर्ण वर्ग के बिच की स्थिति पर प्रकाश डालता है। उनका 'एक और द्रोणचार्य' शिक्षा क्षेत्र में स्थापित हुए सामंती मानसिकता का परिचय देता है। तो उनका 'रक्तबीज' नाटक नारी वर्ग के शोषण पर प्रकाश डालता है। इस नाटक में चित्रित शर्मा अपनी सुन्दर पत्नि का इस्तेमाल, वैभव और ऐश्वर्य हासिल करने के लिए करता है। नारी का इस तरह इस्तेमाल करना एक तरह से नारी वर्ग का शोषण ही है। इस तरह शेष जी के उर्वरित नाटय कृतियॉ भी व्यवस्था की विकृतियॉ और विसंगतियों पर प्रकाश डालते हुए शोषित वर्ग की दयनिय स्थिति का परिचय देते है। उनकी नाटयकृतियों के संदर्भ में एक स्थान पर लिखा है कि 'मध्यवर्गीय चेतना' डॉ. शंकरशेष के नाटकों की एक विशेषता

है। 'धरौंदा', 'मूर्तिकार', 'नई सभ्यता नए नमुने', 'एक और द्रोणाचार्य','पोस्टर','रक्तबीज' आदि अस्तित्व संकट से घिरे वर्गीय व्यक्ति के जीवन संघर्ष को उजागर करनेवाले नाटक है। अस्तित्व संकट से घिरे इस मध्यमवर्ग के व्यक्ति की जिन्दगी हर पल संघर्ष में बीतती है। समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं आर्थिक अस्थिरता उसे अन्दर से जर्जर और खोखला बना देती है। उनके नाटक के सभी पात्र समाज के विभिन्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों से संघर्षरत रहते है।"४ डॉ. शंकर शेष जी के समकालिन अन्य नाटककार है, डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना। उनमें से डॉ. चंद्रजी ने अपने 'भावना के पीछे', 'शादी का चक्कर', 'बदलते रूप', 'आकाश झुक गया', 'भूमि की ओर', 'कुत्ते', 'भस्मासूर अभी जिन्दा है', 'लडाई जारी है' आदि नाटयकृतियों में शोषित वर्ग के प्रतिनिधिक पात्रों के माध्यम से उनके होने वाले शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इनमें से 'भस्मासुर अभी जिन्दा है' नाटक आज के वर्तमान युग के शोषक और शोषित वर्ग का खुला चित्र प्रस्तुत करता है। 'यह एक चिरंतन नाटक है – एक ऐसा नाटक जो आम आदमी के साथ, हम सब के साथ आदि काल से खेला जा रहा है। हम सभी इसके पात्र है। भस्मासुर हमी में छिपे वे नेता है, सत्ताधारी है,शक्ती या सत्ता का वरदान प्राप्तकर उसी को संतप्त करते है,उसी का शोषन करते है,उसी को भस्म करते है।'५ इस नाटक का पूरा कथ्य मजदूर वर्ग के शोषण कीभयानक वास्तविकता पर प्रकाश डालता है।उनकी दुसरी नाटयकृति 'लडाई जारी है' इसी प्रकार से पूँजीपतियों के मानसिकता को तोडने का आव्हान करनेवाली रचना है। इस नाटक का कथानक सामान्य शोषित वर्ग की जनता को पूँजीपतियों के विरोध में जागृत होने की अपील करता है। इस तरह का अपील सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी की अधिकतर नाटय रचनाएँ जनसामान्यों के सन्मुख करती हुई दिखाई देती है। उनके द्वारा प्रस्तुत 'बकरी', 'लडाई' तथा 'अब गरिबी हटाओ' आदि कृतियों में इसी सच्चाई की पुष्टि मिलती है। सर्वेश्वरजी की यह सभी नाटयकृतियॉ निम्न वर्ग की शोषित मन:स्थिति तथा दयनीय अवस्था का चित्रण करते हुए शोषण और अन्याय को जन्म देनेवाली व्यवस्था पर कठोर प्रहार करती हुई दिखाई देती है। उनके द्वारा प्रस्तुत तीनों नाटकों के अंत में शोषकों के विरोध में विद्रोही और क्रांती की पुकार है। श्रीमती सुनिता गोपालकृष्णन के अनुसार 'सर्वेश्वरजी के नाटक 'बकरी' में अत्याचारी व्यवस्था से लडने एवं गॉव में नई चेतना निर्माण करने काएक प्रस्फुरण है। तो 'लडाई' वामपंथी विचारों से दर्शकों को परिचित कराता है। तथा सब गरीबमिलाकर ही गरीबी हटा सकते है। भारत में स्थित पूँजीवादी सभ्यता अब बदलनी ही है। 'अब गरीबी हटाओं' नाटक का नट अंत में यही सब को आव्हान करता है।'६ जिससे यह प्रमाणित होता है कि आज के वर्तमान युग में शुरू रहे सभी प्रकार के शोषण एवं आत्याचार के खिलाफ जनसामान्यों को अर्थात शोषित वर्गीय व्यक्तियों को जागृत करनेवाले सर्वेश्वरजी के यह तीनों नाटक एक प्रभावशाली हथियार के रूप में अपना अलगसा महत्व रखते है। शोषितों को न्याय देने के लिए सर्वेश्वरजी ने जिस संघर्षात्मक हथियार की चर्चा अपने नाटयकृतियों में की है। वही हथियार वर्तमान युग के सशक्त नाटककार स्वदेश दिपकजी ने अपने पात्रों के हाथों मे सौपकर अन्यापूर्ण व्यवस्था को नष्ट करके अपने 'कोर्ट मार्शल' और 'सब से उदास कविता' नामक नाटकों के माध्यम से अपेक्षित क्रांती की शुरूवात की हुई दिखाई देती है। इन दोनों नाटकों में से 'कोर्ट मार्शल' नाटक का नायक 'रामचंदर' दलित वर्ग का प्रतिनिधि है। तो 'सब से उदास कविता' नाटक की नायिका 'अपूर्वा' नारी वर्ग सहीत समरत शोषित वर्ग की प्रतिनिधी है। शोषित वर्ग के बदलते स्वरूप का चित्रण स्वदेश दिपकजी ने इन दोनों नाटयकृतियों में किया है। इनमें से 'कोर्ट मार्शल' में रामचंदर के माध्यम से नाटककार ने दलित वर्ग का जो चित्रण किया है वह निश्चित ही साम्यवादी विचारों के अनुसार अपने उपर होनेवाले अन्याय अत्याचार का हिंसात्मक प्रतिरोध करनेवाले दलित वर्ग का चित्रण है। यही कारण है कि "सामंती प्रवृत्ती"७ के कॅप्टन कपूर की रामचंदर गोली मारकर हत्या कर देता है। इस से भी अधिक प्रभावशाली 'सबसे उदास कविता' की नायिका अपूर्वा लगती है। एक तरह से स्वदेश दिपकजी की यह नाटयकृति वर्तमान युग की सबसे सशक्त नाटयकृति है। जिसमें उन्होंने शोषितो द्वारा किए जानेवाली सशस्त्र क्रांती का वर्णन किया है। सामंती व्यवस्था द्वारा, विषमतावादी न्याव्यवस्था द्वारा समाज के विविध वर्ग पर किए जानेवाले अत्याचार के विरोध में कार्यरत गुरिला संगठन की अपूर्वा सबसे बेस्ट कार्यकरती है। उसके अनुसार "भीख का बर्तन हाथ में लेने से अधिकार नहीं मिलते, बंदूक से मिलते है। – द पावर फ्लोज थ्रू बैरल ऑफ द गन।" (आदमी होने की पहली शर्त– हम अपनी लडाई खुद लडे। याचना भरी ऑखो से लोगों की ओर देखना बंद करे। पृ.६०, क्योंकि) अपने इसी साम्यवादी विचारानुसार गुरिला संगठन के प्रमुख सुर्यास्वामी के

मार्गदर्शन पर उसने पहली जमीनदार के बेटे की और अंत में रिटायर्ड जज की हत्या की थी। उसका यह संघर्ष शोषित वर्ग द्वारा अपने न्याय और हक्क की प्राप्ती के लिए किया गया सबसे खतरनाक, आत्मघाती संघर्ष है। जिसका यथार्थ दर्शन स्वदेश दिपकजी ने अपने इस नाटयकृति में बडे ही प्रभावात्मक से किया हुआ दिखाई देता है।

अंतत: संक्षेप में या सारांश रूप में यही निष्कर्श निकाला जा सकता है कि हिन्दी साहित्य क्षेत्र में नाटक विद्या मात्र एक ऐसी विद्या है जिसमें दृश्य और श्राव्य दोनों रूपों में रचनाकार अपनी बात करता है। उसके द्वारा की हुई हर बात समकालिन समाज की वास्तविकता का साक्षात्कार कराती है। समाज के हर वर्ग का समकालिन प्रतिबिंब नाटक में हि पूरी प्रामाणिकता से दिखाई देता है। यही कारण है कि हिन्दी नाटय विद्या सभी विचारधाराओं का वहन करती आयी है। साम्यवादी विचारधारा उन्ही में से एक है। शोषक, शोषितों को केंद्र में रखकर हिन्दी नाटय जगत में असंख्य नाटक अब तक लिए गए है। जो शोषितों का साहित्य मानकर स्वीकारे जा चुके है। डॉ. शंकर शेष, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, डॉ. चंद्र, स्वदेश दिपक की उपर लिखित प्रमुख नाटयरचनाएँ मेरी दृष्टि में शोषित वर्ग की दयनीय स्थिती का परिचय कराते है। साथ ही साथ यह सभी नाटयकृतियॉ शोषण करनेवाली व्यवस्था के विरोध में शोषितो को सतत संघर्षरत रखते हुए क्रांतिकारी परिवर्तन करने के लिए जनसामान्यों को प्रोत्साहीत करती हुई दिखाई देती है। अर्थात इन सभी नाटयकृतियों का अंतिम उद्देश्य शोषित वर्ग को शोषण व्यवस्था से मुक्त करना ही है। मेरी दृष्टि मे इन सभी नाटयकृतियों की यही सही पहचान है। यह सभी रचनाएँ हिन्दी नाटय साहित्य जगत में शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति का, उनके ध्येय, उद्देश्य का सही परिचय देनेवाले सशक्त नाटयकृति रह चुकी है।

संदर्भ सूची

१) शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश डॉ. हरदेव बहरी पृ. ७८१
२) शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश डॉ. हरदेव बहरी पृ. ७८०
३) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक – डॉ. शमीम अलिमारपृ. १३९
४) डॉ.शंकरशेष : आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि नाटककार . डॉ. शमली पृ. १३९
५) साठोत्तरी हिंदी नाटक – डॉ. नीलिमा शर्मा पृ. १९९
६) आधुनिक हिंदी साहित्य – विविध अयाम– श्रीमती सुनिता गोपालकृष्णन पृ. १५४
७) कोर्ट मार्शन– स्वदेश दिपक पृ. ९२
८) सबसे उदास कविता – स्वदेश दिपक पृ. ४६

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य 'दौड' के विशेष संदर्भ में

डॉ. गोरखनाथ किसन किर्दत
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, इस्लामपूर

आधुनिक काल में भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और औदयोगिक समाज ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया। इसने व्यापार प्रबंधन की शिक्षा के द्वार खोले और युवकों को व्यापार प्रबंधन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान किए। युवा वर्ग ने बडे उत्साह के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश किया। परिणामस्वरूप वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया वाद प्रारंभ हो गया, बाजारवाद और उपभोक्तावाद। ममता कालिया का 'दौड़' उपन्यास उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण और उत्तर-आधुनिक समय का दर्दनाक आख्यात है। इस लघु उपन्यास के युवा पात्र पवन स्टैला और सघन सिर्फ उपन्यास के ही नहीं बल्कि समकालीन समय के अधुनिक चरित्र हैं। ये वो चरित्र हैं जो आज के मनुष्य की महानगरीय दौडभाग का आधुनिक जीवन जीते मध्यमवर्गीय और उच्च मध्यमवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रेखा, राकेश, पवन, सघन इस एकही परिवार के सदस्यों के इर्द-गिर्द घुमती कहानी आज के हर परिवार की कहानी बन गयी है। बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए मॉ-बाप मिलकर सारी सुविधाएँ समेटते हैं, उन्हें महँगी और ऊँची शिक्षा देकर स्वप्निल दुनिया का दरवाजा दिखाते हैं, फलस्वरूप बच्चे इस बदलते परिवेश में सरसाते हुए इतने आगे निकल जाते हैं कि उन्हें मॉ-बाप के उन बेशकीमती क्षणों को याद करने का वक्त ही नहीं मिलता। पवन और सघन मध्यमवर्गीय परिवार के बच्चे हैं। उनका लालन-पालन एसे घर में हुआ है जहॉ भारतीय संस्कारों के बीज बोये गये हैं। इलाहाबाद शहर होकर भी औदयोगिक शहरों से पिछ़डा शहर माना जाता है।

पवन के एम.बी.ए. के अंतिम वर्ष में चार-पॉच कंपनियॉ उनके संस्थान में आती हैं। पवन पहले दिन पहले इंटरव्हयू में चुना जाता है। भाईलाल कंपनी ने उसे अपनी एल.पी.जी. युनिट में प्रशिक्षु सहाय्यक मैनेजर नियुक्त करती है। पवन घर से आठारह सौ किलोमिटर दूर अहमदाबार में नौकरी के लिए जाने की बात घर में बताता है तब मॉ-बाप नाराज हो जाते हैं। वह चाहते थे कि पवन वहीं उनके पास रहकर नौकरी करें, पर पवन उनसे कहता है - "यहॉ मेरे लायक सर्विस कहॉ ? यह तो बेरोजगारों का शहर है। ज्यादा-से-ज्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जाएगी।"[1] मॉ-बाप समझ गये थे कि उनका शिखरचुंबी बेटा कहीं और बसेगा। लेकिन फिर भी पिताजी पवन से कहते हैं कि दिल्ली तक भी आ जाओ तो? सच दिल्ली आना-जाना बिलकुल मुश्किल नहीं है। रात प्रयागराज एक्सप्रेस से चलो, सवेरे दिल्ली। कम-से-कम हर महीने तुम्हें देख तो लेंगे। या कलकत्ते आ जाओ। वह तो महानगर है। लेकिन पवन के माथे पर आधुनिक होने का भूत सवार है। वह पापा से कहता है- "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लिजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एक दम लध्दड़। कलकत्ते में प्रोडयूसर्स का मार्केट है, कंज्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहॉ कल्चर हो न हो, कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[2] पवन के यह विचार आज की युवा पीढी के विचार हैं। आज सभी कामयाबी के पीछे पड़े हैं।

एक और बहुराष्ट्रीय कंपनियॉ युवकों की जिंदगी सपनों से भर रहीं है और दूसरी तरफ घाटा देखकर शब्दों के तमाचे भी मार देती है। तब युवक इशारा समझकर कंपनियॉ बदलते रहते हैं। उन्हें हर साल वेतनवृध्दि चाहिए, अन्यथा अपने अनुभव के बल पर वे हमेशा एक कंपनी से दूसरी कंपनी में ऊंचे पद पर जाने की सोचते हैं। इस दौड़ के पीछे भौतिक सुविधाओं का आकर्षण और उन्हें पाने की ललक रहती है। यह जिंदगी आकर्षक जरूर है मगर उसमें शांति नहीं है। इसमें पारिवारिक सुख-शांती अपने लिए समय बचाकर मनोरंजन करना, हँसी-खुशी, रिश्ते-नाते आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। बुढापे में अपने मॉता-पिता की सेवा करना, तथा उनकी सेवा करने के लिए इनके पास समय नहीं है। बदले में चाहे जितने रूए देने के लिए तैयार हो जाते हैं किंतु बच्चों के स्नेह के लिए मॉ-बाप तरसते रह जाते हैं। कॉलनी में कमोबेश सभी की यह हालत थी। "इस बुड्ढा-बुड्ढी कॉलनी में सिर्फ सर्दी-गर्मी की लंबी छुटियों में कुछ रौनक दिखाई देती जब परिवारों के नाती-पोते अंदर बाहर दौड़ते-खेलते दिखाई

देते हैं। वरना यहाँ चहल-पहल के नाम पर सिर्फ चहल-पहल के नाम पर सिर्फ सब्जी वालों के या रद्दी खरीदने वाले कबाडियों के ठेले घूमते नजर आते।"[3] बच्चों के सुरक्षित भविष्य के लिए तैयार कर हर घर परिवार के माँ-बाप खुद एकदम असुरक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं। घर से बाहर रहने वाले बच्चों के मन में धन, प्रतिष्ठा, पद को लेकर अहंकार पनपने लगता है। यही कारण है कि पवन अपने माँ-बाप द्वारा जन्मदिन के अवसर पर ग्रीटिंग न भेजे जाने पर नाराज हो जाता है। जब से शहर की आदत लग गई है तब से गाँव का गंगाजल उसे गंदा लगने लगता है और मिनरल वॉटर से ही वह प्यास बुझाता है।

आधुनिक युग में सरल मार्ग के शिबिर तरह-तरह के स्वामी जी भक्ति की कैपस्यूल बनाकर बेच रहे हैं। मन की शांती के लिए मेडिटेशन करना जरूरी हो गया है। इसी कारण पवन और उसके साथी सरल मार्ग शिबिर की ओर इतने आकृष्ट हो जाते हैं कि पवन खुद की शादी भी स्वामी जी के कहने पर उन्हीं के पंडाल में करता है। यहाँ तक कि पवन परिवारवालों की इजाजत कि बिना स्टैला नामक युवती से तया करता है। माँ से स्टैला का परिचय करते हूए कहता है "माँ स्टैला मेरी बिजनेस पार्टनर, रूम पार्टनर तीनों है।"[4] स्टैला से परिचय होने पर रेखा पवन से कहती है पुन्नू यह सिल बिल-सी लड़की तुझे कहाँ मिल गई? सती और सावित्री के गुण तो उसमें दिख नहीं रहे, अच्छी कैरियरिस्ट भले ही हो, परंपरागत भारतीय संस्कृति के अनुरूप रेखा अपनी बहू में सती और सावित्री के गुणों को देखना चाहती है किंतु पवन को उसके लाखों के कारोबार से मतलब है। अपने माता-पिता को पुछे बिना ही पवन अपनी शादी तय करता है और अपनी माँ से समझाता है कि यहाँ गुजरात, सौराष्ट्र में शादी तय होने के बाद लड़की महीने भर ससुराल में रहती है। लड़का-लड़की एक-दूसरे के तौर-तरीके समझने के बाद ही शादी करते हैं। यहाँ परंपरागत मूल्यों में परिवर्तन होता हुआ नजर आता है। पवन की पत्नि स्टैला अपनी सासू माँ का आदर भले ही करती है, मगर ऑचल सिर पर लेकर बार-बार कदम छूना नहीं चाहती। जब पहली बार वह रेखा से मिलती है तब गुलदस्ता देकर स्वागत की औपचारिकता निभाती है। अगले तीन दिनों तक हर सुबह शाम कोई न कोई उपहार लाकर देती है जिससे सासू माँ का मन जिता जाए।

भूमंडलीकरण के इस दौर में स्पर्धा इतनी तीव्र हो गयी है कि हर कोई अपने उत्पद को बेचने के लिए ग्राहकों को प्रलोभन दिखाया जाता है। इसके लिए अपने प्रोडक्ट का आकर्षक विज्ञापन कीमत में छूट, होम डिलिव्हरी अथवा कॅश ऑन डिलिव्हरी जैसी सहुलियत दी जाती है। हर कंपनी की अपनी मार्केटिंग की एक नीति है। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए संगीत एवं मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन करना, हॉलीडे प्रोग्राम रखना या गिफ्ट रखना आदि तरिके अपनाये जाते हैं। चूँकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक नया बाजारवाद कायम करती है और उसी के भीतर काम करती हैं। इस बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गिध्द दृष्टि वाले मैनेजर भली-भाँति जानते हैं कि उनका लक्ष्य क्या है, उत्पादन के प्रबंधन-वितरण, विक्रि, माल के प्रचार-प्रसार के लिए उपभोक्ताओं को कैसे घेरा जा सकता है।

ममता कालिया का 'दौड' आज के मनुष्य की कहानी है जो बाजार के दबाव-समूह, उनके परोक्ष-अपरोक्ष मारक तनाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य के आसन्न खतरे में पडे मनुष्यत्व को उजागर करती है। यह रचना मनुष्य की पारंपारिक संबंधों की परंपरा और वर्तमान की जटिलताओं के मध्य विकराल होते अंतराल की सूक्ष्म पडताल करती है। जिस कथित आर्थिक उदारीकरण ने बाजार और बाजारवादी व्यवस्था को ताकद दी है, अपने पारंपारिक नाते-रिश्ते को अनुदार, मतलबी और अर्थ-केंद्रित बना दिया है उसने मानवीय मूल्यों को भी बदल दिया है।

संदर्भ :

१. ममता कालिया 'दौड' पृष्ठ क्र. ११
२. वही पृ. ४०.४१
३. वही पृ. ७५
४. वही पृ. ५१

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

भूमंडलीकरण : आर्थिक परिणाम और साहित्य
(शंकर पुणतांबेकर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मीना भंडारी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस.जी. कला, विज्ञान व जी.पी. वाणिज्य महाविद्यालय, शिवले, मुरबाड, जि. ठाणे

भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत ही नहीं विश्व के सभी देश औद्योगिकरण, शहरीकरण, विश्व-मुक्त व्यापार, आंतरराष्ट्रीय अर्थनीति, पूँजी और सत्ता की स्वार्थपूर्ण अर्थकेन्द्री गतिविधियाँ, कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, तस्करी, आतंकवाद, काला धन आदि से प्रभावित है। इसका शिकार प्रायः समान्य और गरीब ही होता है। 'संवेदनशील', 'जागरुक' सरकारें इनके उद्धार की योजनाएँ खूब बनाती हैं, ढिंढोरा इनके हित का ही पीटा जाता है। परंतु लाभान्वित तो नेता, सेठ, ब्यूरोक्रेट ही होते हैं। पुणतांबेकर आर्थिक क्षेत्र की ऐसी सभी विसंगतिपूर्ण स्थितियों पर जोरदार प्रहार करते हैं।

भारत ने मिश्र अर्थव्यवस्था का स्वीकार किया है। यहाँ सार्वजनिक क्षेत्र कार्यशिथिलता, आलस्य, भ्रष्टाचार से प्रभावित है तो निजी क्षेत्र में पूँजीपति अपना महत्त्व बनाए हुए हैं। उनके चंदों से नेता दबे हुए हैं, और यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि सरकारें उनके हाथ की कठपुतलियाँ हैं। बड़े-बड़े उत्पादक आम जनता को लूटते हैं और सरकारों से आकार ग्रहण करते हैं। 'नेशनल चैनल : मेट्रो चैनल' में पुणतांबेकर कहते हैं- "इस साबुन को दोनों चैनलों से मतलब है।.... नेशनल चैनल से इसलिए मतलब कि इसे उनमें बिकना है और मैट्रो चैनल से इसलिए कि इससे उसे बनना है। ... मैट्रो चैनल से तो इसका सम्बन्ध मुर्गी-अंडे जैसा है। यह अपने चन्दे से मैट्रो को बनाता है तो मैट्रो अहसान में, बल्कि दबाव में इसे अपना आकार ग्रहण करने देता है जो साबुन के नाम दैत्य भी बन जाता है।"[१] यहाँ साबुन उत्पादक, पूँजीपतियों का प्रतीक है, नेशनल चैनल राष्ट्रीयता में विश्वास करनेवाली जनता का प्रतीक है और मैट्रो चैनल सुख-सुविधाओं से लैस सरकारों का प्रतीक है।

पुणतांबेकर ने बड़ी सूक्ष्मता से अवलोका है कि चकाचौध के बावजूद गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, अभाव आम आदमी को धर दबोच रहे हैं। आर्थिक विकास के लिए चालित हर गतिविधि स्वार्थ-प्रेरित है। जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था कमजोर होती जा रही है। बुनियादी साधनों के अभाव में ग्राम-वासी नारकीय जीवन जी रहे हैं। नगरों और महानगरों का झोपडपट्टीवासी तो मनुष्येतर जीव-जन्तुओं की तरह अपना जीवन-यापन करता है। यहाँ का काला धन स्विस बैंक में बोरे भर-भर-कर ढ़ोया जा रहा है। गैट जैसे क़रारों ने विश्व-मुक्त व्यापार का मार्ग खोला है। परंतु तीसरे राष्ट्र तो इसके नीचे और दब गये हैं। उनपर कई उत्पाद लादे गये हैं। जिनमें भारत का भी समावेश है। 'अध्यक्ष के छाते' रचना में पुणतांबेकर इस ओर संकेत करते हैं। सरकारी विदेशी अर्थनीति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था प्रभावित है। एक ओर आतंकवाद और दूसरी ओर बढ़ते विदेशी ऋण का उसके सम्मुख एक बहुत बड़ा आह्वान है। हमारी शासन-व्यवस्था कई श्रृंखलाओं से बँधी हुई है। जिसके कारण अर्थ-व्यवस्था पिछड़ रही है। 'एक ललकार कथा' की नायिका सुनीता का शासक के प्रति का कथन दृष्टव्य है- "स्वतंत्रचेता लोगों ने ठीक ही बताया था कि तुम मुक्त नहीं हो- पूँजीपतियों, अधमपतियों और अल्पसंख्यक कट्टरों की श्रृंखलाओं से बँधे हुए हो। पर आज मैं कुछ और भी श्रृंखलाएँ देख रही हूँ- विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और अमेरिका की श्रृंखलाएँ।"[२] 'खादीकुटी' में भी पुणतांबेकर विदेशी ऋण के नीचे दबी हमारी खोखली अर्थव्यवस्था पर निशाना साधते हैं। प्रस्तुत रचना का नायक राजाराम के साथ खादीकुटी की सैर करता है। भगवे वस्त्र धारण करने पर उन्हें खादीकुटी में आसानी से प्रवेश मिलता है। राजाराम का कथन है- "ज्योतिषी को कहीं कोई रोकटोक नहीं।.... हमारा देश अन्दर से ज्योतिषियों से चल रहा है जो गज़ट को इधर-से-उधर कर सकता है और बाहर से कर्ज़दाताओं से चल रहा है जो बजट को इधर-से-उधर कर सकता है।"[३]

बढ़ती विदेशी कम्पनियों के कारण सोप, कोला, टूथपेस्ट आदि तमाम कल्चर विकास को प्राप्त हो रहे हैं और हमारी संस्कृति, मानवीयता आहत हो रही हैं। सौन्दर्य साबुन देश को कुरूप बना रहे हैं। एक ओर धनाढ्यों के चेहरे पर

रौनक है, दाँतों में चमक है, कोला उनकी प्यास बुझाता है तो दूसरी ओर गरीब दाने के लिए मुँहताज है। भ्रष्टाचार की महत्ता कि एक ओर घोर दरिद्रता और दूसरी ओर धन की अतिरिक्त आय वाला दृश्य दिखाई देता है। एक वर्ग अपने पाप के धन को विदेशी कम्पनियों के अनावश्यक प्रॉडक्टों को खरीदने में लगाता है तो एक वर्ग उन्हें केवल विज्ञापनों में देखता है। 'एक पर्स कथा' रचना का अंश दृष्टव्य है-

"सोप-कल्चर सो भ्रष्टाचार बड़े विश्वास के साथ कहता है ....दाग़, दाग़ खोजते रह जाओगे।

सोप-कल्चर की नाई टूथपेस्ट-कल्चर ! इधर हमारे दाँत चनों को तरस रहे हैं....उधर उनके दाँतों के लिए नाना पेस्टों का उत्पादन हो रहा है।

सोप-कल्चर की नाई कोला-कल्चर। इधर हम पानी को तरस रहे हैं... उधर उनके लिए नाना कोलाओं का उत्पादन हो रहा है।"[४]

'अर्थ' का कमाल ऐसा कि शत्रु राष्ट्र भी एक-दूसरे के साथ कुछ संधियाँ कर लेते हैं। यहाँ तक तो ठीक, परंतु जब खतरनाक आतंकवादियों पर कार्रवाई करते समय भी बड़े राष्ट्रों की भावनाओं को ठेंस न पहुँचे इसके लिए हमारी सरकारें जागृत हो जाती है तो विसंगति निर्माण होती है। 'बकासुर' में पुणतांबेकर इसी बात को अभिव्यक्ति देते हैं। बकासुर जनता को खाये जा रहा है और उधर दिल्ली उसीका समर्थन करनेवाले बड़े राष्ट्रों से ऋण हासिल करने की, कम्पनियाँ भारत में आकर्षित करने की, शस्त्र खरीदने की, तेल बटोरने की चिन्ता में लगी है। यहाँ संकेत अमरीका जैसे बड़े राष्ट्रों की ओर है।

'डेलिगेट' में पुणतांबेकर हमारी विदेश व्यापार नीति की खबर लेते हैं। उन्हें अफसोस है कि यहाँ अभाव, गरीबी, भूखमरी अपने चरम पर है और हम विदेशों से ऊँचे खिलौने, पामेरियन कुत्ते और तरह-तरह की चिन्दियों के आँफर स्वीकार रहे हैं। यहाँ संकेत फालतू चीजों पर विदेशी मुद्रा नष्ट करने की ओर है। प्रस्तुत रचना में भारतीय डेलिगेटों की देश के प्रति की लापरवाही, देशबांधवों के प्रति की उदासीनता और असंवेदनशीलता को चुभनभरी अभिव्यक्ति मिली है। डेलिगेटों को बस अपना और अपनी दुनिया का स्वार्थ सिद्ध करना भर होता है। विदेश मंत्रालय जब चिन्दियों के आँफर को दोनों देशों के लिए लाभकारी बताता है तो डेलिगेटों को उसमें कोई बुराई नजर नहीं आती। विदेश मंत्रालय और भारतीय डेलिगेटों में हुआ संवाद दृष्टव्य है- "ऐसा आँफर तो चिन्दियों का है। आप हमें कपड़ा भेजें, उन कपड़ों की हम आपको चिन्दियाँ भेजें। आपको यह आँफर कपड़े के निर्यात से लाभकारी रहेगा तो हमें चिन्दियों के निर्यात से।

ओह ! मंजूर है। वैसे भी आज हमें अपने देश में चिन्दियों की बहुत ज़रूरत है। फ़ैशन में, शिक्षा में, राजनीति में, धर्माचार में, शौक में, रुचियों में, समारोहों में, गोष्ठियों में।"[५] और चिन्दियों का सौदा पक्का हो जाता है, जो भारत को आज भी प्राप्त हो रही हैं। 'बाज़ार-भाव : वार्षिक सिंहावलोकन और परिणाम' में अर्थतंत्र की ऐसी ही खामियों पर तीखा प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत रचना में कथनीय बात है कि तेजी हो या मन्दी ग़रीब ही कटता है। चमक-दमक का ऐसा बोलबाला है कि कंटेंट की कीमत एक रुपया है तो रैपर की दो रुपये। ऐसे उत्पाद तो उन्हीं के लिए हैं, जिनके सम्मुख प्रश्न है कि धन को कहाँ रखे ? ग़रीब बेचारे तो इन उत्पादों को खरीदने से रहे। धनवानों को चोंचलों का अपच होता है तो ग़रीब भूखमरी का शिकार बनते हैं। लेखक तिलमिला उठता है, जब अप संस्कृति में धन बढ़ता है उतनी ही असंवेदनशीलता भी बढ़ती है। उसका कथन है- "बँगलों के लिए आदमी के मुकाबले कुत्तों के दाम दोगने बढ़े, तब भी कुत्ता अधिक संख्या में बिका जबकि नौकर की बिकवाली में बेरोजगारी आई।"[६]

सरकार की ग़लत आर्थिक नीतियों के कारण बढ़ी बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी आदि को पुणतांबेकर ने अपनी कई रचनाओं में उरेहा है। 'कथा एक राजा की' में राजा पर कीचड़ फेंकने के जुर्म में गिरफ़्तार किये गये नवयुवक के समर्थन में न्यायालय के सामने युवकों के जत्थे-के-जत्थे जमा हो जाते हैं, यह कहते हुए कि- 'मैंने कीचड़ उछाला है, मैं गुनहगार हूँ।' इस घटना से राजा परेशान हो जाता है और दरबारी से इस बाबत पूछता है। इस पर चेतना-सम्पन्न दरबारी का कथन है- "यह बेरोज़गारी है हुजूर ! ....यह आपकी वे योजनाएँ और नीतियाँ हैं जिन्होंने कालाबाज़ारी और तस्करी पैदा की हैं, वह धर्मनिरपेक्षता है जिसने साम्प्रदायिकता पैदा की है, वह खुला बाज़ार है जिसने खुली लूट पैदा की है, वह बन्दर-बाँट है जिसने पक्षपात और भ्रष्टाचार पैदा किया है। वे प्रकरण हैं जो कांड की संज्ञा पातें हैं।"[७] आज लोगों को श्रम, समर्पण और त्याग की सीख देने वाले दिन दूना और रात चौगुना होते जा रहे हैं और श्रमिक ठिठुर रहा है।

'इक्कीसवी सदी की चाह में !' रचना का कथानायक और भगवान के मध्य का संवाद महँगाई-विस्फोट का जो चित्र

प्रस्तुत करता है वह भारतीय अर्थतंत्र की आसन्नावस्था का परिचायक है। वैश्विक मंदी और मुद्रा-स्फीति के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था में जो कुछ थोडी-बहुत धुकधुकी है, इसका कारण जैसा कि मंत्री बताते हैं- अर्थव्यवस्था सुदृढ़ है, न होकर इसका रहस्य यह है कि "कितनी ही मँहगाई बढ़े, अत्याचार-अन्याय बढ़े, भारतीय ऐसा जीवट का जीव होता है कि वह सब-कुछ चुपचाप सह जाता है।"[८]

पुणतांबेकर स्पष्ट करते हैं कि भारत का विकास ऋण-ग्रस्त विकास है। इसमें जो चहल-पहल दिखाई देती है वह शून्यभाव... मोलभाव वालों की है।[९] बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नीतियों के कारण विकास मुट्ठी भर लोगों का ही हो रहा है। राष्ट्र का आर्थिक विकास इससे बाधित है। सामन्ती आचरण वाले लोग इन कम्पनियों से भरपुर लाभ उठाकर सीमित दायरे में अपना हित देखते हैं। 'ट्यूबवेल' रचना का बनवारी ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधित्त्व करता है। बनवारी की आलोचना करते हुए उसकी पत्नी का कथन है- "इन विदेशों की, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ऐसी नीतियाँ कि आज बाहर लोग रो रहे हैं और इधर अन्दर हम-जैसे मुट्ठी-भर लोग ही निश्चिन्त। अब आगे तो और अधिक लोग रोएँगे।"[९०] 'रोग जरा और मृत्यू' रचना में पुणतांबेकर इस तथ्य पर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि पैसा रोग से ग्रस्त लोगों के जिह्वा को छोड़ बाकी अवयव अक्षम हो गये हैं। अवयवों के अक्षम हो जाने से वे जरा को प्राप्त हो गये हैं। इस स्थिति में उनकी आँखें देखती नहीं, कान सुनते नहीं और त्वचा संवेदनशून्य हो गयी है। इनका साथी बाज़ार मृत्यू को प्राप्त हो गया है, जिसके शरीर के रक्त का पैसा बन गया है। रोग, जरा और मृत्यू से ग्रस्त यह वर्ग भारत के सर्वांगिण आर्थिक विकास में सबसे बड़ा रोड़ा है। पुणतांबेकर का बुद्ध इस रोग, जरा और मृत्यू से मुक्ति का एक-मात्र उपाय सूझाता है- "ऋणग्रस्त विकास पर रोक और मनुष्य-वट के नीचे बैठ स्वयं से संघर्ष।"[९९] परंतु यह एक आदर्श स्थिति है, जिसकी कामना लेखक को है। इसका यथार्थ में उतरना केवल असम्भव है।

पूँजी के ध्रुवीकरण और बाज़ारवाद का ही परिणाम है कि एक तरफ़ दूर तक फैली झुग्गियाँ हैं तो दूसरी तरफ़ मुट्ठी-भर लोगों की अट्टालिकाएँ और कोठियाँ। पुणतांबेकर इन झुग्गियों को रेत की उपमा देते हैं, जो शुष्कता, अभाव, पीड़ा का प्रतीक है। इस जमीन की पीड़ित दुनिया को पूँजी के ध्रुवीकरण की देन मानते हुए वे कहते हैं- "यह तो भाई मार्केट की अमर्यादा की ही देन है। कभी यह रेत सीमित थी, अब असीम होती चली जा रही है। समुद्रमंथन से अमृत निकला वहाँ विष भी, उसी तरह मार्केटमंथन से सोना निकला वहाँ यह दरिद्रता भी।"[९२] 'दो दोस्त और भालू' रचना में पुणतांबेकर विश्व-मुक्त व्यापार में हो रहा पूँजी का ध्रुवीकरण और सामान्य जनता की बेहाली को अधोरेखित करते हैं। प्रस्तुत रचना में सोहन ग़रीब जनता का प्रतिनिधित्त्व करता है तो रोहन अमीर का। भालू बड़े-बड़े कांड, सामान्य जनता की आवाज़ को दबाने की सरकारी नीति और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रतीक है। भालू के आने की सूचना देते हुए सोहन रोहन से कहता है- "हाँ, आ रहा है। वह अब गैट बनकर आ रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का यह भालू- सौदेशी का यह भालू अब आएगा तो तुम जैसे अदेशी लोग तो ऊपर चढ़ जाएँगे पेड़ों पर, लेकिन जो स्वदेशी हैं उनको यह भालू लोभ से गुदगुदाकर....गुदगुदाकर मार ड़ालेगा।"[९३] आशय यह है कि जनता को मूर्ख बनाकर पूँजी की कूँजी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ चलानेवालों के हाथ सौपकर मुट्ठीभर लोग निश्चिन्त हैं। पूँजी का ध्रुवीकरण सिर्फ पूँजी का नहीं अधिकार का, सत्ता का, आतंक का, आरामतलबी का भी ध्रुवीकरण है।

जन-कल्याण के दिखावे की आड़ में होने वाला जन-शोषण चिन्ता-जनक है। आज विदेशी माल और विदेशी कर्ज़ से शासक और अमीरों का जीवन बड़ा आरामदायी बना हुआ है और ग़रीब जनता बेहाली का जीवन जी रही हैं। 'रावण तुम बाहर आओ !' नाटक में शासक वीरसेन देश की दशा के विषय में प्रश्न पूछता है तो अवसरवादी दरबारी नरेंद्र बतलाता है- "बहुत अच्छी हुजूर ! विदेशी माल और विदेशी कर्ज़ की नदियाँ देश में बह रही हैं जिनमें अमीर लोग मस्ती से क्रीड़ा करते हुए नहा रहे हैं।"[९४] इस पर तिलमिलाहट भरी तीखी प्रतिक्रिया देते हुए पिंजरे की औरत का कथन है- "विदेशी शराब और ग़रीबों के रक्त की भी तो नदियाँ देश में बह रही हैं जिनमें आप जैसे लोग मजे से नहा रहे हैं।"[९५] यहाँ शोषकों के बीभत्स आचरण पर लेखकीय घृणा की उत्स्फूर्त अभिव्यक्ति हुई है।

विश्व-मुक्त व्यापार के कारण कुटीर उद्योग प्रभावित हैं। विदेशी कम्पनियों के चमचमाते, आकर्षक रैपर में आवेष्टित माल के सामने कुटीर उद्योगों द्वारा प्रस्तुत किया गया असली माल भी ग्राहकों को अच्छा नहीं लगता। वे उसके प्रति उदासीन रहते हैं। पुणतांबेकर इन तथ्यों को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उनकी सहानुभूति उन छोटे-छोटे हाथों के प्रति है जो इन उद्योगों के माध्यम से अपना जीवन-यापन करते हैं।

'ब्रेकफास्ट की टेबल पर' रचना का अंश कुटीर उद्योगों की उपेक्षा पर तीखा प्रकाश ड़ालता है। प्रस्तुत रचना का नायक ब्रेकफास्ट की टेबल पर बैठ सोचता है-

"चटनी की रकाबी जो खड़ी हुई सॉस की बॉटल के समीप ही बैठी है... इस बॉटल के मुकाबले कैसी बेचारी है !ऐसी बेचारी जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के मुकाबले गृहोद्योग। सौदेशी के मुकाबले स्वदेशी।सॉस भी चटनी ही है, पर वह बॉटल चढ़ी चटनी है- लेबल प्राप्त। चटनी में हम चटनी का.. .प्योर चटनी का आस्वाद पाते हैं। सॉस में सॉस का इतना नहीं जितना लेबल का। और हम लेबल के आस्वाद में जी रहे हैं। तभी तो हम नहाते साबुन से नहीं लेबल से नहाते हैं। दाँत साफ लेबल से करते हैं। लेबल खाते हैं, लेबल दौड़ते हैं। सच कहा जाए तो हम लेबल ही मरते हैं।"[१६] पैकबन्द की आज बड़ी प्रतिष्ठा है, जिसे बड़ी कम्पनियाँ ही दे पाती है, कुटीर उद्योजक नहीं। अतः ग्राहक इनके प्रति उदासीन रहते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस पैतरेबाजी से जबड़ा खोलती हैं कि लोगों को पता ही नहीं चलता कि वे निगल लिये गए हैं।[१७] अतः वे उन्हीं के उत्पादों के प्रति आकर्षित रहते हैं।

विश्व-मुक्त व्यापार संधी ने गाँवों को और अधिक परावलंबी बना दिया। छोटे उद्योगों के बंद होने के कारण गाँवों में गरीबी, बेरोजगारी बढ़ी और बेबसी, लाचारी एक तरह से ग्रामीणों की नियति बन गई। 'एक गाँव की बात', 'साबुन' जैसी रचनाओं में पुणतांबेकर इन तथ्यों पर तीखा प्रकाश ड़ालते हैं। 'एक गाँव की बात' गाँव के परावलंबी होने की गाथा है। इसमें केवल गाँवों की आत्मनिर्भरता के ह्रास पर लेखक फोकस नहीं करता तो मार्केटिंग के द्वारा राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अनावश्यक उत्पादों को ग्रामीणों पर थोपने से उत्पन्न विसंगत स्थितियों को भी नंगा करता है। प्रस्तुत रचना में गाँव के लुहार शहरवाले अपने कारखाने के लिए ले गए हैं। और वहाँ की औरतें पानी खींचते गिर्री के बिना परेशान है। कभी गाँवों के कारीगर ऐसे उत्पाद तैयार कर लेते थे और गाँव वालों को शहर की ओर नहीं ताकना पड़ता था। परंतु अब गिर्री शहर से आने वाली है। सरपंच शहर की कचेरी को गिर्री भेजने के लिए लिख देता है। और शहर से ऐसे उत्पादों की सिफ़ारिश करते हुए एक अजनबी आता है, जिनकी गाँवकी औरतों को कतई जरुरत नहीं है। अजनबी गाँव की औरतों को मेहनती करार देकर, अर्थात् उनकी तारीफ़ कर, जो कि मार्केटिंग का एक तरीका है, कहता है -

"आपको चाहिए विटामिंस !
आपको चाहिए मिनरल्स !
आपको चाहिए प्रोटिंस !
आपको चाहिए कार्बोहाइड्रेट्स !"[१८]

विडम्बना यह कि इसी रचना की पुनिया अपने पति के मलेरिया के इलाज के लिए कुनैन की माँग करती है तो शहराती उसके सम्मुख नेलपॉलिश की सिफ़ारिश करने लगता है। और गाँव के स्कूल से शहर की कचेरी को छत के लिए दरख़ास्त भेजी जाती है तो शहर से पंखे आ जाते हैं। आशय यह है कि जल, भोजन, कपड़ा, आवास, चिकित्सा, शिक्षा किसी भी बात में गाँव आत्मनिर्भर नहीं हैं। और इनकी माँग के बाद भी ग्रामवासियों को ये चीजें प्राप्त नहीं होती तो साबुन, नेलपेंट, पंखे आदि मुहैया कराये जाते हैं। स्थिति ऐसी विसंगत बन जाती है कि रोटी, कपड़ा नहीं पर साबुन है। दवा नहीं पर नेलपेंट है और छत ही नहीं पर पंखा है।

'साबुन' में विदेश व्यापार नीति, दूरदर्शन पर विज्ञापित बड़ी-बड़ी कम्पनियों के उत्पादन आदि से प्रभावित ग्राम-जीवन के प्रति व्यंग्यकार चिन्तित है। ग्रामों की आत्मनिर्भरता का ह्रास तो हो ही गया है और अब जैसे-तैसे श्रम से अपनी रोजी-रोटी का जुगाड़ करने वाले श्रमिको की आत्मनिर्भरता का भी ह्रास होने का ड़र लेखक को है। 'एक गाँव की बात' में अजनबी ऋण लेकर कुलर, खिलौने, सौन्दर्य प्रसाधन की खरीद की सलाह ग्रामीण औरतों को देता है। 'साबुन' की श्रमिक औरत अपने पति से खेल-डिब्बे में दिखाई जाने वाली सुगंधी साबुन बट्टी पाती है। और उससे नहाने की कल्पना भर से पुलकित हो उठती है। यह भी सोच लेती है कि साबुन बट्टी की तरह वह जब अच्छे कपड़े भी पायेगी तो उन्हें पहनकर वह खेत पर काम करने नहीं जाएगी, क्योंकि मिट्टी से कपड़ें खराब होते हैं, बदन खराब होता है। आशय यह है कि ऐसे उत्पादों के आकर्षण के कारण बुनियादी आवश्यकताओं के स्थान पर ग्रामीण ग़रीब फालतू, दिखावटी चीजों पर खर्च करेगा। उसके उपयोग के बाद की फिलिंग से उसके परिवार की श्रम-शक्ति में भी कमी आएगी। अतः उसकी आय कम होगी। वह कर्ज़ पर निर्भर करेगा। और व्यवस्था उसका शोषण आसानी से कर सकेगी। इस प्रकार ग्रामों की आत्मनिर्भरता के ह्रास से भी व्यक्ति की आत्मनिर्भरता का ह्रास बहुत भयावना है। रचना के अंत में लेखक का आशावादी दृष्टिकोण सामने आता है। प्रस्तुत नायिका साबुन की सुगंध में ऐसी खो जाती है कि उसे बच्चों

की, उनकी भूख-प्यास की सुधबुध नहीं रहती। बच्चे जब भूख-भूख करने लगते हैं तो साबुन बट्टी को आले में रख वह खाना बनाती है। और बच्चे जब खा रहे होते हैं तो उसे लगता है "अरे मैं कैसी माँ हूँ ! साबुन के पीछे मैं अपने बच्चों को ही भूला बैठी"[१९] आले में रखी साबुन बट्टी उठाकर वह उसे दूर झाड़ी में फेंक देती है। इसपर लेखकीय टिप्पणी है- "लगा उसने बट्टी नहीं गैट या किसी विदेशी कर्ज़ को ही उठाकर फेंक दिया हो।"[२०] लेखक को तो व्यक्ति या ग्राम की नहीं राष्ट्र की आत्मनिर्भरता अपेक्षित है। और संकेत यह है कि आज राष्ट्र की आत्मनिर्भरता ही समाप्त हो चुकी है।

आज देशी-विदेशी बड़ी कम्पनियों के उत्पादों को विज्ञापित कर गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती तक पहुँचाने का काम टीवी जैसे प्रसारमाध्यम कर रहे हैं। अतः गाँव का छोटा दुकानदार भी इन उत्पादों को अपनी दुकान में रखने लगा है। एक-दो रुपयों के छोटे पाउच में यह माल घर-घर पहुँचता है। और पाउच वाली शहरी संस्कृति आसानी से ग्राम संस्कृति पर हावी हो जाती है। सादगी, सरलता, अपनापन, भाईचारा, मानवीयता, प्रेम, आदरभाव आदि का स्थान भडकीलापन, कृत्रिमता, धूर्तता आदि ने ले लिया है। ये स्थितियाँ पुणतांबेकर को विचलित करती है। इनमें सुधार के लिए वे अपनी रचनाओं में इन पर कहीं प्रहार करते हैं, तो कहीं पर पाठकों के सम्मुख आदर्श रखकर स्थितियों में सुधार की उम्मीद रखते हैं।

ग्लोबल विलेज की कल्पना इतनी सार्थ हुई है कि कुछ मामलों में शहर और गाँव का भेद पूरी तरह से मिट गया है। यह हमारा अनुभूत सत्य है कि अब गाँव में मेहमान का स्वागत गुड़ और ठंडे पानी से, चाय से अथवा शरबत से नहीं होता, तो लिमका, थम्स-अप, माझा आदि से होता है। 'एक गाँव की बात' रचना की औरतें ऊँचे साबुन को छोड़ बेसन से नहाने और रीठे से कपड़े धोने की बात भले करती हो, परंतु ये केवल आदर्श स्थितियाँ हैं, यथार्थ नहीं। बड़ी कम्पनियों के उत्पाद उनपर थोपकर ग्रामों में एक अलग संस्कृति ईजाद करने की साज़िशे आज सफल हो रही हैं।

संदर्भ-

१. जंगल में (नेशनल चैनल : मेट्रो चैनल), शंकर पुणतांबेकर, पृ. ९९
२. पराजय की जुबली (एक ललकार कथा), शंकर पुणतांबेकर, पृ. २३५
३. कटआउट (खादीकुटी), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १०२
४. जंगल में (एक पर्स कथा), शंकर पुणतांबेकर, पृ. ९६
५. कटआउट (डेलिगेट), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १६
६. तेरहवाँ डिनर (बाज़ार-भावः वार्षिक सिंहावलोकन और परिणाम), शंकर पुणतांबेकर, पृ३०१
७. तेरहवाँ डिनर (कथा एक राजा की), शंकर पुणतांबेकर, पृ. २५८
८. पराजय की जुबली (इक्कीसवीं सदी की चाह में !), शंकर पुणतांबेकर पृ. ६२
९. पराजय की जुबली (रोग जरा और मृत्यु), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १३८
१०. पराजय की जुबली (ट्यूबवेल), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १३९
११. पराजय की जुबली (रोग जरा और मृत्यु), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १३८
१२. गिद्ध मँड़रा रहा है ! (माँद के बाहर), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १६९
१३. जंगल में (दो दोस्त और भालू), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १७९
१४. तीन व्यंग्य नाटक (रावण तुम बाहर आओ !), शंकर पुणतांबेकर, पृ. ८३
१५. तीन व्यंग्य नाटक (रावण तुम बाहर आओ !), शंकर पुणतांबेकर, पृ. ८३
१६. तेरहवाँ डिनर (ब्रेकफास्ट के टेबल पर), शंकर पुणतांबेकर, पृ. २५६
१७. कैक्टस के काँटे (मेरी शोध यात्रा), शंकर पुणतांबेकर, पृ. ५१
१८. पराजय की जुबली (एक गाँव की बात), शंकर पुणतांबेकर, पृ. १५५
१९. जंगल में (साबुन), शंकर पुणतांबेकर, पृ. २५०
२०. जंगल में (साबुन), शंकर पुणतांबेकर, पृ. २५०

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

सन्त साहित्य और वैश्वीकरण : मूल्याधिष्ठित सामाजिकताकी प्रत्याशा

डॉ. बबन शंकर सातपुते
सहा. प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
मिरज महाविद्यालय, मिरज।

मध्यकालीन सन्त-साहित्य तथा सन्तों द्वारा वैश्वीकता के अनेक परिदृश्य अवगत होते हैं। उनकी अन्यतम् अभिव्यक्ति मिलती है। साथ ही साकार रूप मूर्त हो उठता है। मानों वहउपलब्धि अपने ठोस प्रमाणोंके साथ जो कि, कालजयी सिद्ध हुआ करती हैं ।अतः मध्यकाल में अनेक सन्त, महात्मा हुए। उनमें अपनी अमिट छाप रखनेवाले समाज के अग्रदूत बनकर समाज को विकासपथ पर लाने का कार्य करते रहें। वे अपनी साधना और तेजस्विता के बल पर मानवीय नैतिक मूल्यों को प्रधानता देते रहें। परिणामस्वरूप वे मानवीयता के हिमायती कहलाए। फलस्वरूप उनकी वाणी द्वारा समाज के विविध चित्र गहन सत्य बनकर मुखरित हुए,जो किसमाज को दिशा-निर्देश करने का सामर्थ्य रखते हैं।

२०वीं-२१वीं सदी में काफी उथल-पुथल हुए। हम इक्कीसवी सदी में जी रहे हैं। वर्तमान में वैश्वीकरण का प्रसार बहुत ही तीव्रता से हो रहा है। वर्तमान स्थिति में वैश्वीकरण, स्वतंत्रता और निजीकरण तीनों तत्व अहम चरम होते जा रहे हैं। ये मानों ''सारी दुनिया एक है'' मानकर ''वसुधैव-कुटुम्बकम्'' की भावना उत्प्रेरित करतें हैं। आज विश्व का प्रत्येक क्षेत्र परिवर्तन हेतु आकुल-व्याकुल है। वैश्वीकरण, दूर संचार क्षेत्र में क्रान्ति, यातायात के साधनों की सुविधाएँ, वैज्ञानिक अविष्कार एवं सुविधा के कारण संसार हमें छोटा-सा देहात मानों अपनी मुट्ठी में महसूस हो रहा है। इसी छोटी-सी बनी दुनिया को हम अपने वश रखना चाहते हैं। मनुष्य की बढती हवस, भौतिक साधनों के पीछे भागने की मानसिकता, अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा आदि के कारण भौगोलिक दूरी समाप्त होने पर भी मनुष्य मनुष्य से दूर जाने लगा है। परिणामस्वरूप आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य मनोविकारों से ग्रस्त मनोरूग्ण-सा बना है। वह अपनी मानसिक शान्ति के लिए तरस रहा है, पर उससे दूर भी होता जा रहा है। इसी की पूर्ति के लिए मनुष्य सन्त-साहित्य का महत्त्व स्वीकारने लगा है। भौतिक बाजारवादी संस्कृति के वैश्वीकरण में उसे सन्तों की वाणी, विचार, ज्ञान तथा उनका साहित्य सही दिशा-निर्देशन तथा मार्गदर्शक के रूप में सर्वाधिक लाभकारकएवं उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस दृष्टि से मध्यकालीन सन्तों, महात्माओं केज्ञानरूपी विचार, उनकी सत्यान्वेषी खोज विशेष महत्त्व, सामर्थ्य रखते हैं, जो समय की मांग सिद्ध होने का हमें एहसास देते है।

तद्युगीन मध्यकालीन परिवेश बिकट, विपरीत स्थिति से झुलस रहा था। काल के दोहरे वृत्त में कबीर, दादू दयाल, नानक, मलूकदास, चरणदास, सूफी सन्त बुल्लेशाह, गरीबदास, सन्त गाडगे बाबा, सन्त कल्याणदेव आदि की वाणी में चरितार्थ ही नहीं, बल्कि जीवन, जीवन-विचारभी लक्षित होते हैं। तद्युगीन विपरीत स्थिति में वे न किसी से समझौता करते, न वे पलायनवादी बनते, बल्किईंट का जबाब पत्थर से देकर समाज में स्थित तथाकथित पाखंड़ो के विरूद्ध अपनी वाणी बुलन्द कर रूढि-परम्परा तथा अन्धविश्वासों पर कठोरता से बरस पडते। दकियानुसी धारणाओं से परे, वसुधैव-कुटुम्बकम् की भावनाओं से उत्प्रेरित, जीवन-मूल्यों के लिए संघर्षरत, नैतिक मूल्य-विचारधारा से अनुप्रणित तद्युगीन सन्त, महात्मा अपनी अनुभवसिद्ध तेजस्विता के बल पर लोकमंगल की भावना जाग्रत कर पाए। इसी सन्दर्भ में अत्युक्ति नहीं, बल्कि प्रासंगिक लगता है कि, सन्तों का जन्म ही जीव-कल्याण,जगत्-कल्याण सिद्ध करता है। उनका पूरा जीवन ही उन्हीं के लिए एक लम्बी, अविरल प्रार्थना होता है। धरती पर उनका मानवों के बीच आना प्रकृति की अनोखी घटना सिद्ध होता है। किसी भी देश, समाज में सन्तों का आगमन आत्मिक-परमात्कि, वेदनात्मक ज्ञान की स्थापना तथा मानवीय अनुभूतियों का स्पन्दित पुरस्करण सिद्ध होता है। विश्वभर के सभी देशों, समाजों में सन्त समय-समय पर मानवों में ही आगे बढकर आपदाओं के शमन, प्रेम के प्रसंग, जीवन्तता के रक्षण, शान्ति, भ्रातभाव और आत्मिक समता के संरक्षण की भूमिका निभाते रहे हैं, निभाते रहेंगे। यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि, सन्त ही जगत् को संभालते हैं, भविष्य में भी और आज भी।''[9] तात्पर्य यह है कि सन्त, महात्माओं की वाणियाँ, उनकी नैतिक विश्वसनीय संस्कृति समूचे संसार को बचाने की उपलब्धि मानी जा सकती है।

अतः सन्तजन अपनी असीम ऊर्जा के बल पर जगत् को संभालने, सँवारने तथा बचाने का सामर्थ्य रखते हैं। समस्त जन-जीवन को उन्हीं राह पर चलने का सन्देश, संकेत देते हुए उसे ही अपना लक्ष्य बनाते रहें।

वास्तविक रूप में कबीर अत्यधिक उच्च कोटि पर विराजमान थें। वे केवल एकत्व की सत्यता पर ही बल देते थें। जो वे सच्ची समता के ही अभिलाषी, बल्कि द्वय से परे थें। जैसे कि, ''धर्म के स्थान पर धार्मिकता, आध्यात्मिकता को बृहत्तर सामाजिक आचरण से जोडकर कबीर ने बहुत बडी नैतिक संहिता प्रस्तुत की है। यहाँ सॉई के सब जीव हैं, कीडी कुंजर दोय की विचारणा देकर समूचे जीव-जगत् को एक सूत्र में बाँध दिया हैं।''[२] अतः वैश्विकता में भी एकता नित रूप में रखने का वे अतीव सामर्थ्य रखते हैं।

मध्यकालीन सन्त-साहित्य, सन्तों की वाणी आदि के आस्वादन से हमें वर्तमान में जीने का बल मिलता है। तमाम निराशा के बादल हटकर विश्व के लिए स्वर्णिम किरणों का प्रकाश मिल सकता है। मध्यकालीन सन्तजनों में कबीर अत्यधिक संवेदनशील और बलकारक भी थें। तद्युगीन सामाजिक स्थिति पतनोन्मुख बनी थीं। सामाजिक विषमता, जातिभेद आदि की दीवारें गहरी बनी थीं। जातिभेद के घाव तो इतने गहरे बने थें कि, उन पर सन्तों की वाणी ही मरहम का काम कर सकती थी। कबीर अपनी नीर-क्षीर विवेक दृष्टि से तद्युगीन खामियों को पहचान कर व्यवस्था तथा उसके निर्माता को बलकारक रूप में ललकारते थें। वे सामाजिक कोढ, जातिभेद, ऊँच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्यता, अनाचार, अन्याय, जुल्म, अत्याचार से निपटते ही नहीं, बल्कि सामर्थ्य जैसी महाशक्ति को भी चुनौती देकर ललकारते ही नहीं, निपटते भी थें। तात्पर्य यह है कि, कबीर में स्वयं का सर देने की हिम्मत अपार थी। फलतः वे हाथ में डंड़ा लेकर सरे बाजार में व्याप्त अनुचित, असंगत पर सामर्थ्य से कोड़े कसते थें। धर्मों के नाम पर व्याप्त अन्धविश्वासों तथा अमानवीय कृत्यों को उघाडने में कमी नहीं छोडते थें। वस्तुतः कबीर तद्युगीन तमाम संकीर्णताओं, क्षुद्रताओं तथा कर्मकांडों को नकारते हुए एकात्मता को प्रतिपादित करते थें। वास्तविक रूप में वे जनचेतना की जागृति के केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि एक सजीव प्रतीक थें,जो हमेशा सजीव रहते हैं। इसी भाँति साधक, सुधारक, विद्रोही, क्रान्तिकारी, क्रान्तदृष्टा कबीर अपने प्रदेय के साथ आज के वर्तमान परिवेश में विद्यमान है। समयानुरूप अपने आपको जन-जीवन में चेतना द्वारा चेतते रहते हैं, जो कि अनिवार्य आवश्यक बनते हैं।

मध्यकालीन लगभग सभी सन्त निम्न तथा पिछडे वर्ग से आए थें। वे सामाजिक अन्याय, जुल्म, यातनाएँ स्वयं झेलते थें। पिछडी जातियों को मानों जहर प्राशन करना पड़ता था। मनुष्यमनुष्य में भेद न करनेवाले कबीर की वाणी सामाजिक विषमता तथा व्यवस्था के विरूद्ध गुँज उठती थी। मनुष्य मनुष्य में भेदभाव करनेवालों को चुनौती देते हुए ''तू बामन, मैं काशी का जुलाहा'' कहकर वेअपने विद्रोह को व्यक्त करते थें। सामाजिक न्याय, स्वस्थ समाज की प्रस्थापना हेतु उनके विद्रोही स्वर में निहित कटु आलोचना, जो उससे मुक्ति चाहती थी। डॉ. नामवर सिह के शब्दों में, ''कबीर सामन्ती व्यवस्था से मुक्ति चाहते हैं, व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से इसके लिए विकल्प स्वरूप उनके पास सामाजिक नीति भी है। इसी विचारधारा के कारण सन्तों का इतना बड़ा आन्दोलन जन्म ले सका, जिसका मूल स्रोत जीवन के प्रति सम्पृक्ति है।''[३] तात्पर्य यह है कि, कबीर सामाजिक न्याय, समानता के पक्षधर थें। अतः वे समन्वित एकता, समता के प्रत्याशी थें। वे किसी एक वर्ग, एक जाति या किसी एक समाज की बात नहीं करते थें। वे किसी को किसी खेमे में बाँटना ही अनुचित समझते थें। अतः कबीर विस्तृत रूप में सभी के हित की बात अभिव्यक्त करते थें।मानों तीनों काल की वाणी उनमें सिद्धरूप थी। उसी का वे अपनी वाणी द्वारा बयान करते थें।

मध्यकालीन सन्त-परम्परा के प्रवर्तक के रूप में नामदेव का नाम अग्र क्रम से लिया जाता है। जातिभेद, कर्मकांड, मूर्तिपूजा के बारे में अपने खंडनात्मक विचार मंडनात्मकताः प्रतिपादित किए और सभी के लिए एकता, समानता के स्वर ध्वनित किए। नामदेव आध्यात्मिक चिन्तन के उच्च कोटि के धनी थें। वे चमत्कार प्रदर्शन के सर्वथा विरूद्ध थें। साथ ही वे मूर्तिपूजा तथा बाह्य पूजा-पद्धति के प्रखर विरोधी भी थें। नामदेव द्वारा परिपुष्ट हुआ वारकरी सम्प्रदाय आज भी दिन-ब-दिन प्रासंगिक एवं विकसित ही नहीं, बल्कि पूर्णरूपेन पल्लवित हुआ है। यह सम्प्रदाय जाति-पाँति, सम्प्रदाय तथा वर्ग विशेष, वर्ण विशेष जैसे भेदभावों से परे समानता का प्रतीक है। इसके साथ ही सन्त रैदास कर्म को धर्म माननेवाले थें। वे भटकगई मानवता को सतमार्ग दिखानेवाले राही ही थें। वे धन कमाने पर नहीं, बल्कि श्रम

पर निष्ठा रखते थें। उनकी दृष्टि से मनुष्य जन्म से नहीं, बल्कि उनके कर्म और आचरण- व्यवहार से ऊँचा हो उठता है।यही सीख वे अनुभव-प्राप्त हित की बात आजीवन परामर्श करते रहें।

वस्तुतः सन्तों की दूरदर्शी दृष्टि और व्यवहार प्रकृति के अनुसार होते हैं। उनमें किसी भी स्थिति में विकार उत्पन्न नहीं होते हैं। उनके स्वभाव ही जीवनदायी संजीवनी की तरह कल्याणकारी हितकारी होते हैं। वे समूचे वैश्विक परिदृश्यों को अपने स्नेह से आप्लावित करते हुए मनुष्य के आगामी जीवन को सज्जित करते हैं। तात्पर्य यह है कि,उनकी दृष्टि हमेशा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास रखती है। आज की भौतिक बाजारवादी संस्कृति में भौतिक वैश्वीकरण तीव्रतर होता जा रहा है। इससे बचने के हर संभव प्रयास निरन्तर शुरू है। ऐसी स्थिति में समाजहित, मानवहित तथा राष्ट्रहित, विश्वहित की दृष्टि से सन्तजनों की वाणी रूपी मरहम की आवश्यकता प्रासंगिक महसूस होती जा रही है। जैसे - "आज फिर मस्तमौला, फक्कड कबीर की आवश्यकता है जो अपना सर देने की हिम्मत रखता हो और हाथ में लकुटा (डण्डा) लेकर सरे बाजार सबको ललकारता हो, खरी-खोटी सुनाता हो। सार्वकालिक वैज्ञानिक धर्म (मानवधर्म) की संस्तुति करनेवाले नानक और रैदास, कर्मप्रधान भक्ति का सन्देश देनेवाले ज्ञानदेव और तुकाराम, मनोवैज्ञानिक व्यवहार का दर्शन समझानेवाले रामानन्द, रामदास। शिवत्व की शिक्षा देनेवाले बसवेश्वर, कौमी-एकता और वतन से मुहब्बत का पाठ पढानेवाले चिश्ती तथा सूफी जायसी, समन्वय के पूरे समर्थक लोकनायक तुलसी और आनन्दमय जीवन के संकेतक सूर, मीराँ और रसखान ये सभी आज भी प्रासंगिक है और आनेवाली अनेक पीढियों तक रहेंगे।"[४] तात्पर्य यह है कि, सन्तजनों के वैश्विक विचार, दृष्टिकोण सार्वभौम तथा समष्टिगत् सामर्थ्य रखते हैं। वे देश-विदेश की सीमा लांघकर सार्वकालिक को स्पर्श करते हैं। वास्तवता से अवगत होने का सामर्थ्य रखते हैं। मानों मूल्याधिष्ठित सामाजिकता बलकारी करने पर ही बल देते हैं।

सार रूप में,मध्यकालीन सन्तजन युगीन परिवेश, स्थिति तथा प्रसंगानुरूप अपने-अपने विचारएवं वाणी अभिव्यक्त करते। उनकी विचारधाराएँ स्वानुभूत तत्त्वों, मूल्यों पर विचार आधारित होती,जिससे वे समाज में विद्यमान विविध खामियों, पहलुओं को स्पर्श करते हुए मानव-मूल्यों तथा जीवन-मूल्यों की प्रधानता का बल देते। भौतिक वैश्वीकरण से निर्देशित करते हुए आगाह हमें करते।तात्पर्य यह है कि,समन्वित कल्याणही अपनी अविरल साधना का धर्म मानते थें। इसी हेतु स्वयं को समर्पित करते थें।परिणामस्वरूप उनकी वाणियाँ युगों-युगों तक मनुष्य मात्रा को दिशा-निर्देशित करने की क्षमता रखती हैं। इसी के मूल में उनकी सैद्धान्तिक तथा नैतिक विश्वसनीयता निहित है। कसौटी की सत्यता हर स्थिति में उनमें निहित है। समय के साथ, बदलते परिदृश्यों के साथ मानवता, मानवीयता कायम रखने का वे सामर्थ्य रखते हैं। मानों वे नितान्त आवश्यकता की पूर्ति हेतु जन-जीवन, जगत्-कल्याण करे नैतिकता, मूल्यपरकता से सिंचते रहते। मूल्याधिष्ठित जनजीवन, समाज, सामाजिकता ही साक्षात् सामर्थ्यवान करते अपनी इतिश्री फलश्रूत ही निश्चय नजर आते हैं। जो कि युगीन मॉग साक्षात् करने की भरसक चेष्टा करते हैं।

सन्दर्भ :-

१) भारतीय सहित्य कोश, लेखक -डॉ. बलदेव वंशी, आध्यात्मिक वैश्वीकरण और भारतीय सन्त साहित्य, पृ. ६२
२) सम्पा. डॉ. बलदेव वंशी, पूरा कबीर, पृ. १३
३) डॉ. नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, पृ. ३४
४) डॉ. संजय कुमार शर्मा, भक्तिकाव्य की प्रासंगिकता, पृ २४७

भूमंडलीकरण और भाषा

प्रा॰ स्मिता मिस्त्री
हिन्दी विभाग।
एच॰ आर॰ शाह महिला आर्ट्स ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
कुंभारवाड, शहीद चौक के पास,
नवसारी_396445 गुजरात।

भूमंडलीकरण का सीधा-सादा व्यापक अर्थ है बाजारीकरण। सारे संसार में होनेवाला प्रभाव या फैलाव अर्थात सार्वभौमिकता भूमंडलीकरण हैं। भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण परस्पर आदान-प्रदान की ऐसी प्रक्रिया है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश द्वारा संचालित कि जा रही है, कंपनियों और सरकारों के बीच अन्तरक्रिया और एकीकरण कर रही हैं। बाजारवाद के वर्तमान समय में मानवमूल्य के साथ साथ जनजीवन का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित हैं। प्रत्येक क्षेत्र इस बाजारवाद को स्वत: अपना रहे हैं या अपनाने पर मजबूर हैं। जब साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन सभी पर व्यावसायिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव है तो भला भाषा कैसे अछूती रह सकती हैं।

अनुभव सिद्ध बात है कि भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं, मनुष्य की पहचान भी हैं। उसमें सामाजिक,सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती हैं। समय के साथ होनेवाले सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनाई पड़ती हैं। भाषा पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का अध्ययन करनेवाले विद्वान प्रभु जोशी का तो मानना है- भूमंडलीकरण का पहला प्रहार भाषा पर होता हैं। भूमंडलीकरण का मूल सिद्धांत एकरूपता हैं। भाषा एक होगी तो भूमंडलीकरण के विस्तार में मददगार साबित होगी।

क्रय-विक्रय की अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रिया में संचार माध्यमों का विशिष्ट महत्व हैं। किसी भी उत्पादक को उपभोक्ता के मन में ललक पैदा करनी होती हैं, और इसके लिए विज्ञापन का सहारा लेना पड़ता है। विज्ञापन बड़ी आसानी से, प्रभावी ढंग से उपभोक्ता को अपनी और आकर्षित कर सकता है। यह जनसंचार की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जनसंचार में ही भूमंडलीकरण की जान बसती है। संचार माध्यम आज के आदमी को पूरी दुनिया से भाषा के माध्यम से ही जोड़ता है। भारत का सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग माध्यम और निम्नमध्यमवर्गीय है, जिसकी समझ अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा में अधिक विकसित है _ अँग्रेजी में नहीं। अत: विभिन्न संचार माध्यमों की भूमिका के केन्द्र में हिन्दी का केन्द्रिय स्थान बन गया हैं।

अब सवाल यह उठता है क्या हिन्दी भूमंडलीय चुनौतियों का सामना कर सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती है, क्योंकि हर बात के दो पहलू होते है_ सकारात्मक और नकारात्मक।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने हिन्दी भाषा की प्रवृति बदली,स्वरूप बदला।भूमंडलीकरण ने हिन्दी के प्रचारप्रसार में आशातीत और विस्मयकारी वृद्धि कर दी। सूचना प्रोध्योगिकी ने हिन्दी के विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाई हैं। इसके बिना ग्लोबल हिन्दी की कल्पना नहीं की जा सकती। आज हिन्दी का भूमंडलीकरण हो गया है और वह अपनी उपस्थिती सिध्ध कर रही है। अंग्रेज़ो ने अँग्रेजी भाषा के माध्यम से पूरे विश्व पर अपना एक छत्र आधिपत्य कायम किया था और हिन्दी को उसके ही देश में खदेड़कर पददलित किया था, किन्तु आज अँग्रेजी की आंखो में आंखे डाल बड़े बड़े राष्ट्रीय निगमों को हिन्दी की चरणरज प्राप्त करने पर मजबूर कर दिया हैं।

बाजार का सीधा संबंध भाषा से है। बाजार में ही भाषा के रूप बनते और बिगड़ते है और कालांतर में स्थायी होते हैं। आज बाजार ने राष्ट्रीय सीमा तोड़ दी है। अंतराष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों से युक्त आदान्प्रदान

की छूट मिलती है तो तो दूसरी और देश की भाषा के लिए विकास का मार्ग भी प्रस्तुत हुआ हैं। अब यह सबंधित भाषा पर निर्भर है कि वह किस प्रकार इस नयी चुनौतियों का सामना करती है। जो भाषा जितनी उदार होगी, समय के साथ साथ बदलती चली जाएगी वह उतनी ही लोकप्रिय होगी, उसकी जीवनक्षमता उतनी ही अधिक होगी। आज किसी भी देशी-विदेशी कंपनियों को अपना कोई उत्पादन बाजार में उतारना है तो उसकी पहली नजर हिन्दी क्षेत्र पर ही पड़ती है। इन्हें बखूबी पता है कि हिन्दी आमजन के साथ साथ उपभोक्ता वर्ग की भी भाषा है, जिसके फलस्वरूप धीरे धीरे हिन्दी वैश्विक अथवा ग्लोबल बनती जा रही है।

भूमंडलीकारण के दौर में 'विज्ञापनी हिन्दी' का विकास और संवर्धन हो रहा है। अनुमान लगाया जाता है कि भारत में करीब 30 करोड़ का एक मध्यमवर्गीय उपभोक्ता वर्ग है जिसके समीप पहुँचने के लिए हिन्दी और भारतीत भाषाएँ ही विशेष कारगर माध्यम बन सकती हैं। अंतर्राष्ट्रीय सेवाओं के क्षेत्र में हिन्दी प्रयोग की असीम संभावनाएँ आकार ले रही है। विज्ञापनी हिन्दी या अन्य भारतीयभाषों में हमें शब्दों, वाक्यों, अभिव्यक्तियों और वाक्यों संयोजनों की विधियों का नया स्वरूप देखने को मिल रहा है। संचार माध्यम की भाषा के रूप में प्रयुक्त होने पर हिन्दी समस्त ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक विषयों से सहज ही जुड़ गई हैं। व्यवहार क्षेत्र की व्यापकता के कारण संचार माध्यम के सहारे हिन्दी भाषा की भी संप्रेषणक्षमता का बहुमुखी विकास हो रहा हैं। राष्ट्रीय ही नहीं,अंतर्राष्ट्रीय चेतना में हिन्दी आज सब प्रकार के आधुनिक संदर्भो को व्यक्त करने के अपने सामर्थ्य को विश्व के समक्ष प्रमाणित कर रही हैं।

भले ही साहित्य की भाषा विशेष परिवर्तित नहीं हुई है किन्तु संचार माध्यमों में प्रयुक्त होनेवाली भाषा विशेष परिवर्तित हुई है। संचार माध्यम की भाषा ने जनभाषा का रूप धरण कर सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा के क्रम में दूसरा स्थान अर्जित कर लिया हैं। हो सकता है हिन्दी जाननेवाले हिंदीतर भाषी देशी-विदेशी हिन्दी भाषा प्रयोक्ताओं को भी इसके साथ जोड़ ले तो हिन्दी दुनिया की प्रथम सर्वाधिक व्यवहृत भाषा सिध्ध हो सकती हैं। कहना होगा की वैश्विक विस्तार पानेवाली हिन्दी भूमंडलीकरण और संचार माध्यमों की आभारी हैं। हिन्दी का यह नया रूप अनेकानेक बोलियों में व्यक्त होनेवाले ग्रामीण भारत की नई संपर्क भाषा हैं और सत्यता तो यह है कि भारत तक पहुँचने के लिए बड़ी से बड़ी राष्ट्रीय कंपनियों को इसीका सहारा लेकर ही व्यापार वृद्धि करनी पड़ती हैं।

मुफ्त बाजार और वैश्वीकरण के दबावों ने हिन्दी को जरूरत और मांग के अनुकूल ढालने में भूमिका निभाई है क्योंकि हिन्दी भाषा का व्यापक प्रयोग जनसंचार माध्यमों की अनिवार्य आवश्यकता बन गई हैं। दुनिया में हिन्दी के साथ साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी वर्चस्व बढ़ा हैं। विश्व के कई भाषिक गलियारों में इस यथार्थ का अनुभव भी किया जा रहा हैं। भारतीय भाषाओं की गज़ब की संवेदनशीलता, विलक्षण शब्द संपदा और अद्भुत शब्द शक्ति की वजह से यह संभव हो सका हैं। हिन्दी अंतर्राष्ट्रीय भाषा तो है ही लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं को केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं रखकर उसे संचार माध्यमों की व्यावसायिकता तथा नैतिकता के मध्य सेतु के रूप में भी स्थापित किया जाय। भारतीय भाषाओं में फुट डालों और पूंजी के प्रभुत्व को स्थापित करो की नीति में छिपी हुई चल को समजते हुए हमें भारतीय भाषाओं को प्यार से, सहयोग से और बिना किसी ईर्ष्याभाव से फैलाना होगा, क्योंकि जब किसी देश की भाषा नष्ट होती है तो उसकी संस्कृति एवं जातीय भाव भी नष्ट हो जाता हैं। लीडियावासियों के साथ भी यही हुआ था।लीडियावासियों को जीते जी मुर्दा बनाने के लिए उसकी भाषा, संस्कृति, जातीय भाव-विचार और वेशभूषा में परिवर्तन कर दिया गया, फलस्वरूप उसकी जातीयता नष्ट हो गयी। इतिहास इस बात का गवाह हैं। कहने का तात्पर्य भाषा बहुत बार मनुष्य के ऊपरी प्रभावों से प्रभावित होने के बजाय उन हमलों से अधिक प्रभावित होती है जो समय-असमय मनुष्य के विश्वासों, संस्कारों, धारणाओं और आस्थाओं पर होतेहैं।

हर भाषा भाषी अपनी भाषा को उत्कृष्ट एवं समृद्ध मानता है। भाषा को लेकर यह संकुचित रवैया ही भाषा के लिए

खतरा खड़ा करता हैं। विदेशी हमारी यह कमजोरी जानते है। अत: अपनी भाषा और संस्कृति थोपने के लिए प्रयत्नशील नजर आते है। किन्तु मनो वैज्ञानिक द्रष्टिकोण से देखा जाय तो केवल अँग्रेजी का विरोध करने से तथा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी को विशेष महत्व देकर भाषाई एकता नहीं स्थापित की जा सकती है। भाषा चिंतक अमरसिंह बधान के नजरिए में वर्तमान चित्र तो यह है कि अँग्रेजी की खाद से अंकुरित नन्ही पीढ़ी और विकसित हो चुकी युवा पीढ़ी अपनी मातृभाषा एवं अपने सांस्कृतिक मूल्यों को हाशिए पर धकेलकर रेगिस्तानी लहरों की ओर आकर्षित है, जहां भटके हुए आदमी को प्यासा ही मरना पड़ता हैं। उपभोक्ता संस्कृति और दूरदर्शन की चैनले हमारी सोचने-समजने की, विचार ने की शक्ति को नष्ट कर रही है। मनुष्य को संवेदनाशून्य बना रही है। सांस्कृतिक आक्रमण, शिक्षा का व्यवसायिकरण, सूचना प्रौध्योगिकी का बाजारीकरण और आयातित विचार-विमर्श भाषाई चेतना एवं वर्गबोध को नष्ट करने पर तुले हुए है।

भूमंडलीकरण भाषिक, सांस्कृतिक एवं मीडिया परक साम्राज्य द्वारा देश की भाषा, संस्कृति और विचार पर अपनी भाषा, संस्कृति और विचार थोपने एवं प्रसारित करने में संलग्न है। ऐसे में हिन्दी को लेकर हम यदि किसी तरह का नकारात्मक रवैया रखेंगे तो हम एक खो चुकी भाषा का रोना रोते रहेंगे और उसे ही पकड़कर बैठे रहेंगे जो हमें खुद ही छोड़ कर जा चुकी है या फिर कहे तो छोड़कर कहीं नहीं गयी बल्कि हमारे बीच बने रहने के लिए हमारे कपड़े, हमारे खानपान और हमारी सोच की तरह वो भी आधुनिक और विकसित हो गई है। मानवप्रेम और भाषाप्रेम ही एकता की बुनियाद है। अपनी भाषा का अहंकार न होकर उसके प्रति गर्व होना चाहिए। भाषाएँ दिल की चीज हुआ करती है, हृदय की सरिताएँ होती है और इन्हें राजनीति से अलग करके ही देखा जाना चाहिए। इस पहलू को केन्द्र में रखती हुई रंजना त्रिपाठी का कहना है बहेतर यही होगा कि सभी गीले-शिकवे को एक ओर रखकर हिन्दी को बेझिझक बिंदास ग्लोबल हो जाने दिया जाय।

संदर्भ आलेख:

1] वैश्वीकरण की दिशा में हिन्दी _ प्रो॰ एस॰ शेषरत्नम।
2] सांझी भारतीय भाषा एवं भावनात्मक एकता _ डॉ॰ मधुसूदन साहा।
3] भूमंडलीकरण बनाम वसुधेव कुटुब्कम_ सरोजकुमार वर्मा।
4] भूमंडलीकरण का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव_ डॉ॰ अमरसिंह बधान।
5] जनसंचार, वैज्ञानिक द्रष्टिकोण एवं साहित्यक परिप्रेक्ष्य _ डॉ॰ दिनेश चमोला।

भूमंडलीकरण से प्रभावित भारतीय युवा वर्ग (उपन्यास 'दौड' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सरोज पाटील
असिस्टंट प्रोफेसर,
श्री शहाजी छ. महाविद्यालय, कोल्हापुर

भूमंडलीकरण एक ऐसी अवधारणा है जो पूरे विश्व में एक संस्कृति विकसित करें । ऐसी संस्कृति जो पूरे भूमंडल को एक विश्वग्राम में परिवर्तित कर समस्त मानव जाति का कल्याण करने के लिए तत्पर हो । भूमंडलीकरण का स्वरुप हमारे वसुधैव् कुटुंबकम् की धारणा के अनुरुप होते तो निश्चित ही आज पूरा संसार प्रकाशमान बनता परंतु सद्यस्थिति में वैश्विकरण एक ऐसी धारणा है जिसका मूलाधार बाजार, बाजारवाद और उपभोक्तावाद है ।

भारतीय संस्कृति प्रारंभ से ही सर्वसमावेशी रही है । जिससे अनेक सारी संस्कृतियां भारतीय संस्कृति में घुलमिलकर एकमेक हो गई है । परंतु अब उत्तर आधुनिक समय में वैश्विकरण की आंधी जितनी गतिमयता से भारत आई है उसने हमारी संस्कृति के पैर उखाड दिए हैं । भूमंडलीकरण ने हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य को पूरी तरह से बदल डाला है जिससे हमारे जीवनमूल्यों में भारी बदलाव आया है । इसने हमारी संस्कृति के पैर उखाड दिए हैं । हम वैश्विकरण के बहाव में बहते जा रहे हैं । हम उपभोक्तावादी संसार के मायावी व्यूह में धसते जा रहे हैं । पूरी दुनिया उपभोक्तावादी संस्कृति में तब्दिल हो रही है । नई पीढी पुरातन जीवन संदर्भो को नकार कर अपने लिए नए आदर्श स्थापित कर रही हैं । पूरे विश्व में लगभग यही स्थितियां सामने आ रही हैं । ऐश्वर्यपूर्ण जीवन प्राप्ति की ललक के चलते मानवीयता, संबंधों की गरमाहट, नैतिकता कहीं लुप्त बनती जा रही हैं । मनुष्य दिन - ब - दिन आत्मकेंद्रीय बनता जा रहा है ।

वैश्विकरण की आंधी में मटियामेट हो रही मानवीय संस्कृति को बचाने का प्रयास साहित्य और विविध कलाएं ही कर सकती हैं । उपन्यास युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य जीवन को मार्मिकता से प्रस्तुत करनेवाली सक्षम विद्या है । हिंदी उपन्यास साहित्य हमेशा ही विषम स्थितियों के विरोध में सजगता से काम करता आया है । भूमंडलीकरण से प्रभावित इस दौर में मूल्यसंक्रमण का विरोध हिंदी उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य बना हुआ हैं । वह अपनी तरफ से वैश्विकरण के विषम मुद्दों का विरोध कर जनहित, मानवकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहा है ताकि हम अपनी संस्कृति और अस्मिता को कुछ हद तक बचा सके । समकालीन उपन्यासों ने सद्यस्थितीयों में बहुत तेजी से अपनी प्रवृत्ति को तत्कालीनता से जोडा हैं । इनमें वर्तमान स्थितियांउपन्यासों के केंद्रिय विषय बनकर रेखांकित हुइ हैं । इन उपन्यासों में अपसंस्कृति, उपभोक्तावाद, नवबाजारवाद, मुक्त बाजारवाद, सांस्कृति विरुपण आदि राष्ट्रीय महत्व के मुद्दे चिंता का विषय बनकर रेखांकित हुए हैं ।

समकालीन उपन्यसों की अपनी समृध्द परंपरा में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्होंने भूमंडलीकरण से प्रभावित भारतीय जनमानस को अपनी रचना का विषय बनाया है । ममता कालिया लिखित उपन्यास 'दौड' इस श्रेणी में अपना खास स्थान रखता है । इस उपन्यास की मध्यवर्ती भूमिका में स्वयं लेखिका ने लिखा है,

'आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया । इसने व्यापार प्रबंधन की शिक्षा के द्वार खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबंधन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिए । बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान किए । युवा वर्ग ने पूरी लगन के साथ इस सिमसिम द्वार को खोला और इसमें प्रविष्ट हो गया । वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया वाद आरंभ हो गया बाजारवाद और उपभोक्तावाद । इसके अंतर्गत बीसवी सदी का सीधा सादा खरीददार एक चतुर उपभोक्ता बन गया । जिन युवा प्रतिभाओं ने यह कमान संभाली, उन्होंने कार्यक्षेत्र में तो खूब कामयाबी पाई पर मानवीय संबंधों के समीकरण उनसे कहीं ज्यादा खिंच गए, तो कहीं ढीले पड गए । 'दौड' इन प्रभावों और तनावों की पहचान कराता है । (दौड - पृ.5/6)

'जहाँ हर महिने वेतन मिलें, वहीं जगह अपनी होती है ।'(दौड - पृ.87) इसी वाक्य को मंत्र की तरह जी

रही युवा पीढी उपन्यास का प्रतिनिधित्व करती है । आज के भरे पूरे बाजार में खडी इस युवा पीढी के सामने महत्वकांक्षाए हैं, भारी भरकम वेतन प्राप्त करने की लालसा है, खुद को साबित करने का जुनून है और क्षण में जीने की जिद है । स्पर्धा की आंधी दौड में रिश्ते-नाते, मानवीयता, संवेदना, शहर, सपना, लगाव, परंपरा सब दम तोड रहे हैं, अर्थहीन बनते जा रहे हैं । रिश्तों में केवल व्यावहारिकता आती जा रही है । स्मृतियां एकदम व्यर्थ ओर सपने केवल तरक्की से जुडते जा रहे हैं । बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के इस दौर में मनुष्य की मनुष्य बने रहने की ताकत क्षीण होती जा रही है ।

इस उपन्यास में लेखिका ने अत्यंत कुशलता से उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिक समय का दर्दनाक आख्यान रचा है । पवन और सघन ये नई उम्र के युवा लडके इस उपन्यास ही नहीं बल्कि समकालीन समय की युवा पीढी का प्रतिनिधित्व करते हैं । ये दो लडके वह प्रतीक चरित्र हैं जो महानगरों में दौडभाग का आधुनिक जीवन जीते मध्यवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय परिवारों में अनवरत सांसें ले रहे हैं ।

यह साहित्य और संस्कृति के बीच पल बढकर जवान हुई पीढी नहीं, इंटरनेट, ई-मेल और सर्फिंग के साथ जी रही पीढी है । यहाँ पर रिश्ते - नातों का कोई संवेदनात्मक स्वर नहीं है । यहा पर नई और पुरानी पीढी में आपसी टकराव है, विचारों का बेमेल है । पाठकों को इस बेमेल से हतप्रभ करने की क्षमता इस उपन्यास में है यह लेखकिय कौशल है ।

इस आलेख में प्रस्तुत उपन्यास को समक्ष रखकर भूमंडलीकरण से प्रभावित जनमानस को विविध मुद्दों के साथ जोडकर चर्चा की गई है ।

तरक्की पसंद युवा वर्ग -

भूमंडलीकरण से प्रभावित आज की युवा पीढी अत्यंक तरक्की पसंद बन चुकी है । उँचे से उँचा ओहदा पाना इस वर्ग का लक्ष्य बन चुका है । इस बीच आनेवाले हर अवरोध को दूर फेंक देने की जीतोड कोशिश करनेवाले इस युवा वर्ग का अपना अलग गणित है और अपना ही सौंदर्यशास्त्र ।

प्रस्तुत उपन्यास के पवन और सघन समकालीन समय के ऐसे तरक्कीपसंद आधुनिक चरित्र हैं जो अपने माता - पिता के पास इलाहाबाद जैसे छोटे से शहर में रहने के बजाय ऐसे महानगरों में रहना चाहते हैं जो नगर उन्हें उँचा मुकाम दे सकें । माता - पिता जब उन्हें अपने अकेलेपन का वास्ता देकर उन्हें अपने पास रोकना चाहते हैं तब पवन स्पष्ट शब्दो में सुना देता हैं कि 'पिताजी मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूं जहाँ संस्कृति हो न हो परंतु उपभोक्ता संस्कृति होनी चाहीए । या 'माँ जब मैं आनेलायक हो जाऊँगा तभी आऊँगा । तुम्हें थोडा इंतजार करना होगा' । ऐसे शब्दों में माँ को अपने भारत वापस न आने के बारे में बतलानेवाला सघन ये दोनों तरक्की पसंद युवा ऐसे प्रतीक चरित्र हैं जो महानगरों में दौडभाग का आधुनिक जीवन जी रहे हैं ।

व्यस्त जीवन शैली -

उँचे से उँचा ओहदा पाना और उसे बनाए रखना इस बीच उलझे वर्ग का व्यक्तिगत जीवन बडा व्यस्त बन चुका है जिसका विषम परिणाम व्यक्तिगत रिश्तों पर होता दिखाई दे रहा है ।

प्रस्तुत उपन्यास के पवन का दिनक्रम इतना व्यस्त है कि उसे उपने माता -पिता से मिलने आने का तक समय नहीं है वह फोन पर ही बाते कर लेता है ।

पवन के पास अपनी शादी के लिए तक समय नहीं है ऐसे में समय और पैसा व्यय करने के बजाय वह एक अध्यात्मिक गुरु के मार्गदर्शन में आयोजित होने वाले सामुहिक विवाह समारंभ में सम्मिलित होने का निर्णय कर लेता है ।

शादी के बाद अपनी करियरिस्ट पत्नी को साथ लिए इलाहाबाद आए पवन के पास गृहस्थी में रमने का समय नहीं है । उसे अपनी नई पोस्टिंग पर चेन्नई जाना है । वहीं उसकी पत्नी अपनी तरक्की की दृष्टी से राजकोट, अहमदाबाद में रहने का निर्णय लेती है । शादी के तुरंत बाद दोनों अपनी अपनी राह चलना शुरु कर देते हैं । अपनी व्यस्त जिंदगी का नियोजन अपने तरीके से करनेवाली इस पीढी को अपने निर्णयों में किसी की दखलअंदाजी पसंद नहीं है ।

रिश्तों में कडवाहट -

टेक्निकल जीवन के आदी हो चुके इस वर्ग को अपने सपनों, अपने भविष्य तथा चकाचौंध के आगे माँ-बाप, रिश्ते-नातों, संबंधो की अहमियत, गरमाहट, उसकी कसक व्यर्थ लगती है । वे जल्द बाजी में अपने रास्ते में अवरोध

ले आने वाले माँ-बाप से छुटकारा पाने के लिए बैचेन हो जाते हैं या फिर उन्हें झटक ही देते है ।

प्रस्तुत उपन्यास का पवन और सघन दोनों बच्चे अपनी अपनी शिक्षा पाने के बाद उँची कंपनियों से जुड जाते हैं । दिन बदिन अधिक तरक्की करा लेने की होड में वे अपने परिवारजनों से दूर हो जाते हैं । धीरे धीरे रिश्तों में कडवाहट आने लगती है । माता-पिता की निकटता के बजाय तरक्की पेशा नौकरी की चाहत उनके हृदय पर कब्जा कर लेती है । माता पिता के बार-बार बुलाने पर भी वे वापस अपने गांव नहीं आना चाहते । अपने ही घर, गाव में उन्हें असुविधा और असहजता महसूस होने लगती है । पवन अपने तरक्की पसंद दृष्टीकोण के अनुरुप स्टेला नामक तरक्की पसंद बिजनेसविमेन से माता-पिता की रजा मंदी के बिना शादी तय कर लेता है । फोन पर माता - पिता को शादी की खबर सुनाई जाती है । पवन का जीवन विषयक दृष्टिकोण साफ है कि, 'मंजिलों के लिए संघर्ष तो करना ही पडेगा । उसकी लाइन में चलते रहना ही तरक्की है । वह जिस दुनिया में है वहाँ एथिक्स नहीं, प्रोफेशनल एथिक्स की जरुरत है ।'

भूमंडलीकरण से प्रभावित, प्रोफेशनल एथिक्स के साथ जी रहा पवन, सघन जैसा बडा सा वर्ग समाज में दिखाई देता है जिनके परिवारों में दिन- ब-दिन गहरी कडवाहट आ रही है । मैं, मेरा जीवन, मेरी तरक्की इस 'मैं' से परे जाकर रिश्तों की अहमियत को पहचान पाने का अभाव इस युवा पीढी में स्पष्टता से दिखाई देता है । यह आज के युवा पीढी की सबसे बडी विडंबना है ।

मानसिक अशांति -

तरक्की, उँचा ओहदा, पैसा, प्रतिष्ठा पाने की चाहत में पगलाया युवा वर्ग मानसिक स्तर पर बडा अस्वस्थ है । आधुनिक पीढी अपनी भागंभाग, स्पर्धात्मकता तरक्की पसंदता की चाहत में कहीं न कहीं अंदर से टूट चुकी है । उसे आत्मिक शांति की आवश्यकता महसूस हो रही है । पवन इसी आधुनिक युवा पीढी का प्रतिनिधि है । पवन ने कृष्णा स्वामी को अपना अध्यात्मिक गुरु माना है । वह अक्सर उनके शिबिर में सहभाग लेता है । जहाँ पहुँचकर उसे कुछ क्षणों के लिए राहत महसूस होती है । वह अपने पिता से शिबिर में सम्मिलित होने का आग्रह करता है । सघन की भी बिल्कुल यही स्थिति है । करियर को लेकर उसके मन में भय है कि उसे खुद को साबित करने का मौका मिलेगा भी या नहीं ।

इसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास द्वारा लेखिका ने भूमंडलीकरण के इस दौर में आधुनिकता के नाम पर समाज में आ रहे जबरदस्त बदलाव का मानवीय संबंधों पर पडा असर तथा व्यक्तिगत तरक्की के पीछे दौड लगा रही युवा पीढी और उनका जीवन विषयक नजरिया पाठकों के सामने रखा है । भूमंडलीकरण के अविभाज्य अंग बने आर्थिक उदारता, खुलापन, वैश्विकरण जैसे शब्दों को अपनाते जा रहे हम अपनी अस्मिता और पहचान खो रहे हैं । अंधानुकरण की बली चढ रहे हैं ।निश्चित ही यह गहरी चिंता की बात है । हम वसुधैव् कुटुंबकम् वाली धारणा के साथ पलकर बडे हुए हैं । पर भूमंडलीकरण का आज प्रस्थापित हुआ अर्थ और रुप हमारी विश्व मानवतावादी धारणा से बिल्कुल अलग है । भूमंडलीकरण की चर्चा प्रायः 25/30 वर्षो पूर्व आरंभ हो गई थी पर विशेषतः 1996 से इस दिशा में विशेष सक्रियता दिखाई देने लगी और आज इसका तीव्र रुप हमारे सामने है । समय रहते ही यदि हम सतर्क न बने तो भूमंडलीकरण की यह तेज आंधी न जाने हमें कहा ले जाएगी । इस आधुनिक दौर में हम भूमंडलीकरण का पूर्ण विरोध तो नहीं कर सकते परंतु इसके श्याम पक्ष को त्यागकर केवल श्वेत पक्ष को ही अपनाए तब ही हम अपने अस्तित्व को बचा सकते हैं ।

आधार ग्रंथ

दौड - ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

संदर्भ ग्रंथ

1. समकालीन हिंदी उपन्यास - डॉ. प्रेमकुमार, इंदुप्रकाशन, अलीगढ ।
2. भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास - पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

वैश्वीकरण और साहित्य

(वैश्वीकरण और समकालीन कविता)

डॉ . नजमा मलीक
हिन्दी विभाग।
एच॰ आर॰ शाह महिला आर्ट्स ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
कुंभारवाड, शहीद चौक के पास,
नवसारी_396445 गुजरात।

नई सदी में जिस एक घटना ने मनुष्य के जीवन सर्वाधिक को प्रभावित किया है ,वह है वैश्वीकरण । बहुत से विद्वान इसे भूमंडलीकरण भी कहते है।1990 के दौर में भारत में उदारीकरण और निजीकरण का सहारा लेकर यह ग्लोबलाइजेशन का जिन्न लगातार बढ़ता ही गया । आर्थिक कारणों से विरोध होने के बावजूद ये नीतियाँ प्रभावी रही और उन्हों ने मनुष्य के जीवन को प्रभावित किया । वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ ‘‘ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं,घटनाओं के विश्वस्तरीय रूपान्तरण की प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते है, तथा एक साथ काम करते है ।यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी ,सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है ।’’ दूसरा अर्थ यह है कि ‘आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन ।’

भूमंडलीकरण ने दुनिया को एक वैश्विक गाँव में बदल दिया है। इस बदलाव से दुनियाभर की संस्कृतियां प्रभावित हुई है । जब विभिन्न देशों के लोग एक-दूसरे के सांस्कृतिक परिवेश से परिचित होते है तो उनके सांस्कृतिक परिवेश में कुछ घटता है और कुछ बढ़ता है । फल स्वरूप उनकी मूल संस्कृति नष्ट होने लगती है । यह सांस्कृतिक संक्रमण समाज में विखंडन और अलगाव ले आता है ,जिससे समाज पतन की ओर अग्रसर होता है । वैश्वीकरण आज के युग की अपरिहार्यता है ,जिसके प्रभाव से विश्व का कोई भी देश अछूता नहीं है ।वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप वैश्विक समाज में व्यापक बदलाव आया है ।विश्व की संस्कृतिया एक दूसरे निकट आई है, तो दूसरी ओर संस्कृतिओं के अस्तित्व पर भी खतरा मंडराने लगा है । इस विषय पर गहन चिंतन होने लगा है । लीलाधार जगुड़ी कहते है--

‘‘ सात सौ साल बाद जो आठ साल की ,
सांस्कृतिक मिलावट वाला समय और समाज होगा
जो कहीं और ज्यादा आधुनिक होगा ।’’

वैश्विकरण के कारण उद्योगों, कल कारखानों और टेक्नोलोजी का अनवरत विकास हो रहा है । जिसके कारण समग्र पर्यावरण – जल, वायु,जमीन, ध्वनि ,धरती ,आकाश और अन्तरिक्ष प्रदूषित हो रहे है । फल स्वरूप सम्पूर्ण जीव प्रजाति का अस्तित्व खतरे में है , इस खतरे को भाँपकर हिन्दी के समकालीन कवियों ने अपनी कविता में व्यक्त किया है ।

वैश्वीकरण के नाम पर उदारवाद, उपभोक्तावादऔर बाजारवाद ने अपने पैर पसारे है । वैश्वीकरण ने जिस बाजारवाद को जन्म दिया उससे आम आदमी की पकड़ से बाजार दूर हो रहा है । महेंगाई बढ़ रही है । सम्पन्न वर्ग इससे लाभान्वित हो रहा है । इसकी चिंता समकालीन हिन्दी कविता में दिखाई देती है । इस वैश्वीकरण और बाजारवाद का प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर भी हुआ है । मानव पुरी तरह व्यावसायिक हो गया है । अपने स्वार्थ के लिए वह अपने सामाजिक सम्बन्धों की भी परवाह नहीं करता । सामाजिक सम्बन्धों में खोखलापन आ गया है । मानवीय संवेदनाएँ नष्टप्राय हो रही है । कवियित्री निर्मला पुतुल कहती है—

‘‘ कौन है जो हमारे पेड़ों पर आम लगते ही पेड़ों का सौदा करता है ।
और हम अपने घर के पिछवाड़े फले आम से वंचित हो जाते है ।
कैसे वह बोतलों में बंद होकर पहुँच रहा है? बाजारों तक ।’’

इन्हीं खोखले सम्बन्धों के बारे में अशोक अंजुम कहते है–

‘‘ कभी रिशता बदलती है , कभी चेहरा बदलती है ....
सियासत क्या कहूँ तुझ से कि तू वो वर्स है जो कुछ
हरे कागज के टुकड़ों पर कभी कब्जा बदलती है ।’’

बाजारवाद ने आज मनुष्य को भौतिक सुख सुविधाएँ परोसकर उसकी इच्छाएँ ,उसकी लालच को बढ़ा दिया है । अति महत्वाकांक्षी मनुष्य ने प्रकृति द्वारा दिए गए शरीर के साथ अनेक प्रयोग कर एक नया रूप प्रदान कर दिया है फल स्वरूप प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है इसचिन्ता को लीलाधार जगुड़ी इस तरह व्यक्त करते है–

''आज शरीर विज्ञान में हो रहे अनुसंधान की एक खबर पढ़ी
कि उस दवा के सेवन से अब आदमी बूढ़ा नहीं होगा।
यह कितने दु ख की बात है कि आदमी जवान रहेगा
और मर जाएगा।''

बाजारवाद का ही जीवन दर्शन है –निर्लज्ज उपभोक्तावाद । उपभोक्तावादी संस्कृति ने नई –नई वस्तुओं की भूख पैदा की है ,चाहे वे वस्तुएँ जीवनयापन में उपयोगी हो या न हो। व्यापार का पुराना नियम था ' मांग के अनुसार पूर्ति वैश्विक बाजारवाद ने इस नियम को उलट दिया है । पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली अपना उत्पादन इस दृष्टिकोण से करती है कि किस चीज को बनाकर महत्तम लाभ पाया जा सकें। फिर वह अपने उत्पादन की मांग पैदा करते है । आवश्यकता न होने पर भी मध्यम वर्ग उस उत्पादन को खरीदता है ।मुनाफा वैश्वीकरण का मूल मंत्र है निजीकरण और उदारीकरण का सहारा लेकर वैश्वीकरण ने मानव को छोटी छोटी राहतें और छोटी छोटी खुशियाँ देकर उसका सुखी संसार छीन लीया है ।मनुष्य इस नए और बदले हुए समय में अपने पर्यावरण से भी उदासीन हो गया है । खेतों की जगह बडे-बड़े मकान बन रहे है। मोबाईल टावरों ने पेड़ों की जगह ले ली है । कवि निदा नवाज 'मोबाइल टावर' कविता में कहते है –

'' उस पेड़ (चिनार) की जगह,
हमारे आँगन में लगा है ,
एक मोबाइल टावर ,टहनियों की जगह यंत्र
घोंसलो की जगह गोल- गोल एंटीना ''

तकनीक ने मनुष्य को सुविधाभोगी बनाकर उसके जीवन की सादगी और सहजता छिन ली है।

आज वैश्वीकरण के कारण विभिन्न उद्योग ,कल-कारखाने और विभिन्न योजनाएँ स्थापित हो रही है इनमें प्रयुक्त रसायनों ,मशीनों और बढ़ते यातायात के कारण जल ,वायु,जमीन एवं ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। पर्यावरण पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड रहा है। सम्पूर्ण जग का जीवन खतरे में है। कवि देवेंद्र आर्य अपनी रचना 'पर्यावरण' में इसी खतरे से आगाह करते है --

''वह दिन आने ही वाला है कि धरती बिकेगीपोलिथीन की
थैलियों में
बचा होगा अगर मौसम कहीं तो पर्यावरण की रैलियों में ''

जिस तरह प्रदूषण बढ़ रहा है उसके लिए रैलियाँ निकाल रही है , सेमिनार हो रहे है ,पर मानव जात जागृत नहीं हो रही ।प्रदूषण फैलानेवाली चीजों के धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। पर्यावरण की इसी चिंता को अनीता वर्मा ऐसे व्यक्त करती है–

''इन्सानों से भरी इस दु निया में,
मै खोजती हूँ एक मनुष्य।
जो बाशिंदा हो इस मृत्युलोक का,
धरती पर आए हुए पहले नि;स्वार्थ प्राणी की तरह।
अपने जीवित स्वप्नों के साथ ,
जो परिंदों की तरह उड़ता हो।
बचाता हो पृथ्वी का हरापन ,
पहाड़ों की सरकती मिट्टी को।
फिर से पहाड़ों में रखता हुआ ,
डालियों को जमाता हुआ पेड़ों की ठूंठ में।''

मानव जीवन प्रदूषित पर्यावरण से बुरी तरह प्रभावित हुआ है ।विभिन्न बीमारिया , महामारियाँ फ़ैल रही है असंतुलित प्रकृति प्राकृतिक विपदाएँ ढा रही है । यह चिंता का विषय है। हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति की है ।

मुक्त बाजार के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दखलअंदाजी इतनी बढ़ी है कि ग्रामोद्योग साँसे गिन रहे है। मॉल कल्चर और विदेशी संस्थानों के आगमन पर छोटे निवेशकों का व्यवसाय बंद हो गया है , रोजी-रोटी छिन गई है । कई लोग बेरोजगार हो गए है । मृत्युंजय 'वॉल मार्ट अभ्यर्थना' में अपने विचार ऐसे व्यक्त करते है—

'' छोटे बनिए औ व्यौपारी
लकड़ी राशन औ तरकारी
सभी बिकेगा बड़े मॉल में
बेरोजगारी औ लाचारी
थोक भाव से उपजायेंगे
स्विस बेंक में रख खाएँगे। ''

नई अर्थ व्यवस्था कि सबसे अधिक मार किसान झेल रहे है । कृषि ही जिनका पारिवारिक व्यवसाय है । जिनका जीवन और आजीविका खेती से जुड़े हुए है, तथाकथित उदारीकरण ने उनको मृत्यु के कगार पर ला खड़ा किया है । किसान रोज आत्महत्या कर रहे है । सरकार के पास उनकी समस्या का एक ही हल है – कर्ज । राहत के नाम पर किसान उस फंदे में उलझ कर रह जाता है अंतत; वह ख़ुदकुशी के लिए मजबूर हो जाताहै । कविओं की संवेदना इस त्रासदी से कैसे अछूती रह सकती है ?सुरेश सेन अपनी 'किसान' कविता में ऐसे व्यंजित करते है –

''वह मरा ,
जब फसल कटनी के दिन थे ।
वह मरा ,
जब बादलों को बरसना था ।
फूल खिले हुए थे ।
खुशी की बयार में झूम रहा था सेंसेक्स। ''

पूरे विश्व के अन्नदाता किसान की मृत्यु पर दो आँसू बहाने वाला भी कोई भी नहीं।

वैश्वीकरण ने दुनिया को एक ग्लोबल विलेज में बदल दिया है । जिसके फल स्वरूप बाजार वाद ने स्त्री शोषण और हिंसा को बढ़ावा दिया है ।वैश्वीकरण ने नि;संदेह भारतीय महिलाओं की स्थिति को भी प्रभावित किया है । इस वैश्वीकरण में आज स्त्री वस्तु की तरह पेश की जा रही है । बाजार वादी संस्कृति ने विज्ञापनों में स्त्रियॉं की भूमिका का बखुबी इस्तेमाल किया है । विज्ञापनों से सबसे ज्यादा स्त्रियाँ और बच्चे प्रभावित होते है । चाहे वह गृहस्थी से संबन्धित वस्तु हो या खेल से , सौंदर्य प्रसाधन । जो स्त्रियॉं और बच्चों को लुभाने की क्षमता रखते है । यह उपभोक्तावादी समाज नारी मुक्ति के नाम पर उसका शोषण कर रहा है। स्त्री भी नासमझी के कारण अपने देह को प्रदर्शित कर स्वयं को मुक्त और आजाद समझ रही है ।नारी देह और उसके अंगों के साथ बाजार का यह व्यवहार घरेलू हिंसा को भी भड़का रहा है। वैश्वीकरण के बावजूद भारतीय परिवार और समाज में महिलाओं की भूमिका को लेकर कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया हे । अशोक अंजुम इस चिंता को व्यक्त करते हुए कहते है –

जब से हुई सयानी बिटिया ,
भूली राजा – रानी बिटिया ,
बाज़ारों से आते- जाते होती पानी –पानी बिटिया ।

निजीकरण , उदारीकरण और वैश्वीकरण ने एक ऐसी व्यवस्था रची है , जिसने समाज को तोड़ने का काम किया हैइस नई व्यवस्था ने व्यक्ति के शोषण का मार्ग प्रशस्त किया है । इस वैश्वीकरण ने विभिन्न समस्याओं को भी जन्म दिया है । मनुष्य इसके प्रभाव में आकर अपनी संस्कृति , भाषा , संस्कृति ,संस्कारों ,मूल्यों , अस्मिता, नैतिकता ,मानवता आदि को भूलता जा रहा है , उसमें असंवेदनता और मशीनी जड़ता घर कर रही है । आनेवाली पीढ़ी का भविष्य अंधकारमय बनता जा रहा है । हिन्दी के समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से निर्जीव और संवेदनहीन होती मानवता को जगाने का प्रयास किया है । पंकज चतुर्वेदी 'एक ही चेहरा' में कहते है –

'हम अनुयूद्ध की ताकत का दुख नहीं चाहते ,
धरती पर विस्फोट नहीं चाहते ,
हम थोड़ी सी धरती ,थोड़ा सा आकाश चाहते है ।
हम धरती का प्यार चाहते है ,
हम तितली और फूलों का प्यार चाहते है ।''

संदर्भ ग्रंथ:

1. बर्फ और आग - निदा नवाज
2. स्याह हाशिये - मृत्युंजय
3. समकालीन हिन्दी कविता – विश्वनथ तिवारी –राजकमल प्रकाशन
4. साहित्य लोचन - डॉ॰ श्यामसुंदर दस

भूमंडलीकरण और मानवीय मूल्य

प्रा. हेतल डी देसाई।
अंग्रेजी विभाग
एच.आर.शाह आर्ट्स ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज
नवसारी – 396 445
दक्षिण गुजरात, भारत

आधुनिकताकी शुरुआत १९ वी सदीसे हुई है जिसने इन्सानके सोच विचारके बदलावसे क्रांतियों का सृजन किया और भूमंडलीकरणकी अविरत यात्रा शुरू हुई। विश्ववादके पहलूके प्रथम चरणमे आर्थिक आधार पर एकीकरण करनेमे टेलीग्राफ और रेलवे वाहक बने। नई दुनियाके भूमंडलीकरणमे प्रोध्योंगिकी और प्रबंधकीय राजनीति हावी हो गई। उत्पादनका भूमंडलीकरण हुआ जिसके कारक ई टरनेट और उपग्रहीय चेनलोके रूपमे संचार क्रांति बनी। बाज़ारपर कठोर प्रभुत्व हुआ जिसने कई आंदोलनोको उजागर किया जैसेकी पर्यावरण चिंता, नारीमुक्ति, गैरसरकारीस्वयंसेवा इत्यादि। इसने भारतकोभी सम्मलित किया। इस प्रक्रियासे सांस्कृतिक हमला,असहमति,अलगाव, नाउम्मीदिपनपे जिससे समाजकी चिंतन प्रक्रिया और राजनीतिमे क्रांतिकारी परिवर्तनसे पूंजीवाद आधुनिक युगका फलसफा बन गया।

भूमंडलीकरण तमाम समस्याओं का एक मात्र समाधान नहीं है लेकिन आध्यात्मिकता, सृजनशीलता, सभ्यतामूलकता, आत्मविश्वाससे कुछ बहैतर सूत्र तलाशते मानवीय मूल्योका ह्रास रोकते हुए उसका एक मजबूत स्थान समाज एवं व्यापारके हरएक क्षेत्रके लिए जरूरी है। प्रत्येक युगकी अपनी तराह होती है, मांग होती है, वैचारिक परिवर्तन होता है, बदलाव होता है, संधर्ष नये और पुरानेके बीच अक्रित होता है लेकिन जब मूल्यो की बात आती है तो भले ही भारत का समाज विकासकी द्रष्टि मे काफी पुरानी अवस्था मे लगे लेकिन सहअस्तित्व,सहभागिता, सदभावना का संदेश पाश्चात्य दुनिया की आधुनिक सोच से भी पहेले सोचता आया है।

भूमंडलीकरण के साथ विश्व के विकासशील देशो मे भारत अपनी परंपरागत सोच के जरिए पिछड़ा हुआ माना गया है लेकिन आज अपनी नई पहैचान कायम करते हुए विश्व को मानवमूल्यो का महत्व जताता है। भारत का नव मध्यम वर्ग आर्थिक विकास मे, अपनी विशिष्ट उपस्थिति के साथ दुनिया के कई देशो के सामने तन कर खड़ा है क्योंकि मानवमूल्यो की प्रधानता के साथ परंपरागत ढांचे को सामंजस्य और सुध्रढ़ता बक्षी है। मानव मूल्यो की संकल्पना जो भारतीय ऋषिमुनिओ ने पुरातन काल से की थी वह दुनिया मे बदलाव की आँधी मे अलग नीति और नियत के साथ अपने अर्थतन्त्र की मजबूती और सामाजिक संस्थान को बनाए रखने मे सफल रही है।

मानव मूल्य का रक्षण, भारतीयता और आधुनिकता के रहन सहन, वेषभूषा, शिक्षा, संस्कार,कार्य, व्यापार,आदि मे, भारतीय विरासत को सुरक्षित रखने मे उत्तरदायीहै। लेकिन भूमंडलीकरण का जो भी प्रभाव होदुनिया की तस्वीर स्व केन्द्रित व्यवहार से अस्थिर हुई है। समावेशी दर्शन की जरूरत हुई है। साथ चले सबके लिए चले। तमाम मौलिक चीजे मौलिक नहीं रही। विश्व को एक ग्राम मे तब्दील करने का उदेश्य बहैतरीन है लेकिन पूंजी निर्माण की गति को बढ़ावा मिल गया है। उदारीकरण की बाते अच्छी है जो पिछले डेढ़ दशक से कृति, स्वास्थ्य, शिक्षा, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, प्रशासन, सुरक्षा, यातायात, शहरी एवं ग्रामीण विकास इत्यादि क्षेत्रो मे विकास के लिए कार्यान्वित है। इसके लिए अहम भूमिका सूचना प्रौध्योगिकी की है जिसका दूसरा पहेलु समाज है।

सारा भूमंडल एकीकृत हो गया है। इस प्रक्रिया से सुचना – तकनीकी एवं प्रौध्योगिकी की तरफ बढ़ते हुए सबसे बड़ा खतरा संस्कृति के लिए पैदा हुआ है। इतिहास गवाह है की जब जब समाज भ्रमित हुआ है तो मानव मुल्य ने अपना दायित्व निभाया है। सुचना – तकनीकी और मीडिया का प्रभाव औध्योगिक और व्यावसायिक जगत को तो सम्पन्न करता है अपितु सामाजिक – सांस्कृतिक जीवन मे भी वैचारिक क्रांति लाता है। उपभोकता वादी सभ्यता रचनात्मकता, परिणाम प्रभावकता और समाधान तत्परता की क्रियाशीलता की कसौटी

कानिर्माण कर रही है। भूमंडलीकरण मे मानव समाज अदम्य ईच्छा मे फसता जा रहा है। जिसके साथ टिकाऊ, श्रेष्ठतमता, उपयोगिता, नवीनता जैसे मूल्यो का महत्व बढ़ गया है। मानव समाज पिछडना नहीं चाहताहैतब देशीकरण का संतुलन विकास के साथ सुरक्षित रहेना चाहिए। मतलब की देश के खुद के लोगो का श्रेय मूल्यनिष्ठा से मिल सकता है। विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए अनिवार्य हो गया है कि जन-जन तक पहुचने के लिए सहभाव, सहयोग, परवाह जैसे मानव मूल्यो का उपयोग करेंगे तो 'सांस' और 'विश्वास' यानिकि मानव पर्यावरण का तालमेल बैठ जाएगा।

पिछले दशक नगद का आगमन अच्छा हुआ किन्तु कईओं की रोजी रोटी छिन गई। कई बेरोजगार हो गए। बदलाव भी ज्यादा दिखता है पर भय,आशंका, गलतफहमी, अव्यवस्था हावी हो गई है। विश्व की अनेक संस्कृतियां का अस्तित्व खतरे मे दिखता है। मूल संस्कृति नष्ट होने की तरफ प्रवृत दिखती है। चिंता का विषय तो है ही पर तब मानव मूल्य मे टीका विश्वास ही जरूरी बनता है जो संवेदनशीलता और जीवंतता जैसे मानव मूल्योको बरकरार रखना जरूरी बनाता है। यहाँ आवश्यक है सांज़ी संवेदनाओं का भूमंडलीकरण और उसे संभवित करना। इसके लिए तकनीक और प्रौध्योगिकी एक विशाल शक्ति के रूप मे उभर के आएँहै। मानव सभ्यता के इतिहास मे विज्ञान से मानव विकास मे इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा जितना सूचना प्रौध्योगिकी से, क्योंकि यह अंत: संबंधो को जोड़ रही है जिसकी व्यवस्था मे भी मानव मूल्यों का महत्व बढ़ जाता है। हरिफाई के साथ सह तालिम, सह योजना,सह प्रयत्न जैसे मूल्य प्रखर होते है।

भूमंडलीकरण के फल स्वरूप उत्तपन हुई स्थितियों मे संवेदनात्मक ह्रास, पारिवारिक या सामाजिक सम्बन्धों का बदलता स्वरूप, स्त्री – पुरुष सम्बन्धों की बदलती संवेदनशीलता, तनाव, घुटन, विस्थापन, आर्थिक विसमताएँ अवश्य ही मूल्यों के स्वरूप मे परिवर्तन जतातें है। पिछले पंद्रह सालों से समाज के हर एक क्षेत्र मे बदलाव व्याप्त है न कि सिर्फ राष्ट्रीय या राज्यकिय क्षेत्र मे। प्रजा की इच्छाएँ और आशाएँ, रोजिंदा अस्तित्व और भविष्य के आयोजन को भूमंडलीकरण से हुए बदलाव ने प्रभावित किया है। बदलाव कहो या बिगाड़, लेकिन मानव समाज के हकारात्मक व्यवहार के पुनः निर्माण के लिए सभी को प्रवृत्त होना चाहिए। भारत भी इसकी अनुभूति कर रहा है। पिछले सात सालों से यहाँ मध्यम वर्ग अत्याधिक लाभों को ग्रहीत करता है अपने क्षिशा, नौकरी और उपयोग मे। पूरी परिस्थिति वै से तो अच्छे समाचार को दर्शाती है लेकिन मानवीय गरिमाजीवन मे रही नहीं है क्योंकि इच्छाएँ बढ़ती चली जा रही है। जिसको लाभ हुआ है वह सामान्य कामदार की अस्तित्व टिकाए रखने की भयानक परिस्थिति से अपने को ज्यादा संतुष्ट मानता है और मानवीय द्रष्टि सेउन बदनसीबों के लिए दिलगीर होना चाहिए पर सफल व्यक्ति स्व केन्द्रित होता जा रहा है।

भूमंडलीकरण ने हरिफ़ाई महेंगाई, कर्ज जैसी मुसीबतों को बढ़ाया है। मूल्यों की यथार्थता पर संदेह बढ़ने से मानव समाज अपने आप को बहुत अरक्षित महसूस करता है। आज संवेदना सुख रही है और बाज़ार पनप रहा है तबसबसे बड़ी आवश्यकता मानव पक्ष मे खड़े रहने मे है। याने की सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों के रखरखाव और निर्माण नव युवाओं मे उजागर करना सबका कर्तव्य रहैगा। सार्वभौमिकमान - मतलब विभिन्न वर्ग और उम्र के कई लोगों की नैतिकताएँ, मान दँडो और स्थानों को एक जुट करना,उन्हें कानून या सिध्द्धांत माननाजो सभी के लिए महत्व पूर्णहै। अक्सर सार्वभौमिक मूल्यों कला सौदर्य की ईच्छा, दुनियाको जानने की ईच्छा, अपने आप मे मनुष्य को पूरी तरह नया बनाने की ईच्छाहैजो आदिम समाज मे भी लोगों ने की थी।

भूमंडलीकरण का विचार प्राचीन काल से चला हैक्योंकी सदियों से स्मार्ट शासकों ने भी मानव गरिमा, विश्वास, कर्तव्य, न्याय, ज़िम्मेदारी, सच्चाई, समानता, ईमानदारी जैसे मूल्यों की बात की है जो आज भी जारी है। मूल्यों के द्वारा सभी प्रकार की 'वस्तुओं' का मूल्यांकन किया जा सकता है चाहै वह भावना,विचार, व्यक्ति, समूह आदि हो। वहाँ उद्वेग सहज ही आकार लेता है जब मानवों को अपनी परिस्थितिगत वातावरण का संतुलन जीवन निर्वाह की समस्याओं का सामना अन्य लोग-समाज-समूह से सामना और भागीदारी करके संस्कृति का आदान प्रदान करना पड़ता है और भूमंडलीकरण से पनपति भौतिक समृद्धि मूल्यों को दाव पर लगा देती है।उदाहरण के तौर पर बुध्द्धिजीविओं और हुन्नरमंदों का स्थानान्तर अन्य देशोंके हित को प्रखर करता है और खुद के देश के समाज मे अहंकार, तलाक, वृध्द्धाश्रम जैसे अवमूल्योंको आकार देता है। भूमंडलीकरण से पारिवारिक संरचना में एकजुटता स्नेह, सेवा,

संबंध जैसे मूल्यों का ह्रासशुरू हो गया है। वर्तमान युवा पेढ़ी मे बातचीत वित्तीय स्थिति और धन संचय या कमाई पर केन्द्रित हुई है और आनंद - आशीर्वाद से मिलते एकजुटता के मूल्य को खोदिया है। कह सकते है कि भूमंडलीकरण के लोभ ने आत्मा कि हत्या किहैजिसमे असमानता और स्तोत्रों का बुध्धिविहीन दुरुपयोग,वंचितता और निम्नता भी सामील है। एक बात तय है कि भूमंडलीकरण कि कार्यवाही मे सच्ची और मानवीय दुनिया के लिए पारदर्शिता और जवाबदेही की अति आवश्यकता है। भूमंडलीकरण से समाज मे आई प्रभावक प्रगति मे जरूरी यह है कि ध्यान वैश्विक स्तर और उसके विकास के सांज़े मूल्यों की नई शक्यताओं पर होना चाहिए।

सब बात करतें है, मंतव्य देते है, लेकिन किसी को भी पूरा यकीन नहीं हैलेकिन सब वैश्विकता से बातें कर रहैहै। भूमंडलीकरण रहैने वाला है, विकास पानेवाला है। मूल्यों की भावना और सांज़ा कल्याण उसे न्यायिक रूपसे कार्य करने देगी और विस्तृत रूपसे स्वीकृति भी दिलाएगी। लेकिन मानव मूल्य को आत्मसात करना सहज नहीं है, वे शिक्षा की प्रक्रिया से ग्रहण होते है। सभी भाषाओं के साहित्य मे लोक हित का स्थान अग्रसर रख कर,पूंजीवाद के कारण, विश्व गाँव की परिकल्पना को क्रूरताओं, स्खलनों और चालाकियों और निराशाजनक परिस्थितियों को जताते, साहित्य पस्त नहीं होगा। क्योंकी विषम परिस्थिति मे सामाजिक समरसता और मानव मूल्य को बचाए रखने या संजोने का दायित्व साहित्य का है।

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

आधुनिक हिन्दी कविता का यथार्थ : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

आशीष कुमार गुप्ता
सहायक शिक्षक पंचायत
शा. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, भंवरमाल
रामानुजगंज (छ0ग0)

''वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।''[1]

एक साहित्यकार की लेखनी समग्र विश्व को अपने भीतर समाहित कर लेती है और यदि वह साहित्यिक धारा आधुनिक परम्परा की हो तो उनका आरंभ तो लोक से विश्व तक निरन्तर रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता रहता है। इनकी रचनाओं में समग्र विश्व उपस्थित हो जाता है। इन दृष्टिकोणों से समाज में फैली विसंगतियों का विरोध करते हुए विश्व को एकसूत्र में आबद्व करते हुए वैश्वीकरण के सकारात्मक पक्ष को आधुनिक हिन्दी कविता प्रस्तुत करती है।

कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को ग्राम्य प्रकृति अत्यन्त प्रिय है। वे अपने ग्राम्यलोक को विश्व लोक पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। कविमन यह जानता है कि कविता कालजयी और सशक्त तभी बन सकती है जब उसमें ग्राम्य जीवन के परिदृश्य विद्यमान हों। कवि की कविता 'गाँव का सपेरा' में कवि अपने गाँव की सरसता व प्राकृतिक सौन्दर्यता का बखान, चीन के प्रसिद्ध लेखक, विचारक व शिक्षक लू शुन से करते हुए कहते हैं कि – ''आओ लू शुन/मैं तुम्हें अपने गाँव का सपेरा दिखाना चाहता हूँ/चालीस साल पहले मैंने इसे देखा था/एक तालाब था/जिसके किनारे इमली के बड़े–बड़े पेड़ थे/फिर एक मन्दिर और खेत ही खेत/बीन बजाती थी तो साँप सा नसों में कुछ रेंगने लगता था/और झाँझ हुडुक दाहिदा दाहिदा/दिशाएँ गूँजती थीं।''[2]

समकालीन कवि अपनी लेखनी से सिर्फ अपने देशहित की बात नहीं करते वे विश्वहित की बात करते हैं। अपनी दूरगामी और संवेदित हृदय से जन–जन की पीड़ा को अपनी पीड़ा के समान तवज्जो देकर कवि विश्व के लोकमंगल की कामना करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर सबका समान अधिकार तथा सबको स्वतंत्र जीवन–जीने की कामना करते हुए कवि दिनकर जी अपनी कविता 'सहयोग श्रम और शान्ति' में कहते हैं –

''सबको मुक्त प्रकाश चाहिए, सबको मुक्त समीरण।
बाधा रहित विकास, मुक्त आशंकाओं में जीवन।।
उद्भिज निभ चाहते सभी नर बढ़ना मुक्त गगन में।
अपना चरम विकास ढूँढना किसी प्रकार भुवन में।।''[3]

इसी कविता के अगले क्रम में कवि ने संसार में फैली असमानता पर कुठाराघात किया है। आर्थिक विषमता, छुआछूत, भेदभाव जो समाज के विकास में सबसे बड़ा बाधक है उनके खिलाफ कवि की संवेदना भरी पंक्तियाँ वैश्विक लोक की कामना करती प्रतीत होती है। यथा–

''जब तक मनुज–मनुज का यह भाग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा।।
था पथ सहज अतीत, सम्मिलित हो समग्र सुख पाना।
केवल अपने लिए नहीं कोई सुख भाग चुराना।।''[4]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने आर्थिक विषमता, अशांति, वर्ग संघर्ष को जड़ से खत्म करने की सलाह दी है जिससे मानव–मानव समभाव से रह सकें। कवि ने संसार की अशांति का कारण बताते हुए प्राचीन तथा वर्तमान समय की परिस्थिति से तुलना की है।

कविता का संबंध निश्चित रूप से बाह्य जगत से होता है जिससे वर्ण और तूलिका चुनकर कवि हमारे भीतर के जगत को चित्रित करता है। संसार में फैली असमानता, अशांति, अत्याचार से सर्वप्रथम कवि ही मुठभेड़ करता है। यह सर्वविदित भी है कि कवि जो देखता है वही लिखता है। वह भोगे हुए यथार्थ से प्रभावित प्रेरित होकर ही रचना करता है। राष्ट्रवादी काव्यधारा के ओजस्वी कवि माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'जवानी' में कवि की भावना विश्व को संदेश देती है। कवि ने विश्व के नवयुवकों को निडरता का पाठ पढ़ाते हुए, स्वाभिमान की रक्षा करते हुए सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

''विश्व है असि का ? नहीं संकल्प का है
हर प्रलय का कोण काया कल्प का है
फूल गिरते शूल सिर ऊँचा लिए हैं

रसों के अभियान को नीरस किए हैं
खून हो जाए न तेरा देख, पानी
मरण का त्यौहार, जीवन की जवानी''[5]

आज के भयावह परिदृश्य को लगभग पचास वर्ष पूर्व लिखी गयी रघुवीर सहाय की कविता 'रामदास' के माध्यम से सटीक समझा जा सकता है। वर्तमान में मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु मनुष्य ही है। आतंकवाद और नक्सलवाद का आतंक पूरे विश्व में फैला हुआ है। आमजन अपना जीवन भयपूर्वक बिताने को विवश है। न जाने विश्व में कितने ऐसे रामदास की हत्या सरेआम की दी जाती है। वर्तमान समय में यह कविता अत्यन्त प्रासंगिक है –

''चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी''[6]

भारत की आत्मा गाँव की सुकोमल गोद में बसती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। खनिज संसाधन भी देश में प्रचूर मात्रा से भरे पड़े हैं। अमूल्य रत्नों से लदी यह भारत भूमि विभिन्न वस्तुओं का निर्यात भी करती है। भाग्य के भरोसे निर्जीव वस्तु की तरफ पड़े लोगों को कवि कठिन मेहनत करने की सीख देते हैं, क्योंकि कठिन मेहनत से संसार के समस्त कार्य सफल हो जाते हैं। अग्रलिखित कविता में सब खेत बनाकर छोड़ो से कवि का तात्पर्य पूरे विश्व में खुशहाली की कामना से है। प्रकृति प्रेमी कवि रघुवीर सहाय की 'तोड़ो' कविता पठनीय है –

तोड़ो तोड़ो तोड़ो/ये पत्थर ये चट्टानें
ये झूठे बन्धन टूटें/तो धरती को हम जानें...
तोड़ो तोड़ो तोड़ो/ये ऊसर बंजर तोड़ो
ये चरती परती तोड़ो/सब खेत बनाकर छोड़ो''[7]

आज हमारा समाज वैश्वीकरण के दौर से गुजर रहा है। पूरा संसार बाजारवाद की चंगुल में बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। यह बाजारवाद वैश्वीकरण की ही उपज है। वैश्वीकरण के दो पक्ष में जहाँ एक ओर सकारात्मक परिणाम नजर आते हैं तो दूसरी ओर नकारात्मक भी। वैश्वीकरण का प्रभाव अब गाँवों में भी दिखने लगा है, चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो, या रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार इत्यादि। वैश्वीकरण के प्रभाव से ही गाँव का स्वाभाविक परिदृश्य अब शहरीकरण और बाजारवाद का गुलाम बन बैठा है। इस संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है –

किसने कहा कि वह चटकीली साइनबोर्ड –
यहाँ पर माल सस्ता बिकता है
गले में लटकाकर निस्तेज चुहल से भरी
भड़कीले रेस्ट्रां, कॉफी हाउस
सिनेमा, क्लब, थियेटर, फैशन की दुनिया में घुमें
वेनही बाक्स ले, ठण्डे हाथों में हाथ डाल
रंगे हुए होठों से, खपचियों पर टँगे कीमती
सूटों से चिपके, और भरे पर्स चूमे''[8]

समकालीन कविता की प्रमुख विशेषता है व्यवस्था का विरोध। मलिन राजनीति, शोषकों के प्रति आक्रोश, आमजन के प्रति हो रहे अत्याचार से कविमन आक्रोशित है। वर्तमान समाज आतंक के साये में जी रहा है। आतंकवाद को जड़ से मिटाना हमारे लिए बहुत बड़ी चुनौती है। विश्व की अच्छी वस्तुओं को सुरक्षित रखना भी बहुत कठिन काम है। इस संदर्भ में कवि केदारनाथ सिंह की कविता 'कमरे का दानव' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

''जब मैं लौटकर वापस आया हूँ
तो कमरा कहता है–बधाई''[9]

इस लिहाज से आधुनिक हिन्दी कविता विश्वजन की कामता करते हुए, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का संदेश देती है। भूतकाल से सीख लेकर भविष्य के प्रति हमें सचेत करती है। जन सरोकार की भावना से लदी आधुनिक हिन्दी कविता न सिर्फ देशहित की बल्कि पूरे जगत् के लोकमंगल की कामना करती है।

संदर्भ संकेत –

1. दाढ़े डॉ. वीणा – समसामयिक साहित्य चिंतन और चुनौतियाँ, अमन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण : 2015, पृ. 152
2. विश्वरंजन (संपादक) – कविता के पक्ष में, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण : 2011 पृ. 137
3. तिवारी डॉ. डी.पी. (संपादक) – हिन्दी विशिष्ट कक्षा – 12 छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल रायपुर, संस्करण 2008–09, पृ. 128
4. तिवारी डॉ. डी.पी. (संपादक) – हिन्दी विशिष्ट कक्षा – 12 पृ. 128
5. दुबे श्री संतोष कुमार (संपादक) – हिन्दी विशिष्ट, कक्षा – 11, छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मण्डल रायपुर, संस्करण 2017–18, पृ. 20
6. शर्मा सुरेश – रघुवीर सहाय का कविकर्म, पृ. 108
7. सहाय रघुवीर – सीढ़ियों पर धूप में, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1960, पृ. 81
8. विश्वरंजन (संपादक) – कविता के पक्ष में, पृ. 137
9. दाढ़े डॉ. वीणा – समसामयिक चिंतन और चुनौतियाँ, पृ. 53

भूमंडलीकरणके परिप्रेक्ष्य मे बदलते सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य (कविताओं के संदर्भ में)

डॉ.शोभा माणिक पवार
सहाय्यक-ाध्यापक, हिंदी विभाग,
श्रीमती सी.बी.शाह महिला महाविद्यालय, सांगली

प्रस्तावना :

वर्तमान युग वैश्विकरण का युग है ओर इस वैश्वीकरण के युग में प्रायः लेखक और पाठक 'वेबसाईट रीडर' बनते चले गए है, जिनकी रूचि संदर्भ में होती है। इसलिए इनका पठन-पाठन पल्लवग्राही है, गहराई की इसमें कोई भूमिका नहीं है। लेखक के लिए भी और शायद पाठक के लिए भी। यह युग का ही प्रभाव है कि इस बात की कोई परवाह नहीं करता कि वह भाषा बड़ी नहीं बन सकती जिसका पाठक बड़ा नहीं बनता और पाठक को बड़ा बनाता है बड़ा साहित्य, और जिसके विलोपन का खतरा आज पैदा हो गया है।

हमारे इस समय के लिए भूमंडलीकरण की अनिवार्यता निश्चित रूप से बढ़ जाती है लेकिन कई सारे सवालों के साथ। मसलन, क्या भूमंडलीकरण की वास्तविकता यही है? अगर नही तो इसका सच क्या है? यह किसके द्वारा अथवा किसके हित में कार्यान्वित होती है? तथा यह राजनीति, समाज, संस्कृति एवं आम जन-जीवन को किस तरह से प्रभावित करती है? भूमंडलीकरण के इस तेवर के विरोध में हमारे समकालीन हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा के कवियों ने धारदार कविता की रचना कर अपनी भूमिका स्पष्ट की है। हॉ, जितना प्रखर और स्पष्ट विरोध होना चाहिए था और उसमें जैसी निरंतरता होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हुई। फिर भी इनके बावजूद कविता की दुनिया में ऐसा कुछ जरूर है, जिसे भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद का उदर ठीक ढंग से उसे पचा नहीं पा रहा है। लेकिन पचे भी तो कैसे क्योंकि कवि की चिंता के केंद्र में आम आदमी और उसकी जीवन की परिस्थितियॉ एवं स्थितिया है जबकि भूमंडलीकरण अपना मतलब सिर्फ मुनाफे तक सिमीत रखता है।

वर्तमान अधिकांश हिंदी कविता बाज़ारवाद के प्रतिरोध में लिखी जा रही हैं- इसमें चिड़चिड़ापन लिए हुए विवशता और खिसियाहट भी भरी हुई है। यहॉ कविता के लगभग सभी आंतरिक मूल्य घायल और जर्जरित हैं। इस तरह वर्तमान की कविता नजर आती है। वह हर तरह के धर्म और राजनीति संवाद पर 'विमर्श' का नया 'पाठ' रच रही है। उपर-उपर से प्रतित होता है कि भूमंडलीकरण मानव-कल्याण तथा मानव-हित के लिए जन्मा है। किंतु इसके निहितार्थों की भीतरी तह में पूँजीवादी प्रतिष्ठानों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफाखोर के अदृश्य जाल बिछे दिखाई देते हैं। इसके अंतर्गत स्वतंत्र व्यापार का सिद्धांत तो साक्षात राक्षसी धोखा है और यह उन अर्थशास्त्रियों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है जो शोषण के नव्य-साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा में ही काम पर लगे हुए है।

इस लेख में आधुनिक काल के कुछ कवियों की कविता द्वारा भूमंडलीकरण से पढ़े दुश्परिणाम का चित्रण किया गया है। आम नागरिकों को दिखाया गया यह सपना कितना विध्वंसक है तथा उन्हें लील रहा है। यह इन कविताओं में कवियों की चिंता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। बद्रीनारायण अपनी कविता 'संदेश' में एस.एम.एस. द्वारा अपनी प्रेमिका द्वारा भेजे गए संदेश पर विचार कर रहे हैं जिसमें प्रेम को लेकर कोई शब्द नहीं था केवल जीवन की जटिलताएँ थी। कवि सोचता है कि शायद वे शब्द डिलीट हो गए होंगे या टाइप करते वक्त, भेजते वक्त गलती से छूट गया होगा या वह किसी उलझन में होगी। कुल मिलाकर कहना गलत न होगा कि प्रेम जैसी भावनात्मक चीज भी तकनीक में उलझ कर गई है। कवि की चिंता वर्तमान समय को लेकर है कवि अभी भी उसके प्यार भरे शब्द के एस. एम.एस. का इंतजार कर रहा है। बाजारवाद का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर इतना अधिक पड़ रहा है कि प्रेम ही नही बल्कि व्रत वैकल्य, पूजा-पाठ, तीज त्योहार सबकुछ इसके चपेट में आ गए है। हर जगह बाजार की माया है। हमारी भारतीय संस्कृति एवं परंपरा धीरे-धीरे अपना स्वरूप, खोती जा रही है साथ ही भूमंडलीकरण का अत्यंत प्रभाव

उस पर हावि हो रहा है। अरूण कमल ने अपनी कविता 'अर्ध्य' में यह स्पष्ट किया है। उनके गॉव की सरपंच ने छठ पूजा के अवसर पर सूर्य को सोने के सूप से अर्ध्य दिया है। कवि लिखते है –

"अर्ध्य दिया पोखर पर स्वर्ण सूप से जो दुबई से
आया था,
और सेब थे ऑस्ट्रेलिया के,
जमैका का कदली फल,
सुपारी म्यॉमार की,
नारियल मालदीव से और स्वयं प्रधान ने पहन रखे
थे चीनाशुंक"।

कहना न होगा कि इसमें से एक भी चीज भारत की नहीं है और यहॉ तक के प्रधान के कपड़े तक चीन के है। अंत में कवि ने व्यंग्य किया है कि जैसे इस देवी के दिन फिरे है वैसे ही जनता जनार्दन के दिन भी फिरें।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप आज गॉव तक के लिए कोई चीज मुश्किल या असंभव नहीं रहा। गॉव का प्रधान बाजारवाद के अत्यंत प्रभाव से मंडित एवं सुशोभित है। इसे ही कहते हैं –'दुनिया का नजदीक आ जाना' आज इंसान की खुशी पता नहीं किन चीजों में है। वह क्या चाहता है और क्या नहीं यह वह कहॉ तय कर पाता है। यह अधिकार भी इंसानो से बाजार ने छिन लिया है। अपनी इच्छा, अपनी खुशी के विरूद्ध वह केवल बाजार का ग्राहक बन चुका है। यह हम सभी जानते हैं। लीलाधर जगूडी ने 'उसकी खुशी' कविता में **कुछ इन्हीं खुशियों (?) की ओर संकेत किया है –**

उसने चाहा तो था कि कोई बढ़िया-सा सपना देखे,
पर देखता क्या है बच्चे तमाम प्रौढ़ हो चुके है...
पेड़ तमाम काटे जा चुके हैं,
चिड़िया तमाम मारी जा चुकी है,
ऐसे मे वे आए और कहने लगे दुनिया में खुशी हमारी सिगरेट के
कारण है...
तुम्हारी खुशी फलॉ ब्लेड की तेज धार मे छिपी है।

खुशनसीबी यह रही कि वह इस प्रकार का एक नालायक सपना देख रहा था। अंत में चिड़ियो की चहचहाट से उसकी नींद टूटती है और वह सोचता है उसका कि यह भयानक सपना झूठा निकले। परंतु हम जानते हैं कि फिलहाल आदमी की हालात कमोबेस ऐसी ही है। वह कहॉ अपनी खुशियों को अपने जीवन में स्थान दे पाता है। ऐसा लगता है कि मशीन बन गया जैसे कि एक रोबोट। वर्तमान समय में मोबाईल, इंटरनेट, कम्प्यूटर जैसी चीजो ने इंसान नामक जाति को चारों ओर से घेर लिया है। ऐसा लगता है कि इन चीजों के साथ जीते-जीते वह अंतिम सॉस भी उन्हीं के कंधे पर रखकर मर भी जाएगा। आगे चलकर यह पूरी दुनिया केवल कम्प्युटराइज्ड हो जाएगी। और मनुष्य का अस्तित्व नष्ट हो जाएगा। उत्तम कांबले ने 'कौन जाने..' में इसी चिंता का यथार्थ रूप हमारे सामने रखा है –

कौन जाने नए युग का आदमी कम्प्युटर के कंधे पर,
गर्दन रखकर अंतिम सॉस लेगा और दयालु कम्प्युटर,
अवकाश में मानव की कब्र के पास शोक सभा रखेगा,
मनुष्य जाति, कितनी जीवट थी, कितनी गूढ थी, कितनी वीर बहादुर थी।"

कविता के अंत में उसने धरती से मिट रहे मानव प्राणी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कहना गलत न होगा कि कवि की भविष्यवाणी क्या वाकई में गौरतलब नही है? मनुष्य ने मस्तिष्क कम्प्युटर को प्रदान किया तथा वह स्वयं को शून्य बनाकर अपने हाथ पैर का इस्तेमाल न कर खुद को नष्ट करने लगा है। अस्तित्व की यह चिंता कवि की सही लगती है।

वर्तमान समय में हम कितने मशीनी जीवन जी रहे है। इन मशीनों पर कितना निर्भर रहने लगे है। यह सोचने विचारने की बात है। न तो हमारे बीच संवाद है न ही मुलाकात है। अपने रिश्ते नाते, काम-धंधा सबकुछ इन्हीं मशीनों की बदौलत हम कर रहे है बल्कि हमने इन्हीं पर ये सारी जिम्मेदारी छोड़ दी है और खुद लूले-लगड़े हो चले है। सुशांत सुप्रिया ने 'इस रूट की सभी लाइन व्यस्त है' कविता में हमारी इन्हीं छटपटाहट, बेबसी और लाचारी का चित्रण किया है – देह में फॉस-सा यह समय है, जब अपनी परछाई भी संदिग्ध है, 'हमे बचाओ, हम त्रस्त है'– घबराए हुए लोग चिल्ला रहे है, दूसरी और रिकॉर्डेड आवाज – इस रूट की सभी लाइने व्यस्त है। कहना सही लगता है कि आज संपर्क और संवाद का सशक्त साधन मोबाईल अगर काम करना बंद कर दे तो हमारे सारे काम धरे के धरे रह जाएंगे। हम निहत्थे हो जाएंगे। स्थिति यह है कि तकनीक का यह रूप हमें कही का नहीं छोडता। न तो उसका बने रहना फलदायी है। और न ही उसका बिगड़े रहना। क्यों हमें इतना लाचार बना दिया गया है। १९९१ के पहले, भूमंडलीकरण के जमाने के पहले भी तो मनुष्य जीता था बल्कि खुशहाल था किंतु आज उसकी सारी खुशहाली मोबाइल के चंद शब्दों में सिमट कर रह गई। हर प्रकार के संदेश फॉरवर्ड करके हम अपनी सारे जिम्मेदारियों से गंगा

नहा लेते है। सच में दुनिया कितनी सिमट-सी गई है। कुछ भी असंभव नही लगता पर लगता है सबकुछ पाकर भी हम खुश नही है बल्कि असलीपन हमारा खत्म हो गया हम और भी अधिक नकली हो चले है।

निष्कर्षः-

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि वैश्विकरण के कारण बाजारवाद और उससे उत्पन्न विभिन्न स्थितियाँ, संकट एवं समस्याओं का सामना गाँव से लेकर शहर तक हर इंसान कर रहा है। वह चारो और से घिर चुका है निकलेगा तो जी नही पाएंगा और फँसकर त्रस्त हो जाएगा, अस्तित्वहीन हो जाएगा। यही चिंता इन कवियों नें अपनी कविता में मार्मिकता एवं यथार्थता के साथ व्यक्त की है। राजेश्वर प्रसाद सिंह तो मेरा घर कहाँ है? की गुहार अपने काव्यसंग्रह में लगा रहे है। कहना सही होगा कि परंपरागत मनुष्य इन सारी स्थितियों से आज लड़ रहा है, जूझ रहा, टूट रहा है क्योंकि वैश्वीकरण और बाजारवाद ने जिंदगी के पुराने सभी प्रतिमानों, मान्यताओं को तोड-फोड़ कर रख दिया है।

संदर्भ ग्रंथ :-

१ अतिथि संपा. प्रभाकर श्रोत्रिय, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई -अगस्त २०११

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

हिंदी काव्य में भूमंडलीकरण

डॉ. शाहीन अब्दुल अजीज पटेल
शंकरराव जगताप आर्टस् ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, वाघोली
ता.कोरेगाव जि.सातारा

अपनी आत्मानूभूति को बहुत ही सीमित एवं सारगर्भित शब्दों के माध्यम से अनेकों तक पहुँचने का सशक्त माध्यम काव्य है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के प्रत्येक कवि ने अपने युग की त्रासदी का, युग की परिस्थिति का विवेचन बडी मार्मिकता से किया है। साठोत्तरी कवि भी इन सब से अछुता नहीं रहा। उसने भी युग की परिस्थितियों पर पैनी दृष्टि रखते हुए समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति के प्रभाव को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया है। एक अकेला मानव, समुह, समाज, राज्य, राष्ट्र, विश्व इन सभी की प्रगति भी केंद्र में रही। राष्ट्र को प्रगति पथ पर ले जाते हुए, अव्वल नंबर पाने की होड में कहीं अनुकरण हुआ तो कही अंधानुकरण भी हुआ। बाजारवाद के इस जमाने में सांस्कृतिक ह्रास की ओर अनदेखी कर प्रगति पाना एक मात्र उद्देश्य बनता जा रहा है। साठोत्तरी काल के प्रत्येक दशक में राष्ट्रीय एवं वैश्वीक स्थितियाँ भिन्न-भिन्न रहीं। स्वातंत्रता प्राप्ति के पश्चात हुई मोहभंग की स्थिति, अमीरी; गरीबी इन दो वर्गो में बंटा भारतीय समाज। राजनीतिक उथल-पुथल जितनी तेजी से तब्दील होती गई, उसका प्रभाव समाज, पर होता गया। इन्हीं प्रभावों को ग्रहण करते हुए कवि की लेखनी की धार भी तेज बनती गई।

वैश्वीकरण की अंधी दौड में मानव का स्व विकास उसे धीरे-धीरे आत्मकेंद्रीत बनाता जा रहा है। शासन के नियमों के आधार पर मकानों की रचना भले ही हो रही हो लेकिन इन मकानों में 'हम दो, हमारे दो' इन्हीं को जगह मिल रही है और वे मकान बन रहे हैं - घर नहीं, क्योंकि इन मकानों में उनके अपनों के प्रवेश पर ही प्रतिबंध लग गए हैं। ये प्रतिबंध किसी कानून के प्रावधान का हिस्सा नहीं तो इसी आत्मकेंद्रीत मानव के मन - मस्तिष्क की यह उपज है। इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए कवि दिलीप कुमार शर्मा 'घर का बन जाना' कविता में कहते हैं ।

"एक घर जो मेरे भाई का है। / एक घर जो मेरे भैय्या का है
और एक घर जो मेरा है... / मैं भाई के घर में जा नहीं सकता
अब किसी को पसंद नहीं / किसी के घर आना-जाना
घर के अंदर घर है।" १

अपनी सुविधाओं की खातिर व्यक्ति अपनों से ही दूर होता जा रहा है। उसकी सुविधा है कि उसे अपने मकान में प्राइवसी (एकांत) नामक एक गहरी खामोशी मिली लेकिन, वहीं वह अपनों के हंसी-मजाक, विचारों के आदान-प्रदान, बच्चों की किल्लकारी, अपनत्वभाव इन सब से कोसों दूर होता चला जा रहा है।

रिश्तों के बीच खत्म होते स्नेह के साथ अब पडोसियों के लिए चंद लम्हों का वक्त भी उसके पास नहीं है। आते-जाते रूककर ही किसी की खैर-खबर पूछी जाय, आज वो लम्हें भी उसे मयस्सर नहीं। शहरीकरण के कारण उत्पन्न स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए बी. एल. गौड कहते हैं -

"शहर में रहना / और आदमी बने रहना
एक बडी बात है। / अब शहर में आदमी कम बचे हैं
वे पहचाने नहीं जाते / देखते ही मुस्कुराते है
हात हिलाते हैं / और 'जल्दी है' कहकर
चले जाते हैं।" २

इसी शहरीकरण के करण आज मानव यंत्रवत बनता जा रहा है। उसके पास अब केवल यांत्रिकी व्यावहारिकता बची है, गहरी आत्मियता नहीं।

घरवालों-पडोसियों की दशा तो ऐसी है ही, लेकिन आज एक माँ के पास अपने बच्चे को लोरी सुनाने तक का वक्त भी मयस्सर नहीं। वैश्वीकरण के चलते बढती महंगाई ने माँ-बाप दोनों को घर चलाने के लिए दिन-भर बाहर रखा। माँ-बाप की मुलाकात बच्चों से केवल रात में होती है और इस समय ये दोनों सासांरिक उलझानों को सुलझाने के तरीके ढुँढते नजर आते हैं। इस समय बच्चें लॅपटॉप, कम्प्युटर और मोबाईल से ही अपना काम चला लेते हैं। इसी संदर्भ में कृष्णराय तुषार कहते हैं -

"लैपटाप में जंगल /देखती सुनीता
शीशे के ताल में / मच्छलियाँ हैं
चश्में के नम्बर में / कैद पुतालिता हैं
वासंती भोर कहाँ / कहाँ चंदा की रातें
खत्म हुई लोककथा / परियों की बातें
मोबाईल की कैद में / पसलियां हैं।" ३

माँ का बच्चे को सुलाते समय लोरी गाना या कहानी सुनाना यह भी उस पर किए जानेवाले संस्कारों का ही एक हिस्सा हैं जो आज माँ की मसरूफियत की वजह से पीछे छूटती जा रही है। माँ-बाप दोनों कमाऊ बन चुक हैं। कोई देसी कंपनी में काम करता है तो कोई विदेसी। बच्चों के लिए उनके पास समय नहीं इसीलिए फिर बच्चे शीशे के ताल में मच्छली देखते हैं, लॅपटॉप पर जंगल और मोबाईल में लोरी सुनते हैं - गेम खेलते हैं।

बेशक हम अपने युग को वैश्वीकरण का युग कह सकते हैं। भूमंडल का सुख-दुख लाभ-हानि एक साथ झेल रहे हैं। मोबाईल और कम्प्युटर के इस युग ने मगर दो पीढीयों के बीच गहरी खाई बनाई है। बुजुर्ग व्यक्ति इन इलेक्ट्रानिक माध्यमों की अपेक्षा पारंपारिक साधनों को उपयोग में लाना चाहते हैं तो, नई पिढी के लिए ये इलेक्ट्रॉनिक चीजें हाथ का खिलौना बन बैठी हैं। इसका भी चित्रण साठोत्तरी कवि अशोक चंद्र ने इस प्रकार किया है

"किसी तरह लिख रही है अगली पिढी को भीगा-भीगा पत्र
जिसका उत्तर (अगर आया भी) ई-मेल से आएगा
कांपती हुई लाठी और मिचमिचाती आँखें नहीं जानती
संगणक की अजनबी इलेक्ट्रॉनिक भाषा
दो भाषाओं, के बीच, दो पीढीयों के बीच, दो समयों के बीच
पिस कर रह जाएगा बहुत-बहुत जरूरी संवाद।" ४

सूचना और प्रौद्योगिकी के इस युग का यह कटू यथार्थ है। पत्र-भेजना, पत्र की गंध को अत्मानुभूत करना, अब समाप्त हो चुका। अब बुजुर्ग भी युवाओं से ताल - मेल तभी रख सकते हैं जब वे ई-मेल और एस. एम. एस. की तकनीक को अपना लें। यहाँ भावनाएँ यंत्रवत बनती जा रही हैं।

साठोत्तरी कवि ने बदलते मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपनी गहरी कलम चलाई है। बाजारवाद ने आम आदमी की रग-रग से वाकिफ होकर आज उसे पीने का पानी भी खरीद कर पीने पर मजबूर कर दिया है। कमलेश्वर कहते हैं -

"पानी को बेचने से पहलें / मच्छलियों से पूछा जाना चाहिए था
मनुष्यों से पूछना था / नही तो / पूछ लेना चाहिए था पानी से
मगर पूछा गया / देशी-विदेशी पूंजिपतियों से
बिचौलियों से, व्यापारियों से, उद्योगपतियों से
उन्हीं के बीच हो गया / पानी को बचने-खरीदने का कारोबार।" ५

वैश्वीकरण की इस बाजारनीति का यह खुला चिट्ठा है कि पूंजीपति, व्यापारी, बिचौलियों सभी ने मिलकर अपना-अपना हिस्सा तै कर लिया। इस व्यापार में भी उन्हें केवल मुनाफे की ही चिंता रही। मुनाफखोर और ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए आए दिन नित-नई तरकीबें अपना रहे है, और आम आदमी उनकी जालसाजी में आराम से फंसता दिखाइ देता है। इसका buy One , Get One Free उत्तम उदा है।

पूर्जीवादी व्यवस्था के इन ठेकेदारों का साथ निभानेवाला सर्वप्रमुख साधन टी. वी के रूप में सामने आता है। आज - कल नित-नए विज्ञापनों में अपना देह प्रदर्शन करती युवतियों को केवल चंद रूपयों के बलपर यही उद्योगपति अपनी उंगलियों पर नचाते हैं। जिसका यथार्थ अंकन मनोजकुमार झा ने 'विज्ञापन सुंदरियों से' कविता में किया है।

"इसलिए तो नहीं बचाकर रखा यह क्षण
कि खरीद ले इन्हें कारपोरेट जगत चुपके से
देखो तो, अपनी वस्तुओं की खातिर
तुम्हारी सुंदरता सोरखकर
रहने दिया तुम्हें मात्र उत्तेजक
थरथराते कदमों से गुजरना तुम्हारा.....
निऑन लाइटों की चपलता.....
जिटल इकाईयों में
बनाने के लिए चमकदार।" ६

निर्मित वस्तू ग्राहक तक पहुँचाने के लिए विज्ञापन अलग बात है, लेकिन आजकल के विज्ञापनों को देखनेपर वैश्वीकरण के बाजारवाद के ही दर्शन होते हैं। ज्यादा-से-ज्यादा मुनाफा कमाने की इस स्पर्धा ने विज्ञापन में अतिशयोक्ति का ही सहारा लिया है और इसी अतिशयोक्ति का खुला प्रदर्शन करने के लिए अधनंगी युवतियाँ कदमों को थिरकाते, ग्राहक के मन मस्तिष्क पर अपना गहरा असर छोडने में कामयाब होती हैं। सुंदर से आवेष्टन में लिपटी ये चीजे गाहक को जरूरत न होने पर भी खरीदने पर लालायित करती हैं।

स्त्री की दैहिक सुंदरता से लाभान्वित होने की इच्छा से दुनिया के कुछ राष्ट्र मिलकर विश्वसुंदरी प्रतियोगिता का आयोजन करते हैं। स्त्री की इस दैहिक सुंदरता का पर्दाफाश करते हुए कवयित्री प्रभा दिक्षीत की आत्मा रूदन करते हुए कहती हैं-

"विश्वसुंदरी बोलो तुमने क्या खोया, क्या पाया है
तन के बाजार में तुमने कितना कष्ट उठाया है
देह तुम्हारी विज्ञापन बनती है किसी तिजारत की
किन लोंगों की खातीर तुमने अपना रूप सजाया है.....

चंद लुटेरों ने तुमपर भी थोडा माल लुटाया है
देखा है ऐश्वर्या, तुम्हारा रूप फिल्म में नाच रहा
पूँजी की दुनिया ने तुमको कहां - कहां भटकाया है
इस बिमार मुल्क में तुमने किसका-किसका साथ दिया
पुरूष सोच में ढलकर बस नारी पर दाग लगाया है।" ७

स्त्री की दैहिक सुंदरता को केंद्र में रखकर और उसे ही माध्यम बनाते हुए विश्व के चंद राष्ट्र इन प्रतियोगिताओं के माध्यम से कुछ और ही खिचडी पकाते हुए नजर आते हैं। यह इसी वैश्वीकरण के कार्पोरेट जगत का नंगा सच है, लेकिन प्रतियोगिता का नाम ही इतना सुंदर रख दिया कि आम आदमी उसपर उंगली ना उठा सके। जिन स्त्रियों को क्षणिक चकाचौंध का यह संसार अपनी ओर आकर्षित करता है, वे स्त्रियाँ रूपया, पैसा, नाम, शोहरत, कामयाबी, रूतबा पाने की धुन में कुछ भी कर गुजरने को तैय्यार होती हैं, वे औरतें इसी चकाचौंध की दुनिया के लिए अपना घर, बार, रिश्ते-नाते सभी कुछ दांव पर लगा, इसमें प्रवेश करती हैं।

वैश्वीकरण, उदारीकरण, गोलबलायझेशन, उदारनीति विदेशी कंपनीयों का आगमन, रोजगार के अवसरों का बढ जाना, सॉफटवेअर कंपनीयाँ, कॉलसेंटर, मल्टीप्लेक्स, बीग-बझार आदि अनेक ऐसे नाम गिनाए जा सकते हैं जिससे बडे-से-बडे शहर से लेकर छोटे से छोटे गांव तक का व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हुआ है। रोजगार के सुअवसर जरूर बढे हैं, लेकिन बारीकी से तफतीष करने पर यही सच हाथ लगेगा कि जिसके पास हुनर है, दुनियाँ हर कीमत पर उसे खरीदने के लिए तैयार है। आज विदोशों में भारतीय इंजिनियरों, डॉक्टरों, अध्यापकों की माँग इसी ओर निर्देश करती है। अगर आपके पास बौध्दिक या दैहिक सुंदरता है, हुनर है आप दुनिया के बाजार में अपना वजूद कायम कर सकते हैं। जिनके पास इन दोनों का अभाव है वे केवल घुन की तरह पिसे जा रहैं। वैश्वीकरण की इन्हीं नीतियों के कारण पूंजिपति, बिचौलिए, उद्योगपति और ज्यादा मालदार बन रहे हैं।

साठोत्तरी कवि ने वैश्वीकरण के कारण मानव जीवन पर हो रहे अनेक कारणों की बडी बारीकी से समीक्षा की है। मोबाईल, कंम्प्युटर, इंटरनेट, प्रौद्योगिकी, जनसंचार माध्यम ये सभी हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनते जा रहे है। हमारे जीवन की यह त्रासदी है कि इन सब का विचार केवल युवावर्ग के लिए हो रहा है, इस स्पर्धा में हमारे बुजुर्ग एंव हमारे गांव हमसे पीछे छुट रहे है। लेकिन सही अर्थो में अगर हमें प्रगतिपथ पर अग्रेसर होना है तो उनको साथ लेकर चलना ही होगा। इसी वैश्वीकरण के संदर्भ में कवि मंगेश डबराल अपनी 'भूमंडलीकरण' कविता में कहते हैं -

"बडी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बडा गांव
लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेश के लिए अब कहीं और नहीं जाना पडता
मनुष्य के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिए गए हैं
जो बात-बात में टूट जाते हैं।" ८

वैश्वीकरण के संदर्भ में निचोड के रूप में कवि डबराल जी ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं। वैश्वीकरण - तभी सही अर्थो में सफल बन सकता है जब सबके साथ समान न्याय हो।

निष्कर्ष के रूप में -

भूमंडलिकरण के इस दौर में वस्तुओं की चकाचौधं से सुख पाने का इरादा रखनेवाले मानव ने रूपए के बल पर वस्तुओं का अंबार लगाया पर अपने ही घर में वह संपूर्ण परिवार के बीच अकेला रह गया। रिश्तों के बीच गहरी आत्मियता का समापन हो चुका। मानव यंत्रवत बन गया यांत्रिकी व्यावहारिकता बची रही भूमंडलीकरण ने विश्व बाजार को प्रभावित किया। अमीरी-गरीबी की खाई बढ गई। बाजार में उत्पादों की कमी नहीं लेकिन हर किसी के पास खरीदने की शक्ती नहीं। बहुराष्ट्रीय कंपनीयों में केवल समझौतों की होड मची है। इस भूमंडलीकरण ने इस बाजारवाद ने साहित्य, समाज, संस्कृति को अत्याधिक प्रभावित किया। इस व्यवस्था से प्रभावित-व्यथित साहित्यकार का करूण गान साहित्य के रूप में प्रस्फुटित हुआ ।

भूमण्डलीकरण और हिन्दी

डॉ. पर्वज्योत कौर
३३१५ - ए , सैक्टर-२४ डी चण्डीगढ़ ।

अंग्रेजी भाषा के 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द को हिन्दी में 'भूमण्डलीकरण,' 'वैश्वीकरण' एवं 'जगतीकरण' आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। सामान्यतः इसका अर्थ ऐसी परिघटना से है जिसका वैश्विक परिदृश्य हो तथा जो विश्व के सभी राष्ट्रों समाजों और समुदायों से सम्बद्ध हो। भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित हो गया। विश्वग्राम का स्वप्न राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी देखा था, उनके शब्दानुसार, ''मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों से घिरा रहे, न मैं अपनी खिड़कियों को ही कसकर बंद रखना चाहता हूँ। मैं तो सभी देशों की संस्कृति का संचार अपने घर में बेरोक-टोक चाहता हूँ, पर ऐसी संस्कृति के किसी झोंके से मेरे पावँ उखड़ जाएँ, यह मुझे मंजूर नहीं।''[१] 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओतप्रोत भारत देश ने विश्व को हमेशा एक परिवार के रूप में ही स्वीकार किया है, जिसमें समन्वय तथा सहयोग को महत्तता प्रदान की गई है। समग्र जगत को एक ही परम तत्त्व की अभिव्यक्ति मानते हुए प्रत्येक मनुष्य को एक ही परिवार का अंश माना है।

भूमण्डलीकरण में जीवन तथा समाज के सभी पहलू समाविष्ट हैं। इसने वैश्विक स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किये हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव न केवल देशों की कूटनीति, राजनीति और आर्थिक नीतियों पर पड़ा वरन् सामाजिक क्षेत्र भी अछूते नहीं रहे। विश्वग्राम की परिकल्पना साकार करने का दावा करते हुए भूमण्डलीकरण का नारा शक्तिशाली विकसित देशों ने दिया है। भूमण्डलीकरण और उपभोक्तावाद के विषय में गिरीश मिश्र ने लिखा है, '' हम आपको वह हर चीज बेचेंगे जिसकी आप को आवश्यकता है, किंतु हम चाहते हैं कि आपको उन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता हो जिन्हें हम बेचना चाहते हैं।''[२] भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के समर्थक देशों ने इसे आवश्यक मानते हुए इसके पक्ष में तर्क दिये हैं कि भूमण्डलीकरण विश्व की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करेगा तथा अधिक व्यापार, पूँजी निवेश, रोजगार और आय के अवसर भी पैदा करेगा। इस तरह से यह नये युग का आरम्भ है। भूमण्डलीय विस्तार आज के युग की ऐसी अनिवार्यता है जिसके बिना समूचा विश्व आगे नहीं बढ़ सकता। भूमण्डलीकरण के समर्थन और विरोध में अलग-अलग मत हैं। भूमण्डलीकरण के फैलाव से अनेक संकट भी पैदा हुए हैं परन्तु हमें इसके उज्ज्वल पक्ष की ओर भी दृष्टिपात करना चाहिए।

१९९१ में भारत ऐसी स्थिति में पहुँच गया, जिससे वह बाहर अन्य देशों से ऋण लेने की विश्वसनीयता खो बैठा। कई अन्य समस्याएँ जैसे बढ़ती कीमतें, पर्याप्त पूँजी की कमी, धीमा विकास और प्रौद्योगिकी के पिछड़ेपन ने संकट की ओर बढ़ा दिया। सरकारी खर्च आय से कहीं अधिक हो गया। भारत भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को तेज करने तथा अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं, विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के सुझाव के अनुसार अपने बाज़ार खोलने के लिए विवश हो उठा। भूमण्डलीकरण के कारण सम्पूर्ण विश्व बाज़ार में परिणत हो गया, जहाँ दो वर्ग निर्मित हो गये हैं- उत्पादक वर्ग तथा उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग- व्यापारी पूँजीपति लोगों का है जो उपभोक्ता वर्ग के द्वारा वस्तु का निर्माण करवाता है तथा आकर्षक रूप में बाज़ार में उतारता है। दूसरा उपभोक्ता वर्ग है जो बाज़ार की चकाचौंध से प्रभावित है, जो विज्ञापन की दुनिया से जकड़ा हुआ है। भारत विकासशील देश हैं जहाँ का मध्यवर्ग एक बड़े उपभोक्ता के रूप में बाज़ार के समक्ष खड़ा है। बाज़ार में वस्तुओं से लेकर विचारों तक की खरीद-फरोख्त की जा रही है। महिला साहित्यकार प्रभा खेतान ने इस संदर्भ में सटीक लिखा है, ''भूमण्डलीकरण जीवन के हर कोने, अस्तित्व के हर रूप का वस्तुकरण करता है।''[३] खरीद--फरोख्त के चलन में उपभोक्ता को बाज़ार की ओर खींचने का काम भाषा करती है। यही कारण है कि आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा व्यापारियों की दृष्टि हिन्दी भाषा पर टिकी हुई है। औपनिवेशिक युग में अंग्रेजों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने हेतु हिन्दी को अपनाया था। आज वही स्थिति विदेशी व्यापारी वर्ग की भी है। अपने उत्पाद को जनमानस तक पहुँचाने के लिए हिन्दी कारगर है।

हिन्दी सीखना उनकी आवश्यकता ही नहीं मजबूरी भी है। बढ़ते बाज़ारवाद के कारण हिन्दी-अंग्रेजी मिश्रित भाषा हिंग्लिश का चलन बढ़ गया है परन्तु यह भी सत्य है कि हिन्दी ने अपने दम पर अपने अस्तित्व को कायम रखा है, ''हिन्दी ने अंग्रेजी के साथ एक तरह की साँठगाँठ कर ली है। एक विश्वव्यापी वर्चस्व वाली भाषा और भारत के भीतर वर्चस्व वाली भाषा ने सहअस्तित्व कायम कर लिया है। हिन्दी का जो कुछ उद्धार पिछले दिनों हुआ है उसका श्रेय मीड़िया और बाज़ार को है। हिन्दी बोलनें वालों की संख्या ज्यादा थी, इसलिए उसने भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया का फायदा उठा लिया।''[४] हिन्दी का चरित्र जनोन्मुखी रहा है, जनता के सम्पर्क से वह निरन्तर ऊर्जा ग्रहण करती रही है। निजीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में हिन्दी पुनः जनसंस्कृति की अभिव्यक्ति बन रही है।

भाषा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु सभ्यता और संस्कृति की संवाहिका भी होती है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य समाज से, समाज राष्ट्र से तथा राष्ट्र विश्व से जुड़ पाता है। डॉ. मैनेजर पण्डेय का मानना है, ''समाज भाषा की जन्मभूमि है और कर्मभूमि भी । समाज ही भाषा का मुख्य स्त्रोत् है और समाज के कर्ममय जीवन में भाषा की क्रियाशीलता सार्थकता पाती है।''[५] हिन्दी एक ऐसी क्रियाशील सार्थक भाषा है जिसने अपनी महत्तता तथा अस्तित्व को कायम रखा है। हिन्दी का स्वरूप विराट है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को पालने वाली संस्कृति की भाषा हिन्दी आज विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाती जा रही है। हिन्दी में रचना करने वाले अनेक लेखक जो प्रवासी हैं, वे विदेशों में भी अपनी कलम द्वारा हिन्दी को समृद्ध बना रहे हैं। इंग्लैण्ड, फिजी, ऑस्ट्रेलिया, अमरीका, ट्रिनिडाड, कैनेड़ा, मॉरीशस, सूरीनाम आदि अनेकोनेक देशों में हिन्दी लेखक अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य को अपना अमूल्य योगदान दे रहे हैं। डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी को वैश्विक भाषा बनाने के पीछे गिरमिटिया मजदूरों तथा अन्य प्रवासी लोगों के सहयोग को मानते हुए लिखते हैं, ''इन्हीं हिन्दी भाषी कुली-मजदूरों ने हिन्दी को विश्वभाषा बनाया है। .....विश्व भाषा के रूप में हिन्दी दुनिया का भविष्य उज्ज्वल है। साम्राज्यवादी प्रभुत्व के दिन गये।''[६] हिन्दी भाषा सरल तथा वैज्ञानिक है। यदि इसे विश्वभाषा की कसौटी पर परखा जाये तो यह खरी साबित होगी। जोगिन्दर सिंह कंवल के अनुसार, ''हिन्दी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है जो विश्व के लगभग सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। उसका अब प्रयत्न विश्व के लिए है तथा वह राष्ट्रसंघ की भाषा के लिए प्रयत्नशील है।''[७] आज हिन्दी अनेक देशों में सम्पर्क भाषा, शिक्षण संस्थानों, पत्र-पत्रिकाओं, तथा साहित्य सृजन की भाषा के रूप में अपना दायित्व सफलतापूर्वक निभा रही है। भारत में भी महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा (महाराष्ट्र) है, यहाँ विदेशी छात्रों के लिए हिन्दी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। कुछ देशों के विदेशी छात्र हिन्दी भाषा में अपने देश की भाषा के साथ तुलनात्मक शोध-कार्य भी कर रहे हैं। विदेशी हिन्दी विशेषज्ञों का संगोष्ठियों में भाग लेना हिन्दी की व्यापकता को प्रदर्शित करता है।

हिन्दी भारतीय संस्कृति और सद्भावना का विकास करने वाली भाषा है। हिन्दी के भूत, वर्तमान और भविष्य की वैश्विक स्थिति पर सम्पूर्ण विचार हेतु विश्व हिन्दी सम्मेलनों की शृंखला आंरभ की गई। सन् १९७५ में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह एक ऐतिहासिक कदम था। अब तक दस विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं। इन सम्मेलनों में देश-विदेश से हिन्दी विद्वान, विभिन्न विश्वविद्यालय, स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाएँ एवं निजी संस्थान सम्मिलित होते हैं भूमण्डलीकरण के दौर में विश्व हिन्दी सम्मेलन हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वृहत्त द्वार खोलता है। इसलिए आज कई संस्थाओं द्वारा अनेक भाषाओं में हिन्दी की कृतियों का अनुवाद कार्य भी आरंभ हुआ है। इसमें यूनेस्को का नाम भी शामिल है जिसने हिन्दी कृतियों का विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं में अनुवाद कार्य आरंभ किया।

उपभोक्तावादी युग में इलैक्ट्रोनिक समाचार माध्यमों, मनोरंजन के चैनलों पर प्रसारित किये जाने वाले कार्यक्रमों, विज्ञापनों, समाचारों तथा शिक्षाप्रद कार्यक्रमों द्वारा भी हिन्दी के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी है। विज्ञापनों की भाषा और प्रमोशन, विडियो की भाषा हिन्दी शुद्धतावादियों को भले पसंद न हो परन्तु उपभोक्तावर्ग ने उसे देश भर में अपने सक्रिय भाषा कोश में शामिल कर लिया है। इसे हिन्दी के संदर्भ में संचार माध्यम की बड़ी देन कहा जा सकता है। आज अनेकोनेक ब्लॉग तथा ई-पत्रिकाएँ ऑनलाइन इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

सिनेमा के द्वारा भी हिन्दी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है। आज अनेक फिल्मकार भारत ही नहीं यूरोप, अमरीका और खाड़ी देशों के अपने दर्शकों को ध्यान में रखकर फिल्में बना रहे हैं। हिन्दी सिनेमा की धाक ऑस्कर तक पहुँच गई है। विदेशी दर्शक हिन्दी फिल्मों के नाम, उनके गीत तथा संवाद अच्छी तरह से बोल लेते हैं। २६ जनवरी २०१५ में भारत दौरे पर आये अमरीकी राष्ट्रपति ने हिन्दी फिल्म का संवाद बोलकर हिन्दी भाषा का गौरव बढ़ाया। इस प्रकार के अनेक ऐसे उदाहरण हैं। आज हज़ारों की संख्या में विदेशी पर्यटक भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की ओर आकृष्ट होकर भारत भ्रमण हेतु आते हैं।

''अक्सर लोग हिन्दी के भविष्य को लेकर बहुत चिंतित रहते हैं। गत कुछ वर्षों में हिन्दी ने जितनी द्रुत गति से विस्तार किया है, शायद विश्व सिनेमा और साहित्य ने अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। कुछ वर्षों तक इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती थी कि हिन्दी की किसी पुस्तक के सौ से अधिक संस्करण प्रकाशित हो सकते हैं।''[८] धर्मवीर भारती की 'गुनाहों का देवता' कृति को यह उपलब्धि प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी पुस्तकें हैं जिनके नये संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की कृतियाँ आज भी लोकप्रिय हैं। आज हिन्दी के अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं जिनसे विभिन्न अनुवादों, साहित्यिक कृतियों को वेब साइट्स में महत्ता दिलाना, शोध-पत्रों, शोध-पत्रिकाओं, किताबों का संकलन भारतीय भाषाओं में करने, कम्प्यूटर द्वारा मानवीकरण कर इसे प्रगति, विकास की ओर ले जाने का कार्य किया जा रहा है। भाषायी सर्वेक्षणों में जनसम्प्रेषण की दृष्टि से चीनी और अंग्रेजी के बाद हिन्दी तीसरी महत्त्वपूर्ण भाषा है, हिन्दी के इस वैश्विक विस्तार का बड़ा श्रेय भूमण्ड़लीकरण और संचार माध्यमों को जाता है। यह कहना गलत न होगा कि संचार माध्यमों ने हिन्दी के जिस विविधतापूर्ण सर्वसमर्थ नए रूप का विकास किया है, उसने भाषा समृद्ध समाज के साथ-साथ भाषा वंचित समाज के सदस्यों को भी वैश्विक संदर्भों में जोड़ने का काम किया है। भाषा प्रौद्योगिकी एवं अनुवाद प्रौद्योगिकी के विकसित होने के कारण हमारी भाषाओं के बीच सूचनाओं एवं साहित्यिक आदान-प्रदान का क्रांतिकारी प्रयास आरम्भ हो चुका है। आज यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो रही है कि अंग्रेजी के द्वारा ही प्रबंधकीय कार्य किये जा सकते हैं।

आज हिन्दी का प्रयोग विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटरीकरण, भाषिकीय एटलस, व्यावसायिक क्षेत्र, ब्रांड स्थापना, संवैधानिक कार्यान्वन आदि क्षेत्रों में तेजी से हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के फैलाव से ही भारत में 'स्किल इंडिया', 'मेक इन इंडिया' तथा 'डिजिटल इंडिया' जैसी संकल्पनाएँ उभरकर सामने आई हैं। भारत सरकार इन संकल्पनाओं को साकार करने हेतु तत्पर है। 'डिजिटल इंडिया' को भारत की राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था तथा देश को ज्ञान आधारित भविष्य की ओर ले जाने के महत्त्वाकांक्षी प्रयास के रूप में देखा जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा देश की जनता को शिक्षित तथा रोजगारोन्मुख बनाने की यह नई पहल है। इस योजना के द्वारा अमीर-गरीब के बीच की तकनीकी दूरियों को मिटाया जा सकेगा। देश तथा सरकार के बीच संवाद स्थापित करने हेतु मोबाइल, स्मार्टफोन, इंटरनेट, वेब साइट आदि अचूक अस्त्र प्रयोग किये जा रहे हैं। इस संपूर्ण संवाद का माध्यम हिन्दी ही है क्योंकि यह जन की भाषा है। आज की इस उपयोगितावादी और उपभोक्तावादी व्यवस्था में भारतीयता की प्रतीक हिन्दी को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हिन्दी आज के मूल्यविहीन भूमण्डल में भारतीय संस्कृति की नैतिकता एवं अध्यात्म को अपने सामर्थ्य से संसार के सम्मुख प्रस्तुत कर रही है। 'मेक इन इंडिया' अभियान की सफलता से 'मेड़ इन इंड़िया' का स्वर्णिम स्वप्न पूर्ण होगा। 'मेड़ इन इंड़िया' का यही संदेश है- अपना सामान बनाओ, दुनिया भर में पहुँचाओ। इस अभियान के साथ-साथ हिन्दी भाषा भी अपना सार्थक योगदान देकर योजना को सफल बना रही है।

इस प्रकार हिन्दी अपनी ही शक्ति और ऊर्जा तथा सूचना क्रांति से उपलब्ध नये यांत्रिक उपकरणों के साथ अपना साम्जस्य स्थापित करते हुए विश्व मंच पर भारत का गौरव बढ़ा रही है। फलतः 'वैश्विक गाँव' की परिकल्पना चरितार्थ प्रतीत हो रही है। परन्तु यह सर्तकता भी आवश्यक है कि हम प्रत्येक संकट के लिए तैयार रहें। हम हमारे नैतिक मूल्यों, संस्कृति तथा संस्कारों से न कटें क्योंकि यही हमारी जड़ें हैं, जड़ों से कटना पतन की ओर ले जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. शर्मा, कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीड़िया, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, सन् -२००७, पृ. सं. -१३
२. मिश्र, गिरीश एवं पाण्डेय, भूमण्डलीकरणः मिथक या यथार्थ, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, सन्-२००५, पृ. सं.-१०१
३. खेतान, प्रभा, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्-२००४, पृ. सं. ३२
४. दुबे, अभय कुमार, हिन्दी में हम : आधुनिकता के कारखाने में भाषा और विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्-२०१५, पृ. सं.-६१
५. 'शशि', शशिभूषण कुमार (संपा.), भूमण्डलीकरण : साहित्य, समाज और संस्कृति, ऐक्सिस बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली, सन् २०१३, पृ. सं.-२६७
६. वर्मा, विमलेश कांति, हिन्दी मत और अभिमत, प्रकाशन विभाग- सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, सन्-१९९६, पृ. सं. -९९
७. उपरिवत्, पृ. सं.-९८
८. शशि, शशिभूषण कुमार (संपा.), भूमण्डलीकरण : साहित्य , समाज और संस्कृति, ऐक्सिस बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, सन्-२०१३, पृ. संख्या -३५

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

भूमंडलीकरण और बाजारवाद

प्रा. अंजना एल. पटेल
(हिन्दी विभाग)
एच. आर. शाह आर्टस एन्ड कोमर्स कॉलेज, नवसारी

अगर हिंदी कहानी के पचास वषौ को इतिहास का अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिंदी कहानी को अनेक आंदोलनों से होकर गुजरना पडा है । आंदोलनों में हिंदीकहानी को बडी सिद्दत के साथ अपने सरोकारों,शब्दों,मुहावरों और व्याकरण को बदलना पदता है । यदि आठवें दशक में हिंदी कहानी की सबसे बदी चिंता समाज में फैली बुराई,भ्रष्टाचार है तो 1990 के बाद की कहानियों की सबसे बडी चिंता बाजारवाद,उपभोक्ता और इलेक्ट्रानिक्स मीडिया के ध्वारा हमारे सांस्कृतिक परिध्रुश्य को पुरी तरह बदलने वाले सांस्कृतिक संकट पर है । भूमंडलीकरण और मुक्त बाजार के नाम पर फैलता उपभोक्तावाद हमें प्रतिदिन मानवीयता से थोडा बहुत व्यवहतकर वस्तु में परिवर्तित कर रहा है । हमरे सारे मुल्य, सारे संस्कार पुरने और बासी पदतै जा रहे है । हमरी शिक्षा और पालन पोषण ऍसे हो गए है जो हमें बाजार मे बिकने वाले वस्तु बना दे रहे है । कम्प्यूतर,इंटरनेट और मल्टीनेशनल कंपनिया हमारी आखो को चौधिया दिए है । हम चिप्स,कोक्काकोला की दुनीया में खडे गर्व का अनुभव कर रहे है । आज हमरे सामने चारों तरफ खुला बाजार है। आज तरह-तरह के साबुन,शेम्पू और क्रीम से धिरे हुए हम विश्व सुंदरीया बढ रहे है । अर्थ की ताकात का राज बढता जा रहा है । बाजार चीजों का विकल्प बन गया है । हमारे रिश्ते नाते कमजोर पडते जा रहे है । "तातें पाव पसारिए,जाती लाम्बी सौर" के मुहावरे को हम इस बाजारवाद में भूलकर 'ऋणंक्रुत्वाघ्रुतम पीवेत' के सूत्र को मानने के लिए विवश हो गए है । आज बडे-बडे ब्राण्ड भूमनदलीकरण स्तर पर प्रभावित होने लगे है । सांस्कृतिक उध्योग में ब्राण्ड ने एक महत्वपूर्ण पूजी के रूप में प्रवेश किया है । पहले मानवीय अनुसंधान और खोज से प्राप्त वस्तु का पेटेंट तो संभव था मगर आज प्रक्रुतिक वस्तुओं का पेटेंट किया जा रहा है । आज शुध्ध पानी के नाम पर पानी का ब्राण्ड विकसित किया जा रहा है । पानी को बोतलों में भरकर उसे संपति के रुउप में प्रयोग किया जा रहा है । प्रक्रुति का यही बाजारीकरण है । आदमी के कानों में चारों तरफ से यह आवाज आ रही है- "खरीदो और जादा से जादा से खरीदो । आज हर आदमी के भीतर एक खरीदनार बैठा हुआ है और बाजार उसे सोते-जागते कुछ खरीदने और भोगने के लिए हर क्षण उकसा हुआ हैं | आज किसी के मनमें शांति नहीं है क्योंकि वह सब ऐसे माहोल में जी रहे हैं जहाँ बाजार निरंतर हाँक लगा रहा है | टेलीविझन के विज्ञापन , वस्तुओं के संग्रह और प्रलचन को हर क्षण हमें समझा रहे हैं | आज विज्ञापनों के माध्यम से हम चीजों को खरीदने के लिए बाध्य हो रहे हैं | बाजारवाद हमारे रसोईघर तक पहुँच गया है | आज समृद्ध घरों में ऐसी बहुतेरी चीजों के अम्बार लगे हुए हैं कि जो किसी काम के नहीं हैं फिर भी हम बाजार से सामान ढोकर घरों को भरने के लिए मजबूर हैं | उपभोक्तावाद या बाजारवाद के सामने लाचार मनुष्य की व्यथा-कथा को बडी सिददत के साथ 'लवलिन' कही कहानी 'सहेलियाँ' में व्यक्त किया गया है | इस कहानी का कथ्य प्रेम है | लेकिन इसमें पति नवीन सी. डी. प्लेअर का नवीनतम मॉडल घर लेकर आता है | सारे घर के लोग उसे खुशियों से घेर लेते हैं | उसने यह चीज घर में इसलिए नहीं लाई है कि घर के लोगों का संगीत के प्रति विशेष दिलचस्पी या संस्कार है बल्कि इसलिए लाई है कि उसको अपना वैभव , शानोशौकत प्रदर्शित करने के लिए यह पच्चीस हजार का खिलौना अब ड्राइंग रुम में सजाया जाएगा | इसी संदर्भ में पत्नी की यही सोच बाजारवाद के दुष्प्रभावोंको बडी गंभीरता से रेखांकित करती है| ' भरो ! भरो ! भरो ! ' जिंदगी को तमाम भौतिक उपादानों से भर दो ताकि भीतर से उठती शून्यता और रिक्तता-की गूंज छाती में ही दम तोड दे | बाजार नित्य नए सामान से भरा पडा है | ए.सी. , मारुति , बंगला सब खरीद डालो | कीमती कपडों के लिए शहर के सारे बुटीक छान मारो | दिन में चार बार खाओ और पेट का गड्ढा भरो | जीवन के निस्सार वस्तुओं के साथ इस कदर रचबसा लो कि आत्म-साक्षात का मौका ही न मिले | घर तो भर लिया अब भागना शुरु कर दो | अनंत महत्वाकांक्षाओं के पीछे लगे रहो| रुचिरा को लगता है हम इसलिए मरते-भागते हैं क्योकि हम

निरंतर भावनाओं , संवेदनाओं और मनोवेगों के मानसिक आवर्तन और मानवीय संघर्ष से बचते है| प्रेम , करुणा , दया , क्षमा जैसे उत्कट और जीवंत मनोलोक का कोई महत्व ही नहीं है | जिस्म सुभीतों की चाट लग जाती है– आत्मा सुखकर शून्य हो जाती है अन्दर से चीखें सुनाई देना बंद पड जाती हैं|

यह कहानी उपभोकतावादी संस्कृति दारा आज विवश आदमी की आत्मा को झकझोरती हुई बडी सिददत के साथ बाजारवाद के विरोध में खडी दिखाई देती है|

आज खुले बाजारवद ने केवल नगरों और महानगरों को ही नहीं अपने आगोश में ले रखा है अपितु गाँव , शहर , कस्बे की ओर भी यह बाजारवादा बडी तेजी से बढ रहा है| वहाँ भी अब ब्यूटी पार्लर खुलने लगे हैं| वहाँ भी लोग शारीरिक सौन्दर्य को समझने लगे हैं | टी. वी. अपसंस्कृति ने उसके मन-मस्तिष्क को इस प्रकार बदला दिया है कि उनके जीवन की भी प्राथमिकताएं बदल गई हैं| आत्मिक सुंदरता तथा मानवीय मूल्यों का महत्व वहाँ भी घटने लगा है | दैहिक सौदर्य के प्रति आकर्षण केवल गाँव के संभ्रांत लोगों में ही देखने को नहीं मिलता अपित गाँव में चौका-बर्तन करनेवाली नौकरानी ने भी यहाँ आकर्षण दिखाई देने लगा है | ' शैवाल ' की कहानी ' भारतीय लोक संगीत-97 'बडी सिददत के साथ इस भावना को व्यक्त करती है|

घर में काम करनेवाली नौकरानी टी. वी. पर दुनिया की सबासे खूबसूरत' औरत ' देखने के लिए बेचैन है| सारा परिवार टी. वी. के सामने बैठा है | कहानी की दादी वह सब देखकर भौचक है| दादी गाँव जाने पर ' साब जी ' के बेटे से पूछती हैं कि वह क्या करता है ? उतर में वह बताता है कि ' स्नो पावडर ' की दुकान है जो खूब चलती है| दादी जब पूछती है – कौन स्नो रखते हो- अफगान (यही नाम दादी ने अपनी दूसरी पीढी से सुना होगा) तो लडका हँस पडता है | 'अफगान का जमाना कहा रहा ? विदेशी माल ढूँढते हैं सब – खेलॉन से नीचे नहीं जाते | तरह-तरह के प्रसाधन ब्राण्डों के विभिन्न उत्पादनों से आज बाजार भरे पडे है | जिनको प्राप्त करने की होड में जिसकी जैसी हेसियत है , वह वैसी मशक्कत कर रहा हैं | कहानी की दादी छोटी पोती को उसके आग्रह पर ब्यूटी पार्लर ले जाती हैं| वहाँ ' साब जी ' का वही बेटा मिलता है जो परमेश्वर मिसिर की लडकी रिंकू को गाँव में ब्यूटी पार्लर खुलवाना चाहता है| कहानी में ब्यूटी पार्लर में प्रतीक्षारत बैठी पत्रिका पढती माँ-बेटी का संवाद दिया गया है| जो बहुत मार्मिक ढंग से समस्या को छूता है| बेटी उस उपलब्धि की सूचना पर गद्गद है कि हिन्दुस्तान की लडकी' मिस यूनिवर्स ' चुनी गयी है| माँ की नजर में बाहर वाले सब बिगाड रहे है इस देश की लडकीयों को तो नयी द्रष्टि संपन्न लडकी तुनक कर बताती है | इसमें बुरा क्या है, मुंबईकी एक गरीब लडकी ' मिस बोम्बे ' चुनी गई तो मालामाल हो गई| माँ समझाती है कि पूरानी द्रुष्टि मनुष्य को भीतरी सुन्दरता के लिए प्रेरित करती थी किन्तु अब यह नई दृष्टी बाह्य सुन्दरता के लिए प्रेरित करती है| सुन्दरता के प्रति समाज के इस बदलाव में जीवन की प्राथमिकताएँ तो बादली ही हैं नारी की परतंत्रता पुरुष की दासी बना डालने की गहरी साजिश भी है | प्राथमिकताएँ बदलने से जीवन में शिक्षा , विकास , आत्मनिर्भरता , मानवीयता , समुदाय बोध सब दूसरे तीसरे नंबर की चीजे हो जायेगी| सुन्दरता एक जादुई सपना है पर क्षणिक सुन्दरता की इच्छा करना नशा है | इसके लिए तुम्हें एक वक्त मेकअप का सहारा लेना होगा , क्योंकि सुन्दरता तुम्हारे लिए पहले नंबर की जरुरत है , तुम उस जरुरत का व्यापार करने वालों के अधीन बनी रहोगी | कहानी की दादी के औत्सुकता का चरम (क्लाइमेक्स) वहाँ है जहाँ दादी को अपने घर का काम करने वाली सकूना नौकरानी , जिसने अनेक खेतो के दौ सौ रुपए का अनाज चुराकर बेचा है और दादी ने उस कसूर को इसलिए माफी के खाते में डाल दिया था कि महँगे स्कूल में अपने लडके को पढाने के कारण तंग आकर की होगी | जब ब्यूटी पार्लर के डेढ सौ रुपए का बिल देते निकलती है तो यह चिन्ता का विषय बन जाता है | यही दादी की पीडा का बिन्दु है कि बेटे का भविष्य बनाने , उसकी तकलीफ घटाने से अधिक चिन्ता माँ को अपनी दैनिक सुन्दरता बनाए रखने की है| यह कहानी अपने समय में सार्थक ढंग से हस्तक्षेप करती है|

इसी प्रकार की कहानी जयनन्दन की कहानी ' चियर अप कोलाब्लू ' है जिसमें कहानी कार ने आज के नवयुवकों की बाजारवादी मनोवृतियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है| रंगकर्मी नवलकान्त अपनी संवाहि का संस्था के दारा नाट्य प्रदर्शन के लिए परेशान है | उनका पुत्र साकेत अपने ढंग से इस संस्था में प्राण फूँकना चाहता है| साकेत टी. वी. संस्कृति से पूर्ण प्रभावित है | वह अंग्रेजी मीडियम में पढाई करके विभिन्न प्रतियोगिताओं में बैठने का उपक्रम कर रहा है उसी समय टी वी. के कई चैनल आ गए थे | और उनमें कार्यक्रमों के नाम पर इंपोर्टेड

कल्चर की आई बाढ ने उसे विचलित कर दिया था | वाह लाइफ की क्या चमक है – क्या क्रेज है , क्या ग्लेमर है , क्या डेटिटी है | खुद को तपाकर , साधकर , रगडकर , मांजकर , डॉकटर , इंजीनियर , आई.ए.एस. , आई.पी.एस. , बना भी ले तो ईमानदार रहकर यह ठाट , शानो-शौकत और कद्र कहाँ ? टी.वी. पर आने के लिए इन लकडों की कोई जरुरत नहीं ..... न्यूनतम प्रतिभा ही हो तो कई-तरह के कार्यक्रम हैं | जहाँ खुद को खपाया जा सकता है | साकेत के माध्यम से यहाँ आज के उन नवयुवकों की प्राथमिकताएँ दर्ज हैं जिसको आज टी.वी. तय कर रहा है | वह नाट्य संस्था में प्राण फूँकने केलिए नगर के इण्टर कॉलेजों का फैशन शो आयोजित करता है |

नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को विशेष अतिथि तथा निर्णायक मण्डल का सदस्य बनाया जाता है | अंतर्राष्ट्रीय प्रसिध्दि दारा जींस की एक बहुराष्ट्रीय कंपनी उन्हें पच्चीस हजार रुपये फैशन शो के आयोजन के निमित सहर्ष प्रदान करती है | इस आयोजन में भारी भीड जुटती है | इसी फैशन शो के साथ एक कहानी लेखक की नई पुस्तक का उन्के जन्म दिन पर विमोचन भी रखा गया है | इसमें मुश्किल से 25-30 की उपस्थिति थी और स्वंय लेखक का बेटा पुस्तक विमोचन कार्यक्रम में न जलाकर फैशन शो में चला गया था | इस फैशन शो में लडकियों के माता-पिता भी उपस्थित थे | उन्हीं के सामने उनकी बेटीयों पर ' हाय सैकसी ' ' हाय ब्यूटीफुल ' आदि फब्तियाँ कसी जाती हैं ... इन लोगों पर डूब मरने को जी चाहने लगा | यह कैसी मजबूरी थी कि अपने ही मंच पर अपनी बेटीयों के साथ सरे आम अभद्रता की जाए और हम तमाशायी बने रहें | कल यही नजारे गली , बाजारों में दिखाई पडने लगे तो हमें पहल करने का कोई हक नहीं है | बाजारवाद की अंधी गली में हम सब ने इसे स्वीकार कर लिया है | यह कहानी टी.वी. दारा प्रदूषित होती हमारी संस्कृति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है |

यह बाजारवादी संस्कृति हमारे समाज को दो भागों में बाँट रही है । संजय..... की कहानी ' पिंटो का साबुन और पटकथा ' इसी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है । पिंटी गाँव में साबुन लेकर आता है मानो नगरीय संस्कृति का पूरा साज समाज गाँव की संस्कृति में प्रवेश कर जाता है जिसका प्रतीक साबुन है । साबुन समृध्द का प्रतीक है जिसके पास साबुन नहीं है वह उस वर्ग से अलग है । पटकथा में हमारे अंध विश्वासों , गरीबों , धार्मिक अनुष्ठानों को कैस किया गया है । आदिवासी भले ही कहें कि आजकल हम सब यह जीवन नही जीते लेकिन आज के फिल्म प्रोड्यूसर उसे आज का सच बनाकर प्रस्तुत करके लाखों-करोडों का वारा-न्यारा कर रहे है । यह कहानी बाजारवादी व्यवस्था की पोल खोलती है ।

बाजारवाद से प्रभावित कैलास बनवासी क़ी कहानी "बाजार में रामधन" भी है । जो दो बैलों की जोडी से सम्बन्धित कहानी है इस कहानी में सीधा-सादा रामधन बाजार के दबाव के सामने टिक नहीं पाता । रिश्ते-नाते सभी रामधन के सामने टूटते नजर आते हैं पर विवश रामधन कुछ नहीं कर पाता। रामधन किसानी, संस्कारों का आदमी है जो वर्तमान परिवर्तनों और दबावों से अनभिज्ञ अपने अतीत से जुडता है। वह सोच भी नहीं सकता कि जो बैल उस के पिता के धरोहर है वे कभी बेचे जा सकते हैं । बैल और रामधन में धनिष्ट रिश्ता है। बैलों के पास भाषा नहीं है पर मालिक के लिए भरपूर दया मया है। वे उनके सुख-दुःख को समझते हैं । रामधन भी बैलों को अपने घर की इज्जत मानता है लेकिन उसका भाई मुन्ना जो बाजार को अनिवार्यता को समझता है और बैलों को ट्रेकटर युग में रखना व्यर्थ समझता है । वह रामधन पर बैलों को बेचने के लिए दबाव डालता है क्योंकि मुन्ना को अपना भविष्य बैलों के बेच देने में ही दिखाई दे रहा है | घर में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे बेचकरमुन्ना धन्धा कर सके | वह बैलों के विकल्प में मशीन रखता है वह परिवार को बताता है बैलों की जगह ट्रेकटर से काम लिया जा सकता है |

रामधन के प्रति बडा प्रेम है | पारिवारिक झगडे की सम्भावना से वह बैलों को बेचने का नाटक करता है लेकिन बाजार से लौटते हुए बैल कहते है कि " बेचना तो पडेगा ही एक दिन " चिन्ता उन्हें रामधन की है | जो अपने निर्णय के कारण गाँव-घर अकेला पड गया है |

यह कहानी हमारा ध्यान उस ओर खींचती हैं जहाँ हमारी पुरानी बातें धरी की धरी रह जाती हैं इस बाजारवाद में हमारे रिश्ते-नाते कमजोर पडते जा रहे हैं । हमारी मर्यादाएँ , हमारी पुरानी धरोहरें निरर्थक सिध्द हो रही है | परिवार , गाँव में कटुता समाती जा रही है इस प्रकार समकालीन कहानियों के बदलते तेवर को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आज के कहानीकारों की नयी पीढी सम्भावनाओं से भरी हुई है । उनके

सामने उदारीकरण और बाजारवाद का जो वितान फैला हुआ है वह रंगीन अवश्य है पर वह मनुष्य के जीवन और संवेदना बिकाऊ बनाने में हवन में घी का काम कर रहा है। ओहदों पर बोलियाँ लग रही हैं विकास के नाम पर दिनाशकारी चक्र चलाए जा रहा है। राजनीति बहरों का संवाद बन गया है।

बाजारवाद हमारी नियति तय कर रहा है, हम लाख विरोध करके भी उससे अलग नहीं हो सकते। इस दौड में जो दौड रहा है वह भी परेशान है जो देख रहा है वह भी परेशान है। सन्तोष और सुख कोसो दूर होते जा रहे हैं पर यह सुखद बात है कि युवा पेढी इस बाजारवाद के विरोध में कहानियाँ लिखकर हमारी आँखें खोलने में संलग्न है।

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य पर भूमंडलीकरण का प्रभावः 'संस्कृति' के विशेष संदर्भ में

गणेश ताराचंद खैरे
छात्र-पीएच.डी.
हिंदी विभाग,
चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय,शिरूर, जि. पुणे

*** प्रास्ताविक :**

वैश्वीकरण की अवधारणा हमारी संस्कृति के लिए नई बात नहीं है। हमारी पारंपरिक अवधारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की है, पूरे विश्व समुदाय को एक कुटुम्ब, एक कुल मानने का हमारा आग्रह रहा है। लेकिन भूमंडलीकरण की शब्दावली का वैश्विक गाँव- 'ग्लोबल व्हिलेज' हमारी धारणा से अलग है। 'वैश्विक गाँव' की मान्यता का एक आर्थिक पक्ष बाजार तथा बाजारवाद इसे हमारी पुरातन मान्यता से पूरी तरह अलग करता है। वैश्वीकरण का यह आर्थिक पक्ष इसे नव साम्राज्यवाद का रूप प्रदान करता है। 'भूमंडलीकरण' के अंतर्गत बाजार का अंग बन जाना ही विकास का एकमात्र मार्ग है।

प्रो. यशपाल कहते है-'भूमंडलीकरण' का अर्थ यह नहीं है की, यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्'जैसी बात बिल्कुल नहीं है। भूमंडलीकरण एक स्वेच्छाचारी प्रक्रिया है, जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेंगी कि, हमारी स्थितियाँ कैसी होगी, उन्हें कैसी होनी चाहिए। आपको अनुकूलित किया जाएगा।

'भूमंडलीकरण' उसे कहते है, जो उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में आधुनिकता ने शुरू किया था। आधुनिकता को इंसान के सोच-विचार में तरह-तरह की क्रांतियाँ करने का श्रेय दिया जाता है, लेकिन उसकी व्याख्याओं में यह पहलू उभर कर आ पाता है कि वह भूमंडलीकरण की वाहक भी है।

'भूमंडलीकरण' को सामाजिक संबंधों को विश्वव्यापी सघनीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो दूर-दूर स्थित स्थानियताओं को आपस में जोड़ देता है। यह सूत्र इस तरह से काम करता है की, स्थानियताओं के दायरे में होने वाली घटनाओं को बहुत दूर चले रहे घटनाक्रम के आधार पर बनती है और ऐसा ही असर स्थानीयताओं का घटनाक्रम स्वयं को प्रभावित कर रही सुदूर घटनाओं पर डालता है। भारत में भूमंडलीकरण पर होनेवाली बहस को दो भागों बाँटा जाता है। एक ओर भूमंडलीकरण के समर्थक है और दूसरी ओर विरोधी। भारत में भूमंडलीकरण के समर्थक इसकी नकारात्मक विफलताओं की ओर वैसे ही आँखें मूंद लेते हैं जैसे भूमंडलीकरण का विरोधी वर्ग इसकी सफलताओं से। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता की 'भूमंडलीकरण' ने भारत का कायापलट किया है।

'भूमंडलीकरण' का हमारे जीवन पर पड़नेवाले प्रभावों को हिंदी साहित्य ने बड़ी कुशलता के साथ रेखांकित किया है। हिंदी कथा साहित्य विशेषतः उपन्यासों में हम यह देख पाते है कि हमारा भूमंडलीकृत भारत किस प्रकार अमेरिका बनने की होड में लगा है। युवा पिढ़ी गाँवों से शहर और फिर शहरों से जैसे विदेश में जाकर बसने में ही वह अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझते हैं।

समकालीनहिंदी उपन्यासों में हमें इन प्रश्नों से जूझते-लड़ते पुरानी पीढ़ी के माता-पिता तथा विदेशी संस्कृति अपना चुकी नयी पीढ़ी अपनी जरुरतों को और साथ ही साथ अपने शौक, जरुरतों को पूरा करती दिखाई पड़ती है।

*** नासिरा शर्मा कथा साहित्य पर भूमंडलीकरण का प्रभाव :**

भारतीय संस्कृति में हमें अनेकता में एकता देखने को मिलती है। भारतीय संस्कृति की अपनी एक परंपरा रही है। ''जिस प्रकार समुद्र में अनेक नदियाँ आकर गिरती है और एक हो जाती है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति अनेक विचारधाराओं को अपने में समाहीत करती हुई विकास के मार्ग पर निरंतर गतिशील रही हैं।''[9] भारतीय संस्कृति में हमें आदर्श, विश्वास, उदारता आदि गुण दिखाई देते है।

भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति में काफी भिन्नता दिखाई देती है। पाश्चात्य संस्कृति ऐश, मौज-मस्ती को प्रधानता देती है तो भारतीय संस्कृति जो भी है उसे सब मिलकर खाओ, केवल भौतिक सुविधाओं के लिए ही संघर्ष मत करो पर ध्यान देती है।

''भारतीय संस्कृति के चिंतन में मूलत सत्य, ज्ञान, कर्म, पुरुषार्थ, अर्थ, काम, मोक्ष, पुनर्जन्म, आत्मा-परमात्मा, ब्रम्ह-माया, वृक्ष पूजा, जलवायु, अग्नि पूजा तथा गृह पूजा का समावेश है।''[२]

आधुनिक काल के इस बदलते परिवेश में लोग बदल रहे है और अपनी संस्कृति को भी बदलने की कोशिश में लगे हुए है। इसी कारण कई सांस्कृतिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही है, जो भारतीय संस्कृति के लिए बाधक होती जा रही है। इसमें सांस्कृतिक विघटन, भाषा प्रेम, बदलते संदर्भ, परंपराओं का विघटन, लोकसंस्कृति का ऱ्हास आदि समस्याएँ प्रमुख है। नासिरा शर्मा ने इन समस्याओं में से कई समस्याओं को चित्रित किया है।

आधुनिक बनने की होड़ में आज का मानव 'पाश्चात्य संस्कृति' का अंधानुकरण करने के पीछे पड़ा हुआ है। इससे वह आधुनिक तो नहीं बना पाया है लेकिन अपनी संस्कृति को हानि पहुँचा रहा है। नासिरा शर्मा ने 'ठिकरे की मंगनी' उपन्यास में 'रफत' के माध्यम से अंधानुकरण करनेवालों का उदाहरण दिया है। शहर में रहनेवाला 'रफत' की कोशिश आधुनिक बनने की होड़ में वह अपने परंपरागत मूल्यों को तोड़कर आगे बढ़ना चाहता है।

जबरफत गाँव जाता है तब उसकी माँ ईद के दिन न आने के बारे में पूछती है, तो वह कहता है ''अरे अम्मी मैं तो खुद अपने वक्त का इमाम हुसैन हूँ। मुझे इन चीजों की अब जरुरत नहीं रह गई है।''[३] इससे रफत परंपराओं से चली आ रही ईद की पवित्रता तथा इस त्यौहार पर ही अविश्वास प्रकट करता है। वह इन परंपराओं पर भी अविश्वास प्रकट करता है। वह महरुख को भी दिल्ली आने के बाद आधुनिकता के बारे में बताता है।

''सही तरीके से जीना सीखो, महरुख इन पुरानी बेड़ियों को काट फेंको, दकियानूसी तौर-तरीकों को खुदा हाफिज कहों।''[४] जब रफत पुरानी परंपराओं को उखाड़कर फेंकने की बात करता है तब वह इसमें से अच्छा-बुरा नहीं पहचानता है। जब रफत इंग्लैण्ड जाता है तब वहाँ की लड़की से शादी करते समय यह भूल जाता है कि, उसकी महरुख के साथ मंगनी हो चुकी है। रफत भौतिक आकर्षण से पागल होकर अपनी संस्कृति और समाज के प्रति कृतघ्न बनाता है।

वह अपने सुख के लिए सभी सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ देता है और अपने सगे संबंधियों की परवाह किए बगैर अपनी प्रेमिका से शादी कर लेता है।

आज हमारी आर्थिक नीति भोगवादी संस्कृति के विस्तार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन दे रही है, इससे हम परस्पर बिखरने लगे है और साथ-ही-साथ हमारे संबंधों में भी दरार पड़ने लगी है। आज व्यक्ति प्रसिद्धी के पीछे अपने परिवार और समाज को भूल रहा है।

नासिरा शर्मा ने 'दुनिया' कहानी में ऐसे बदलते संदर्भो को चित्रित किया है। इसमें शोभना आधुनिक नारी है जो प्रसिद्ध के पीछे पड़ी है। इसी होड़ में वह अपने माता-पिता को भूल जाती है। आज के युग में आधुनिकता को अपनाने वाली नारी और परंपरागत मूल्यों का हो रहा ऱ्हास को दिखाना लेखिका का उद्देश्य रहा है।

जबकि 'शाल्मली' उपन्यास में लेखिका ने इसके विरुद्ध चित्रण किया है। इस उपन्यास में शाल्मली आई. ए. एस. अफसर होने के बावजूद अपने माता-पिता की ही नहीं बल्कि अपनी सास की भी सेवा करती है और बाहर के लोग तो सास को उसकी मां ही मानते हैं। इससे नासिरा शर्मा ने ऱ्हास हो रही मानवीयता को बचाने की कोशिश की है। नासिरा शर्मा ने सांस्कृतिक समस्याओं के अंतर्गत बदलते संदर्भ, अंधानुकरण की मूल्यों के पतन के बारे में चिंता व्यक्त की है।

आज इस भौतिकवादी युग में जितनी सुख-सुविधा हम भोग रहे है लेकिन फिर भी असंतोष महसूस कर रहे है। इसलिए एक ओर मनुष्य ने स्वयं को जितना सुखमय बनाया है उतना ही वह अपने को विविध सांस्कृतिक स्थिति से घिरता चला जा रहा है। आज के युग में उसकी भौतिक प्रवृत्ति की ओर झूकने के कारण यह समस्या ज्यादा सताने लगी है। आज परिवर्तन के साथ-साथ लोगों की समस्याओं में भी परिवर्तन हो गया है। किंतु समस्या का जो मूल कारण है वह नहीं बदला है। आज मानव के जीवन का एक भी हिस्सा ऐसा नहीं बचा जिसे समस्या ने न घेरा हो। ऐसा इसलिए हो रहा है कि, हम परस्पर त्याग, समपर्ण की संस्कृति से दूर होते चले जा है।

लेखिका ने सांस्कृतिक परिवेश का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि उनके मूल तक जाने का प्रयास करते हुए इनका हल ढूँढ़ने का प्रयास भी किया है। लेखिका ने संस्कृति का चित्रण करते समय किसी भी वर्ग या समाज की

अनैतिकता को स्थान नहीं दिया है और वर्ग भेद की दूरि मिटाने का प्रयास करते हुए सर्व धर्म समभाव पर विश्वास प्रकट किया है। प्रत्येक वर्ग, प्रांत, देश की संस्कृति अलग-अलग होने के कारण उसका समाधान भी अलग-अलग तरह से किया है।

उन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है और कहीं भी पाश्चात्य संस्कृति का अपने परिवार पर प्रभाव महसूस नहीं होने दिया है। वह अपनी संस्कृति की खुशबू को अपने चारों ओर संजोए हुए दिखालाई पड़ती है। 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में गांव की मिट्टी की सोंधी महक गुंथी हुई है। ''सिल पर पिसे हरे धनिये की चरनी, अरहर की दाल, आलू का भूता, गरम-गरम गुड की खुशबू, गुड की चाय।''[५] यहाँ पर ग्रामीण माहौल का चित्रण किया गया है, हर व्यक्ति की पौशाक और वेशभूषा का वर्णन है और शादी, गमी, तीज-त्यौहार पर परस्पर दिखाया गया है।''

*** निष्कर्ष :**

'भूमंडलीकरण' के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों की अभिव्यक्ति पूरे विश्व में हम दो रूपों में देख सकते है। विकसित और विकासशील देशों का एक बड़ा वर्ग उपभोक्तावाद के आकर्षण में भ्रमित है। भौतिकवाद की अंधी दौड़ में मनुष्य उपभोक्ता बनकर रह गया है। आज तनाव विश्व की तीसरी सबसे बड़ी बीमारी बनकर उभरी है। ''सांस्कृतिक असहिष्णुता और वैचारिक कट्टरता भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव की अभिव्यक्ति है।''[६]

संदर्भ :

१. नासिरा शर्मा- अपराधी
२. नासिरा शर्मा- अपराधी
३. नासिरा शर्मा- ठिकरे की मंगनी, पृ.१४६
४. नासिरा शर्मा- ठिकरे की मंगनी, पृ.१८३
५. नासिरा शर्मा- जिंदा मुहावरे, पृ.११६
६. अमित कुमार सिंह- भूमंडलीकरण और भारत, पृ.३०

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य- विशेष संदर्भ हिन्दी उपन्यास

प्रा.डॉ. संतोष विजय येरावार

हिंदी विभाग

देगलूर महाविद्यायल, देगलूर

भूमंडलीकरण, बाजारीकरण और निजिकरण नें मानव जीवन और समाज को सर्वांगिन रुप से प्रभवित किया हैं | जिस समाज व्यवस्था और मानसिकता में सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन हो गया हैं | सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक राजनीतिक परिस्थितियों, को भी पभावित किया | जहा भुमंडलीकरण ने मनुष्य जीवन को सहज और सरल बनाया तो दुसरी और मनुष्य की मानसिकता को विकृत एवं विक्षिप्त भी बनाया |भुमंडलीकरण कारण भौतिक साधनों का पाबल्य, आर्थिक संपन्नता, सुविधाओं की भरमार, वैश्विक मुल्यों की स्थापना, अधिकारों के प्रती सचेतता, रोजगार निर्मिती एवं वैश्विक दुरियों को मिटाने में सहजता आई तो दुसरी ओर मनुष्य को स्वार्थी, विकृत संकुचित, वासनांध, क्रुर एवं पशु बना दिया है | मानव और समाज के इस बदलती मानसिकता को साहित्य में उघाडा गया है | दया, प्रेम, समर्पण, बंधुता, सत्य एवं अहिंसा जैसे मुल्य टुट गए और अर्थ केंद्रीत मानसिकता पनपने लगी | मनुष्य को भौतिक सुख साधनों का गुलाम बनाने में तथा मनुष्य की सोच को विकृत बनानें में भुमंडलीकरण नें महत्वुपूर्ण भूमिका निभाई हैं | समाज और मानव के बदलते मुल्य तथा विकृत,घृणित एवं संकूचित मानसिकता को हिन्दी उपन्यास साहित्य में उघाडा गया है |

भुमंडलीकरण से उपजे परिस्थिती नें मानव को संकुचित, विक्षिप्त एवं व्यावहारिक बना दिया तथा | उपभोग की मानसिकता में वृध्दी हो गई है | पब कल्चर,मॉल कल्चर बढने लगा एवं विविध प्रकार के नशाखोरी को प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई, मुक्त यौनाचार को स्वतंत्रता के नाम दर बढावा मिलने लगा जिस कारण निराशा, अकेलापन, कूंठा, घटस्फोट, विवाहबाहय संबध, अनैतिकता, चरित्र हिनता, मुल्यहिनता, वासनांध प्रेम एवं अमानवियता जैसी समस्या नें अपनी जडे मजबूत की जिसका चित्रण हिन्दी उपन्यासों में किया गया हैं | भौतिक एवं शारिरिक सुख प्रधान मानसिकता कें कारण परिवार टुट रहे हैं | प्रेम जैसे उदात्त मुल्य मरना सन्न अवस्था में पडा हैं| वासना के बढते प्रभाव नें मनुष्य को नीच, घृनित, चरित्रहिन, व्याभिचारी एवं पशू बना दिया हैं | पती - पत्नी के बीच का विश्वास, समर्पण, सेवा, एवं त्यागभाव समाप्त हो रहा हैं | भौतिक साधनो के चकाचौंध ने और भुमंडलीकरण से ऊपजी अमानवीय होड ने मनुष्य को अंधा बना दिया हैं | प्रेम के बदलते स्वरुप का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में प्रचुर मात्रा हुआ हैं | प्रेम के नामपर केवल वासनापुर्ती व्याभिचार, अनैतिक सबंध , मुक्त यौन संबधो को अपनाया जा रहा हैं | इस वास्तविकता को भी उघाडा गया है |

'भगवतीचरण वर्मा ' के 'आखिरी दॉव' उपन्यास में मनुष्य की स्वार्थी वृत्ती एवं कामवासना तृप्ती से उपजी नीचता का चित्रण किया गया है | चमेली पारिवारिक प्रताडना को नकारते हुए छोड रतन सुनारं के साथ भाग जाती हैं रतन चमेली से प्रेम नहिं करता वह तो उसके धन और शरीर को भोगना चाहता है | चमेली के जेवर नशे के लत के कारण बेच देता हैं | जुआ और शराब का आदि रतन चमेली को से हिरालाल को बेचने तक को तैयार हो तैयार हो जाता है | रतन चमेली को सेठ हिरालाल को बेचने तक को तयार हो जाता है | रतन पैसो के लिए अंधा हो जाता है | रतन की तरह 'ऑखरी दाव' उपन्यास का पात्र रामेश्वर भी पैसो के लिए नाजायज तरिके अपनाता हैं | वह कहता है, दुनिया में केवल एक परमेश्वर है- पैसा | उससे भागकर हम लोग जा ही कहा सकते हैं ? हर जगह पैसा स्वामी है पैसा शक्ति है |" भूमंडलीकरण से उपजी अर्थकेंद्रीत मानसिकताने मनुष्य को स्वार्थी एवं लोभी बना दिया | वह पेसो के लिए निचता की सारी हदे लॉघ रहा हैं | हत्या, भ्रष्टाचार, धोखा-धडी, लूट-खसोट, चोरी, अपहरण जैसे नाजायज काम करने से भी मनुष्य हिचकिचा नहीं रहा है | पैसे ने सारे रिश्तो को तोड दिया है | जमीन और पैसो के लिए भाई-अपने भाई का बेटँ अपने बाप का और पति अपनी पत्नी का वध करने के लिए भी लालायत है |

'शैलेश मटियानी' ने भी अपने 'कबुतरखाना' उपन्यास में मनुष्य की अर्थ पिपासु वृत्ती एवं वासनांध मानसिकता को उघाडा है | सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार दोनों में विश्वास, सामंजस्य,समर्पण एवं सच्चा प्रेम हैं परंतु उपभोगी मानसिकता के कारण पति-पत्नी के रिश्ते को खोखला एवं विक्षिप्त बना दिया हैं | मुक्त यौन संबधो की मानसिकता ने भारतीय सुखी परिवारों के दरवाजे में दस्तक दी हैं जिस कारण उदात्त मानवीय मुल्य तार-तार हो गए हैं | रिश्ते एवं परिवार बिखर रहे हैं | सच्चे प्रेम में जहाँ त्याग होता हैं वो वासना में स्वार्थ और लालसा होती हैं | 'कबुतरखाना' उपन्यास का पात्र सेठ करसन भाई अपनी पत्नी

यशोदा बेन से संबध रखने के बजाय अपनी कामवासना तृप्ती के लिए शकुंतला बाई से और दातुन बेचने वालियों से संबंध रखता हैं तो उधर पति व्दारा प्रताडित यशोदा बेन अपने घर के नौकर रामाओं से अपनी दैहिक भूख मिटाती है | तो दुसरी और कामवासना और अर्थवासना में अंधी हो चुकी शारदा रामा दन्तुभाऊ के साथ मिलकर पटेल सेठ की हत्या कर देती है | महानगरों में अंध मानसिकता कों विदेशी संस्कृती नें बढावा दिया है | मुक्त यौन संबधों की बढती मानसिकता ने स्त्री-पुरुषों को पतित बना दिया हैं |

'कबुतरखाना' उपन्यास में मुंबई की सेठानियाँ किस प्रकार स्वच्छंद कामुकता के आदि हो रामा और उस जैसे नौकरों से अपनी शारिरिक भुख को पुरा करती है इस यथार्थ को उपन्यास में उघाडा हैं | ''घर की नौकरी होती ऐसी | गरीबों के लडको के लिए हर जगह गड्डे हैं, दोस्त | जुठे बर्तन भी घिसों दिन भर,फिर रात की बीवियों को भी संभालो-बीमार पडके मर जाओ, तो कुत्ता भी सूँघने को नहीं भेजेगा कोई |''[2] रामा जैसे नौकर से महानगरों में सेठोनियाँ अपनी हवस को मिटाती हैं और उधर उनके पति दुसरे स्त्रियों से संबन्ध कायम करत हैं यही वास्तविकता

'शैलेश मटियानी' का 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' उपन्यास भी मनुष्य को तुटते-बिखरते मुल्यों को उघाडाता है | भौतिक सुखों से लैस जिवन बिताने की कामना मनुष्य को विकृत एवं वासनांध बना देती हैं | मानव जहाँ सह जीवन और सहज-जीवन को महत्व देता था मानवता और भारतीय उदात्त मुल्यों को महत्व देता था, वही मानव भूमंडलीकरण से पनपी घृणित एवं कामुक मानसिकता को अपना रहॉ है | भौतिक साधनों के चकाचौंध ने मानव को चरित्रहिन बना दिया है इस उपन्यास की पात्र नर्मदाबेन अपने संसाधनों से प्रेम खरिदती हैं | नर्मदाबेन अपने पति के होते हुए भी बंशीवाला, रामदलार जैसे अनेको के साथ सबध बनाएँ ''उसने मंदिर बनवाया पुजारी अपनी पसंद का रखा | उसने अनाथालय खोला, मैनेजर अपनी चाहत का रखा | उसने गर्ल्स स्कुल खुलवाया तो उसका प्रिंसिपल भी अपनी मोहब्बत का भर्ती कर लिया |''[3] नर्मदा बेन अपनी देह वासन को अनेको से मिटाती है | कवी सम्मेलन का आयोजन कि वह इसलिए करती हैं भी वह अनेंको पुरुषों को अपने कामवासना का शिकार बना सके इस यथार्थ मानसिकता को उपन्यास में उघाडा गया हैं |

कुवाँरी माताओं की समस्या भी उपभोगी वासनांध मानसिकता की उपज हैं | विवाहपुर्व संबध रखना मानव पाप और अनीति मानाता वही आज प्रेम के नामपर शारिरिक सुख को हि सर्वस्व मान बैठा है | 'पुनर्जन्म के बाद' उपन्यास में रमाबेन और मनिबेन पात्र ईसी मानसिकता से ग्रस्त है |वे दोनों अवैध संबध प्रस्थापित करते हैं | दोनों बच्चों को जन्म देते है | दोनों मातायें इतनी क्रुर बनती हैं की ओ अपने बच्चों को रामशरन को मारने को भी कहती हैं | बदलते मानवीय मुल्यों ने मनुष्य को पशु बना दिया हैं | एक माँ भी कामवासना के कारण हत्यारी हो सकती है| इस यथार्थ को उपन्यास कार ने उद्घाटीत किया है |

बदलती जीवन पध्दती नें मनुष्य को नशे के आदि बना दिया | पुरुषों के साथ-साथ महिला भी नशक की शिकार होती जा रही हैं | भौतिक साधनों की अती मात्रा एवं आर्थिक संपन्नता ने मानव को अयाश बना दिया है | डॉ. महावरी अधिकारी लिखित 'तलाश' उपन्यास में नलिनी भी मुक्त यौनाचार में सुख तलाशती हैं | शराब पिती है वे किसी भी प्रकारों के बंधनों को नकारती हैं | वे कहती हैं | ''मैं औरत नहीं, प्यास हूँ कभी न बुझनेवाली प्यास हू | लोग आए और मुझे छोडकर चले गए तुम भी चले जाओ |''[4] नलिनी मर्यादा को तोडने में ही आनंद मानती है | स्वतंत्रता एवं अधिकारों के नाम पर स्वैराचार को अपनाती हैं यही भुमंडलीकरण की देन है |

'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास मुंबई के सफेदपोशो और आपराधिक सरगनाओं के कच्चे चिठ्ठे खोलती हैं जो यहाँ के वातावरण को विषाक्त, अशांत एवं भयग्रस्त बनाने में लगे है | इस उपन्यास में बढते अपराध और महानगर की बदलती समस्याओं को उघाडा है| महानगरों में पूरुष-वैश्या की समस्या किस प्रकार अपने पैर पसार रहि हैं उसका चित्रण उपन्यास में किया गया है | विलासी मानसिकता,नशोखेरी, अपराधी वृत्ती एवं मुक्त यौनाचार ने मानव को ईतना नीच बना दिया है की वो पैसा कमाने के लिए अपने आप को भी बेच रहा है इस विक्षिप्त मानसिकता को 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में उघाडा गया है | ''एक दिन मिसेस दस्तूर जब अपने इंजीनियर मित्र दम्पति के यहाँ बोरीवली अपनी बेटी और उसके बच्चों का हाल - चाल लेने चली गई तभी कुमूद नामक एक महिला का फोन आया कि मिसेस दस्तूर के पास तिब्बती तेल है जिसे लगाने पर दर्द गायब हो जाता है क्या वह तेल की शीशी उसे मिल सकेगी ? नील तेल की शीशी लेकर कुमद के घर स्वयं जाता है | कुमूद अपने फ्लैट में अकेली थी | उसने नील को अपने शयनकक्ष में बुलाया और तेल मलने के लिए कहा | पहले तो नील हिचकिचाया लेकिन कुमूद के जोर देने पर वह तेल उसकी पीठ में मलने लगा | नील कुमूद के हाव - भाव से उत्तेजित होता गया | अंत में कुमूद निर्वसन हो गई और नील को अपने आगोश में लिपटा लिया | नील कुमुद की शारीरिक भूख को मिटाने में जुट गया | चहीं से नील के जीवन में

एक ऐसा बदलावा आया कि वह पुरुष - वेश्या बनने के लिए मजबूर हो गया | कुमुद के बाद ब्लॉसम, यास्मीन, कुतल, स्टेला, रंभा, कृष्ण, सौदामिनी, शिल्पा, करुणा, फ्रांसीसी, स्विस औरतें, कुंतल राव, वैशाली, उर्वशी, पारुल और नैन तक को वह शरीर सुख प्रदान कर अपनी कीमत वसूलता रहा "[5]

भूमंडलीकरण के कारण मनुष्य यंत्र सदृश्य संवेदनहिन बन गया हैं | अर्थ केंद्रीत व्यवस्था ने मनुष्य की सोंच और चरित्र को बौना बना दिया हैं | मनुष्य से अधिक महत्व भौतिक साधनों को दिया जा रहा हैं जिसे पाने की लालसा के कारण मानव मनोरुग्ण बन रहा हैं | सुबह से लेकर रात तक वह

पैसो के पीछे भाग रहा है | परिवार एवं सबध, रिश ते-नाते सबको भुलकर वह अंधी दौड का हिस्सा बन रहा है | अशांतता, असामंजस्य अब मानव की प्रवृत्ती बन गई है | महानगरों ने मानव को कठोर, भावहीन एवं खोखला बना दिया है |"महानगरों ने जीविका औरआवास की समस्या में उलझकर व्यक्ति स्वयं को ही भूल बैठा है | तकनीकी अर्थव्यवस्था एवं भीड की राजनिति ने मानवीय सम्बन्धों को मृतप्राय कर दिया हैं | नगरीय जीवन के तनाव एवं संघर्ष ने व्यक्ति को मानसिक रोगी बना दिया है |[6] भौतिक साधनों की चकाचोध के कारण कुंठा, संत्रास, निराशा, खोखलापन, अजनबीपन, अकेलापन, निर्ममता एवं असंवेदनशीलता को पनपने का मौका दिया हैं | भूमंडलीकरण से उपजी मानसिकताने मनुष्य को विकृत, विक्षिप्त एंव क्रुर भी बना दिया है | अर्थ क्रेदित मानसिकता को बढावा मिला हैं जिस कारण भौतिक साधन मानव से भी अधिका मुल्यवान बन गए है | मानवी मुल्यों को तोडने, मरोंडने और बदलनें का कार्य भी भूमंडलीकरण ने किया है | प्रेम, दया, समर्पण, सत्य, त्याग, बंधुता जैसे उदात्त मानवीय मुल्यों का स्थान स्वार्थ, ढोग, वासनांधता अमानवीयता, चरित्रहिनताऔर बाजारीकरण ने ली है | भूमंडलीकरण के दौर में मनुष्य की पतित और हिन बनने की प्रक्रिया निरंतर चल रही हैं |

संदर्भ :

1) अखिरी दाँव, भगवतीचरणवर्मा पृ. 126
2) कबुतरखाना - शैलेश / मटियानी - पृ. 131
3)किस्सा नर्मदाबेन गंगुबाई, शैलेश मटियानी- पृ 30
4) तलाश, महावीर अधिकारी पृ. 123
5) हिन्दी उपन्यासों में प्रति बिंबित महानगर डॉ. बरसाती जगबहादूर पृ. 89
6) समकालीन हिन्दी उपन्यास महानगरीय बोध सीमागूप्ता पृ.51

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा का परिवर्तित रुप

डॉ. सन्मुख नागनाथ मुच्छटे
सहाय्यक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग
बी. एस. एस. कला, विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, माकणी जिला उस्मानाबाद

'भूमंडलीकरण' शब्द अंग्रेजी के 'ग्लोबलाइजेशन' का हिंदी रुपांतर है । यह शब्द भारत की सभ्यता एवं संस्कृति 'वसुधैव कुटूम्बकम' पर आधारित है । अर्थात समूचा विश्व एक परिवार है । स्थूल रुप में भूमंडलीकरण विश्व स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया है, जो समय और स्थान की सीमाओं को तोडते हुए व्यक्तियों को अंतर पारस्पारिक संबंधों में बाँधती है । दूसरे शब्दों भूमंडलीकरण का अर्थ है - पूर्ण विश्व में रहनेवाले मानव को अपनी जाति, धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता के मर्यादा का उल्लंघन कर 'विश्वमानव' के रुप में विस्तार करना । कुछ विद्वानों ने 'भूमंडलीकरण' को विश्ववाद के रुप में भी देखने का प्रयास किया है । इस दृष्टि से यह एक राजनैतिक, सामाजिक चेतना है । भारतीय संस्कृति में प्रारंभ से ही 'वसुधैव' कुटूम्बकम' की संकल्पना का अत्याधिक महत्त्व रहा है । इसका उद्देश्य ही संपूर्ण विश्व को परिवार के रुप में देखना, समझना है । इसके मूल में संपूर्ण मानव जाति अपने आपसी भेदों को त्यागकर दूसरे के प्रति भाईचारे की भावना को रखना है । ताकि इससे संपूर्ण मनुष्य जाति विकास एवं उन्नति की ओर अग्रेसर हो जाए । आज संपूर्ण विश्व में वैज्ञानिक तथा सूचना के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, उसके फलस्वरुप विश्व एक ग्राम जैसा लगने लगा है । आज विश्व में रहनेवाली कोई भी जाति, धर्म, सभ्यता और संस्कृति दूसरों से अलग नहीं रह सकती । उनका दूसरे जाति, धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति से निकटतम संबंध स्थापित हो जाता है । विज्ञान के अलग-अलग क्षेत्रों में आये प्रगति के कारण पृथ्वी के किसी भी कोने में घटित घटना का परिणाम पृथ्वीतल पर स्थित दूसरे कोने के व्यक्ति, समाज, देश पर पडता है । 'भूमंडलीकरण' का दूसरा अर्थ हम मानवता के विस्तार के रुप में भी ले सकते हैं । विश्व में स्थित सभी मानव एक दूसरे से सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्तर पर एक होने की प्रक्रिया ही भूमंडलीकरण है । इस भूमंडलीकरण का प्रभाव हिंदी भाषा पर भी पडा है । इसके कारण हिंदी भाषा केवल राष्ट्रीय स्तर की भाषा न होकर आंतरराष्ट्रीय भाषा बन गई है । इसका सारा श्रेय भूमंडलीकरण को ही जाता है ।

हम भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा के परिवर्तित रुप को निम्न मुद्दों द्वारा समझ सकते हैं -

१) भूमंडलीकरण के कारण हिंदी भाषा ने आंतरराष्ट्रीय रुप को प्राप्त किया है । आज विश्व के अनेक विकसनशील देशों में हिंदी भाषा का अध्ययन और अध्यापन हो रहा है । विविध देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है ।

जैसे - अमरीका के ६८ विश्व विद्यालयों में
जर्मनी के १७ विश्वविद्यालयों में
रुस के ०७ विश्वविद्यालयों में
चीन के ०७ विश्वविद्यालयों में
पाकिस्तान आदि देशों में हिंदी पठन की व्यवस्था है।

इनके अलावा इटली, डेन्मार्क, नार्वे, स्विझर्लंड, हॉलंड, रोमानिया, बुलगेरिया, हंगेरी आदि राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान हो रहा है ।

२) भूमंडलीकरण के कारण हिंदी भाषा कामकाज, विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, विधि, चिकित्सा, संगणक, सॅल्यूटर, इंटरनेट, भ्रमणध्वनि, सॅटेलाइट, सूचना आदि क्षेत्रों में प्रमुख भाषा का रुप धारण की है ।

३) भूमंडलीकरण के कारण संगणक के क्षेत्र में हिंदी भाषा का प्रभाव दिन-ब-दिन वृध्दिगत् हो रहा है । इसके लिए अनेक सॉफ्टबेअर कंपनियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । जैसे - अक्षर, श्रीलिपि, देवबेस, अंकुर, गुरु, पी.सी.डास, प्रकाशक, मेंट, बैंक मित्र,
जिस्टकार्ड आदि सॉफ्टवेअर हिंदी भाषा के अनुकूल विकसित हुए हैं ।

४) भूमंडलीकरण के कारण संचार भाषा के रुप में हिंदी भाषा को प्रभावशाली माना जा रहा है । आज अनेक विज्ञापन हिंदी भाषा में प्रसारित हो रहे हैं । बाजार की स्पर्धा के कारण अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में अनुवाद हो रहा है । इसके अलावा अन्य भाषाओं में प्रसारित चैनलों ने भी इसी मार्ग का अनुकरण किया दृष्टिगोचर हो रहा है । इलेक्ट्रानिक मीडिया के सभी क्षेत्रों में हिंदी भाषा ने प्रवेश कर अपना प्रभाव जमा लिया है । आज टेलिव्हिजन, रेडियो, इंटरनेट, भ्रमणध्वनि सभीं पर हिंदी भाषा का प्रभाव देख सकते हैं । भ्रमणध्वनि पर के विविध ॲप हिंदी भाषा में हैं । अर्थात इन सबसे यह निश्चित हो जाता है कि, भूमंडलीकरण के कारण हिंदी भाषा का रुप दिनोंदिन प्रभावशाली हो रहा है और संचार भाषा के रुप में वैश्विक रुप धारण किया हुआ है ।

५) भूमंडलीकरण के कारण विश्व के समस्त मानव जाति को यह ज्ञात हुआ कि, हिंदी विश्व की सबसे सरल भाषा है । क्योंकि यह जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी जाती है । विश्व की अन्य भाषाओं जैसे - अंग्रेजी, जर्मनी, फ्रांसिसी, रुसी आदि भाषाओं में यह तत्व परिलक्षित नहीं होता । साथ ही एकरुपता की दृष्टि से भी हिंदी भाषा विश्व की अन्य भाषाओं से विशेष रुप से समृध्द रही है । फलस्वरुप वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा को सीखने, जानने की उत्सुकता लगी रहती है ।

६) भूमंडलीकरण के कारण वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा की प्रगति हो रही है । संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी भाषा को स्थान देने का प्रयास निरंतर जारी है । विश्व हिंदी संमेलनों के आयोजन आदि के द्वारा हम आज विश्व में हिंदी की स्थिति को जान सकते हैं । भारतीय मूल के हिंदीत्तर भाषा-भाषी लोग भी अपने बच्चों को हिंदी सिखाने का प्रबंध कर रहे हैं ।

७) भूमंडलीकरण के कारण हिंदी फिल्में, गीत, संगीत आदि ने वैश्विक स्तर पर अपना स्वतंत्र क्षेत्र बनाया है । इससे भारतीय सभ्यता, संस्कृति विश्व के कोने-कोने में पहुँच गई है ।

८) भूमंडलीकरण के कारण हिंदी साहित्य समूचे वैश्विक स्तर पर छा गया है । इसे समझने और जानने के लिए विदेशी लोग हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं ।

संक्षेप में भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में विश्व के अनेक देशों ने समय की मांग को ध्यान में रखकर हिंदी भाषा को अपना लिया है । फलस्वरुप हिंदी भाषा का महत्त्व और भी बढ गया है । मीडिया के कारण हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार वैश्विक स्तर पर तीव्र गति से हो रहा है । विज्ञापन और अनुवाद के क्षेत्र में हिंदी भाषा ने अपना झेंडा गाड दिया है । संचार भाषा के रुप में भी हिंदी भाषा ने नये स्वर अंकित किए हुए हैं । मीडिया के सभी क्षेत्रों में भी हिंदी भाषा ने अपने नये रुप के साथ उभरकर सामने आई है । इसी कारण हिंदी भाषा ने आंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रभाव छोड पाई है । भूमंडलीकरण के इस युग में अन्य भाषा-भाषी भी हिंदी में अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने में गौरव महसूस कर रहे हैं । यह सब भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा के परिवर्तित रुप का ही परिणाम है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१) डॉ. भोलानाथ तिवारी - हिंदी भाषा
२) सं. अभयकुमार दुबे - भारत का भूमंडलीकरण
३) डॉ. अंबादास देशमुख - भाषा विज्ञान अधुनातन आयाम
४) डॉ. शैलजा पाटील - वैश्विकता के संदर्भ में हिंदी
५) डॉ. माधव सोनटक्के - हिंदी के प्रयोजनमूलक भाषा रुप

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य- 'दौड' उपन्यास के विशेष संदर्भ में

प्रा.डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात
आदर्श कॉलेज, विटा (सांगली)

भूमंडलीकरण ने इक्कीसवी सदी में युवावर्ग के सामने नए ढंग से रोजगार और नौकरी के दरवाजे खोल दिए है। आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया है। वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया बाजारवाद और उपभोक्तावाद शुरू हुआ है। भारत में आजादी के बाद हमने विकास को महानगरों के साथ जोद दिया है। महानगरों में कारखाने, रोजगार आदि की उपलब्धता के कारण गांव का युवा वर्ग महानगरों की ओर आकर्षित हुआ है। इसका परिणाम महानगरों में रहने की असुविधा, झोपडपटट्रियों की संख्या में बाढ-सी नजर आती है। इससे शहरों का स्वास्थ बिगडता चला गया। साथ ही बेरोजगारी, गुंडागर्दी, वेश्यावृत्ति, शराब की आदत आदि समस्याएँ खडी हुई है। ''बाजारवाद या भूमंडलीकरण के चलते समृद्ध परिवार के युवा अपने परिवार एवं शहर से दूर अपनी नौकरी या कारोबार शुरू करते है। उनके सारे रिश्ते अर्थ (पैसा) पर टिके हुए नजर आते है। मॉ बाप से दूर ये बच्चे अपने जीवन को यांत्रिक अजनबी, तथा अकेलापन महसूस कर भावात्मक दूरियॉ अनुभव करते है।''[1]

ममता कालिया द्वारा लिखित 'दौड' उपन्यास वर्तमान मनुष्य का कथानक है जो बाजार के दबाव-समूह, आमक्रण और निर्गमता तथा अंधी दौड में नष्ट होते मनुष्य को उजागर करता है। यह उपन्यास मनुष्यों के आपसी संबंधों की परंपरा को उजागर करता है। प्रस्तुत उपन्यास में भूमंडलीकरण व्यावसायिकता, विज्ञान बाजी, उपभोक्तावाद आदि का मिश्रण चित्रित करने में ममता कालिया सफल हुई है। वर्तमान दौर में दौड उपन्यास ने नव धनाडय वर्ग की नई पीढी के चरित्र के माध्यम से हिंदी साहित्य में एक प्रतिमान कायम किया हैं।

ममता कालियाजी ने प्रस्तुत उपन्यास में महानगरीय मानसिकता का सक्षमता से चित्रण किया है। उपन्यास के लगभग सभी पात्र शिक्षित एवं रोजगार प्राप्त है। उपन्यास के पवन का भाई सघन उंची उडान भरने के लिए दिल्ली चला जाता है। उसके माता-पिता अकेले हो जाते है। उसके माता-पिता अच्छा जीवन सुख से बिताने के बजाय कल आनेवाली समस्याओं से भयभीत हो जाते है। इसप्रकार बच्चे जब पास रहते है तब कडवी बाते कहकर उनका दिल दुखाया जाता है और जब वे दूर चले जाते है तब उनकी चिंता करते रहते है। आधुनिक युवकों के बारे में लेखिका कहती है,''अनिवासी और प्रवासी केवल पर्यटक और पंछी नहीं होते बच्चे भी होते है। वे दौड-दौडकर दर्जी के यहॉ से अपने नए सिले कपडे लाते है, सूटकेस में अपना सामान और कागजात जमाते है। मनीबेल्ट में अपना पासपोर्ट, वीजा और चंद डॉलर रख रवाना हो जाते है अनजान देश, प्रदेश के सफर पर माता-पिता को सिर्फ स्टेशन पर हाथ हिलाते छोडकर।''[2] आधुनिक युवकों का यह वर्णन यथार्थ, मार्मिक और हृदयस्पर्शी लगता है। जीवन संघर्ष बच्चों के लिए सहज और चुनौतीपूर्ण है मगर वही माता-पिता के लिए बोझ बना हुआ है। बच्चों को बडा करने का सपना बनकर जीवनपर्यंत संघर्ष करनेवाले माता-पिता के दिल पर बच्चो का दूर जाना गहरा असर करता है। उनके बिना जिंदगी बिताना कठीन हो जाता है मगर वे बच्चों के भविष्य के लिए वे अकेलेपन को अपनाते है।

माता-पिता को लगता है कि अपने बच्चे जीनियस होने चाहिए और वे अपने पास भी रहने चाहिए यह वर्तमान दुनिया में मुश्किल लगता है। कॉलीनी के गुप्ता दम्पत्ति अपने अनुभव के आधार पर सच्चाई का कथन करते है तब रेखा और राकेश उसे मानते नहीं है। अपने बच्चों पर भरोसा होने के कारण उन्हें लगता है कि बच्चे कुछ नई बाते सीखकर अपने देश वापस आ जाए। लेकिन ऐसा होता नहीं हैं। विदेश जाकर बच्चे वहॉ के ऐशओआराम और पाश्चात्य संस्कृति अपनाते है और उसकी उन्हे आदत लग जाती है। उन्हें अपने देश, अपना शहर, अपना घर जेल की तरह लगता है। दोनो बच्चे नौकरी की वजह से दूर जाने के बाद रोकश और रेखा का अपना घर वनवास की तरह लगता है। '' रामायण की कथा में पिताजी बच्चे को वनवास भेजते है मगर आधुनिक काल में बच्चे विदेश जाते है और मॉ-पिताजी वनवास भुगतते है। कालचक्र को

उल्टा घुमाया जा रहा है।[3] बच्चो की अनुपस्थिति में राकेश और रेखा को घर भयावह लगता है। कॉलीनी में सभी लोगों की यही हालत थी। लेखिका ने इस कॉलीनी का नाम बुड्ढा-बुड्ढी कॉलीनी रख दिया है।

सर्दी-गर्मी की छुट्टीयों में इस कॉलीनी में जान-सी आ जाती है। नाती-पोतों की चहल-पहल दिखाई देती है। बच्चे विदेश से अपने माता-पिता के लिए सुविधाजनक यंत्र ओवन, कुकर, फ्रूट प्रोसेसर आदि चीजे लाकर देते है। मगर माता-पिता को बच्चों के अलावा ऐसी चीजों में खुशी नहीं मिलती। बच्चे विदेश जाने के बाद ये चीजे उनकी यादों को सताती है। रेखा अध्यापक का कार्य करती हुई कहानियाँ लिखती है। उनकी सोच इन महिलाओं से अलग हैं। उन्हें एक तरफ आधुनिकता और दूसरी तरफ घर का सूनापन सताता है। रेखा का मन बच्चों के बचपन को याद करता है। वात्सल्य और कर्म के बीच फँसी हुई माँ की प्रतिमा को लेखिका ने उजागर किया है। रेखा अपने बच्चों के बचपन के सुनहरे दिनों को याद करती है। पवन जब स्कूल जाने लगा तो माता-पिता को डर रहता था कि वह रोयेगा तो नहीं? पवन के बचपन की यादे मन में लाकर रेखा को दर्द होने लगता है। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय संस्कार से परिपूर्ण मध्यवर्गीय परिवार को चित्रित किया है।

इलाबाद शहर से पवन और सघन छुट्टियों में कभी कभी अपने माता-पिता से मिलने आते है। उन्हें अपने पुराने दोस्तों को मिलना पसंद नहीं है। पवन अपनी माँ को घर में अचानक आने से आश्यर्यचकित नहीं होता। उल्टा अपनी माँ को ही बिना इजाजत के आने से डाटता है। पिताजी की मृत्यु पर किसी को बेटा बनाकर दाहसंस्कार करवाने की सलाह देनेवाले बेटे पर बाजारवाद या भूमंडलीकरन का प्रभाव नजर आता है।

निष्कर्ष -

ममता कालिया द्वार लिखित दौड उपन्यास भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिकता का प्रतीक है आधुनिक युग की युवा पीढी उंचा वेतन पाने की लालसा में यांत्रिक बन गए है। वे करिअर और नौकरी को जीवन का अंतिम उद्येश्य माननेवाली युवा पीढी पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर भाग रही है। दो पीढियों के बीच वैचारिक और सांस्कृतिक संघर्ष तीव्रता से आधुनिक पीढीपर प्रभाव छोड रहा है। अतः दौड उपन्यास सही रूप में वर्तमान युग के भूमंडलीकरण से प्रभावित समाज का यथार्थ चित्रण करनेवाला सशक्त उपन्यास है।

संदर्भ -

1. राष्ट्रवाणी- सितंबर-अक्तुबर-2015
2. दौड- ममता कालिया
3. दौड में भूमंडलीकरण की सार्थकता का यथार्थ चित्रण- डॉ.विद्या शिंदे

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य (मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

प्रा. अशोक गोविंदराव उघडे
हिंदी विभाग
आदर्श महाविद्यालय, विटा, तहसिल-खानापूर,
जिला सांगली (महाराष्ट्र)

भूमंडलीकरण या वैश्विकरण आधुनिक युग का बुहत महत्वपूर्ण संकल्पना एवं विशेषता है। भूमंडलीकरण की व्याप्ति जानने से पहले भूमंडलीकरण का अर्थ जानना महत्वपूर्ण है। भूमंडलीकरण में भू का मतलब भूमी होता है और मंडलीकरण का अर्थ समाहित करना होता है। सही मायने में देखा जाए तो भूमंडलीकरण बीसवीं सदी के अंतिम दशक में इसका प्रारंभ देखने को मिलता है। भूमंडलीकरण के विषय के संदर्भ में सिर्फ आर्थिक परिस्थिती का ही विचार किया जाता है। लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिती भी बहुत महत्वपूर्ण है इसीकी ओर कोई विचार नहीं करता। भूमंडलीकरण से पुरा विश्व एक गाँव जैसा बन गया है और सांस्कृतिक विस्फोट हो गया है। विश्व में विचारों का आदानप्रदान से उसकी संस्कृति और सभ्यता हमें प्रभावित कर रही है। इसी वजह से नई संस्कृति का उदय हो रहा है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में नारी भी पढ़ लिखकर पुरूषों से बराबर का स्थान पा रही है। इक्कीसवीं सदी में नारी डॉक्टर, इंजिनियर, प्राध्यापक आदि बहुत सारे पदों पर कार्यरत है मतलब पुरूषों से बराबर का स्थान पा रही है। दूसरा सवाल यह भी है कि कम कपडे पहने शरीर को दिखाए यह नारी की मुक्ति है या भूमंडलीकरण युग की स्त्री है। हमारे देश में दिन-ब-दिन भारतीय संस्कृति लोप होती जा रही है।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में मन्नू भंडारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आधुनिक हिंदी लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, कौसल्या बैसंत्री, कृष्णा अग्नीहोत्री आदि लेखिकाओं का नाम बहुचर्चित रहा। मन्नू भंडारी के कथा लेखन में नारी जीवन से संबंधित विविध प्रश्न, समस्याएँ एवं एक साथ ही भोगे हुए यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ती पाई जाती है। भारतीय समाज में आधुनिक नारी का जीवन और उसकी मानसिकता का अध्ययन करना । स्त्री के जीवनशैली में आधुनिकता का अभिशाप किस प्रकार प्रभाव करता है। इसका अध्ययन करना इस उपन्यास का प्रमुख उद्देश है।

मन्नू भंडारी का बहुचर्चित उपन्यास 'आपका बंटी' १९७९ में लिखा गया । इस उपन्यास में शकुन नाम की उच्च शिक्षित नारी की मनोव्यथा का चित्रण किया है। इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने नकली आधुनिकता से युक्त आज के महानगरीय के एक पहलू तीखी वास्तविकता का बोध कराया है। 'आपका बंटी' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें लेखिका ने विशेष परिस्थिती में पडे एक बच्चे की मानसिकता का चित्रण समाज के सामने प्रस्तुत किया है। शकुन याने बंटी की माँ एक कॉलेज की प्रिन्सीपल है। इसके पती का नाम अजय है। दोनों भी उच्चशिक्षित होने के बावजूद भी शकुन तलाक शुदा नारी है। बंटी तलाक शुदा दंपति का बेटा है। तलाक होने का प्रमुख कारण शकुन कॉलेज में प्रिंसिपल होने के नाते उसे अपने पद पर गर्व होता है। इसीलिए उच्चशिक्षित और महानगरीय सभ्यता की शकुन अजय के साथ नहीं रह सकती तब तलाक का निर्णय दोनों लेते हैं। बंटी अपने माँ-बाप के बारे में सोचता है कि क्या इतने बडे-बडे लोग भी आपस में लडतें हैं और क्या मम्मी को पापा की याद नहीं आती।

कानुनी तौर पर तलाक के कागजात पर शकुन की दस्तखत लेने के लिए वकील स्वयं उसके घर आते हैं। उन्हे भी कुछ समझ में नहीं आ रहे है बावजूद भी वह शकुन से तलाक न लेने के बारें में कहते हैं। तलाक होने के बाद अजय और शकुन एक दूसरे को अपमानित करते है या एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। ऐसे व्यवहार से दोनों में और दरार पड जाती है उस दरार को बंटी भी कुछ नहीं कर सका। सात बरस विभागाध्यक्ष होने पर भी अपना करियर करने के बजाय अजय को हर बात

में गिराना उसे अच्छा लगता है। उनकी शादी होकर तकरीबन दस बरस हो गए है। सच पुछा जाए तो शकुन को अजय के पास न रहने का दुःख नहीं है तो अजय की जिंदगी में कभी खुशी से नहीं रहना चाहिए यह चुभन उसे दिन रात सताती है। इसी लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। परिणाम यह है कि उसे भी मानसिक यातनाओं को भोगना पडता है।

डॉ.दिलीप मेहरा कहते है, 'आपका बंटी' की शकुन अजय की अहं से त्रस्त होकर उससे तलाक तो लेती है परंतु अजय को नीचा दिखाने के लिए डॉ.जोशी के साथ शादी कर लेती है। शकुन यहाँ पर विवाह सुत्र में नहीं तो सही मायने में पुरूष सुत्र में बँध जाती है। शकुन इस बार वैवाहिक असफलता से बचने के लिए अपना पति डॉ. जोशी से कदम-कदम पर समझौता कर लेती है।

मन्नू भंडारी जी ने अधिकार भावना से थोपे अहर्ताद में पीडित मध्यमवर्गीय बुद्धीजीवी पती-पत्नी के खोखलेपन को व्यक्त करने का प्रयास किया है।

पती-पत्नी के बीच बहते तणाव से बंटी की मानसिकता पर इसका गहरा प्रभाव पडता है। परिस्थितियों की वजह उसका व्यवहार विक्षिप्त बन जाता है। माता-पिता की तलाक से जब उसके मित्र उसका मजाक उडाते है तो उसके मन में हीनभावना ग्रस्त हो उठती है। बंटी को वह बच्चे अच्छे लगते है जो अपने माँ बाप के पास है।

पुत्र बंटी शकुन और अजय के बीच सेतु था तलाक होने के बाद उसका भार ना शकुन उठा पा रही है या न अजय। यह अनजाने में न चाहते हुए भी समस्या बन जाता है। लेकीन इस विषय में बालक बंटी का क्या कसूर है।

मीरा के साथ अजय की नई जिंदगी की शुरवात को सूनकर शकुन के मानसिकता पर गहरा प्रभाव पडता है। उसे इस बात का दुःख है कि मैं अजय को पराजित नहीं कर सकी। बंटी अपनी मम्मी से इतना जुडा हुआ है कि वह अपने पापा को भी भूलाने के लिए तैयार है किन्तु दूसरा कोई व्यक्ती पापा बनकर आए यह उसे स्वीकार नहीं है। शंतनू के जीवन में डॉ. जोशी का प्रवेश बंटी स्वीकार नहीं कर पाता । डॉ. जोशी उसे बाधक के रूप में नजर आते हैं। अपने माँ के प्यार में बंटी अपना अधिकार चाहता है। बंटी अपनी माँ शकुन में प्रिन्सिपल मम्मी नहीं बल्कि घरवाली मम्मी चाहता है जो उसे दिल से प्यार करें।

इस प्रकार धीरे-धीरे बंटी मनोवैज्ञानिक केस बन जाता है। मम्मी के जीवन में जोशी के आने से वह मम्मी पर भडक उठना, आदेश के लहजे में बोलना ऐसी हरकतों से उसमें घुटन दिखाई देने लगती है। डॉ. जोशी के घर में तो वह जरा भी एडजस्ट नहीं कर पाता अब स्कुल की पढाई में भीं बंटी का मन नहीं लगता । उसने महसूस किया है। माँ का डॉक्टर जोशी से अपनत्व बढ गया है तब मम्मी से अब मेरा अधिकार भी जा रहा है। वह अपने पिता पर भी बहुत प्यार करता है। इसीलिए उन्हे चुपके से खत लिखता रहता है।

अंत में बंटी अपने पापा अजय के पास कोलकता जाने की जिद करता है और शकुन भी जान जाती है कि इतने तनाव मे रहना है तो अच्छा यह है कि वह अपने पापा के पास रहे। अजय बंटी को लेने के लिए आता है। तभी बंटी को लगता है कि मम्मी मुझे जाने से मना करे या रोक ले।

पिता के साथ कोलकता जानेपर बंटी का परिचय अजय की पत्नी-उसकी नई माँ और उसका बेटा चिनु से होता है। वहाँपर भी उसका मन नहीं लगता । वह स्वयं को अकेला महसुस करता है। तो अंत में अजय बंटी कीी होस्टल में भेजने की व्यवस्था कर देता है।

आज उच्चशिक्षित नारी पुरूष को पती के रूप में नहीं बल्की एक मित्र के रूप में अपनाना चाहती है। शकुन पछतावा कर रही है वह अपने ही मन को कोस रही है कि वह अपने साथ न्याय नहीं कर पा रही है। शकुन अचानक रो पडी यह आवेग कई दिनों का था जो आज आँखो में से निकल रहा है। शकुन को लगता है जैसे वह एकदम खाली और खोखली हो गई है। एक अजीब सा खोखलापन महसूस करती है। इतना ही नहीं तो वह कुंठाग्रस्त जीना जी रही है।

अहं और गुस्से से भरे शकुन ने लाई हुई चीजों को बिना देखे, बिना छुए एक ओर सरका देने उमडते आसूओं को भीतर ही रोककर सुखी आँखो से गाडी में बैठकर विदा होने की व्यथा बंटी से ज्यादा शकुन की अपनी व्यथा है। ऐसी व्यथा को कोई भी बाँट नहीं सकता।

शकुन को डॉ.जोशी के सामने छोटा बनकर जीना उसे मंजूर नहीं है। बडा होकर जीने में लायक अब उसके पास इतने सारे पैसे नहीं है। ऐसा लगता है कि डॉक्टर जोशी ने उसके साथ शादी करके बडी कृपा की है। एक अजीब सी यातनाओं को लेकर वह गुजरती है। वह पुरूष

से अलग रहकर स्वतंत्र भी नहीं रह पाती। उसने सिर्फ अजय को दिखाने के लिए यह शादी की थी अगर अजय शादी कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकती। वह बहुत पछताती है अब हर जगह उसे अजय ही दिखाई देने लगा। संपूर्ण वात्सल्य और ममता बंटी पर न्योछावार करके उसने इस विवाद की कालीमा को पोछना चाहा। लेकिन उसकी विवशता यह है कि वह अजय को चाहकर भी भूल नहीं पाती। बंटी में भी उसे अजय का ही चेहरा दिखाई देता है। वह सोचती है कि बंटी के बहाने वह अजय को पाने में समर्थ हो जायेगी परंतु विडंबना यह है कि बंटी उनके बीच का सेतू नहीं बन सका। पुरा उपन्यास पढने के बाद यह पता चलता है कि यह शकुन की व्यथा न होकर स्वयं मन्नू भंडारीजी की व्यथा है। वह कहती है - औरत कितनी ही बडी हो जाए फिर भी पुरूष का साथ उसके लिए जरूरी है पर उसका साथ सही अर्थों में होना चाहिए ।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'आपका बंटी' इस उपन्यास में शकुन जैसी आधुनिक उच्चशिक्षित नारी होने के बावजूद भी सुख चैन को प्राप्त नहीं कर सकी। वह दुविधा की स्थिति में पड जाती है। दुविधा की इस स्थिति ही भूमंडलीकरण की देन है। अहं की टकराहट और अनिश्चयात्मता की स्थिति में फँस जाती है। शकुन और अजय के माध्यम से इस भूमंडलीकरण के दौर में मानवीय मुल्य कैसे बदलते हैं। यह बताने का प्रयास मन्नू भंडारी ने किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) आपका बंटी - मन्नू भंडारी
२) हिंदी उपन्यास नये आयाम- डॉ. दिलीप मेहरा
३) मन्नू भंडारी की कथा यात्रा- डॉ.किशोर सिंह राव/ डॉ. मीरा ए. सक्सेना
४) आधुनिक हिंदी उपन्यास - डॉ. निर्मला जैन

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

सुनीता जैन के कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण

प्रा. डॉ. शेख मुखत्यार शेख वहाब
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
कला महाविद्यालय, बिडकीन
तह. पैठण, जि. औरंगाबाद.

पाश्चात्य उपभोक्तावादी जीवन दर्शन ने भारतीयों के सुख की व्याख्या बदल दी। इस प्रदर्शन का प्रभाव युवा वर्ग पर विशेष रुपसे पडा। युवा पीढ़ी स्वच्छंद जीवन का राग अलापने लगी। शिक्षा के विभिन्न चार दीवरों से बाहर निकली लडकी-लडाकों के साथ क्लब-पार्टियों में रोमांस करने लगी। आज खुली अर्थनीति के कारण लोग परंपरागत खान-पान की जगह पेप्सी, कोक, बिअर और ब्रेड एवं केक ले रहे हैं। तो भारतीय कलात्मक फिल्मों की जगह व्यावसायिक फिल्मों ने लेली है। मनुष्य के धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोन में भी परिवर्तन आया है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रुप में पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित दिखाई दे रहा है। इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह कहते है-''वैश्वीकरण की प्रक्रिया में पश्चिम के जो आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव हम पर पडे, वे मुख्यतः अमेरिकी प्रभाव ही है। वस्तुतः भूमंडलीकरण पुरी दुनिया, भूमंडल (ग्लोब) का अमेरीकीकरण ही है। हिंदी के सभी सजग उपन्यासकारों ने किसी-किसी रुप में, कभी विस्तार में जाकर तो कभी यथा अवसर कथा के क्रम में संक्षेप में भारत और भारतीयों के इस अमेरीकीकरण पर विभिनन रुपों में चिंता प्रकट कर अपना रचनात्मक आक्रोश प्रकट किया है।'' (भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास-पुष्पपाल सिंह पृ.सं. १४१) हिंदी उपन्यास में यह ज्वलंत समस्या किस रुप में अभिव्यक्त हुई है। इस सुनीता जैन के कहानियों के माध्यम से अध्ययन समीचीन होगा ।

भारतीय समाज में पाश्चात्य सभ्यता का बढ़ता अंधानुकरण एक समस्या बन गई है। लोग अपने रीति रिवाज, वेशभूषा, चाल-चलन को भूलकर उसकी जगह विचित्र व्यंजन मदिरापान मादक पदार्थों का सेवन वेशभूषा और मेकअप का अंधानुकरण कर रहे हैं। भौतिक उन्नति ही मनुष्य के लिए सब कुछ बन रही है। बढ़ती प्रदर्शन प्रियता के कारण भौतिक संसाधनों को जुटाने का काम मनुष्य कर रहा है। पुराने रीति-रिवाज त्यौंहारों के मनाने के तौर तरीकों में भी परिवर्तन आ रहा है। शादी ब्याह के शुभ अवसरपर मिठाईयों के स्थान पर लोग शराब की दावत दे रहे हैं। नैतिकता और चरित्र आज धुंधले हो रहे हैं। सुख की व्याख्या बदलकर उपभोग कोही सुख माना जा रहा है। परिणाम स्वरुप भारतीय संस्कृति की छाया ही परिवर्तित हो रही है।

'क्लियोपेट्रा वह' काहनी में पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण का प्रभाव अंकन रेणुके माध्यम से हुआ है। वह पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करनेवाली भारतीय नारी थी। उसका स्थान भारतीय समाज में वेश्या के समान है। मीना भारद्वाज मिसेस जैन को कहते है कि -''आप उसे जानती जो नहीं। वह रेणु पुरी फाहशा है। जानती हो जहाँ यह काम करते थे । बंगलौर की लैब में वहाँ वह अकेली लड़की लड़कों के हॉस्टेल में रहती थी। एक किसी को साथ रख-रखा था। कहती थी मेरा भाई । पीछे लडकों ने खोदकर कर निकाला उसका नाम गुप्ता था। गुप्ता मलिक भाई बहन ....।(अबतक कहानी (सुनीता जैन)- सं.डॉ. कृष्णदेव शर्मा, पृ.सं. ८४)

'द्विधा' कहनी के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण को चित्रित किया गया है। सुधा का भैया अमरीका में लेक्चरर है और वहाँ के कॉलेज में पढ़ाने का कार्य करता है। इसी कहानी के माध्यम से उन्होंने अमरीका के छात्र किस तरह कॉलेज में बैठते हैं। इसका सुंदर अंकन किया है। वे (सुधा के भैया) कहते है ''यहाँ विद्यार्थी भी खूब हैं। लडके पैर मेज पर रख जूते मेरी और कर बैठते हैं, लडकियाँ बिना रुके धुम्रपान करती हैं। चॉकलेट च्युइंगम खाती रहती है। बैठने का ढंग बड़ा असभ्य लगता है, पर अब आदी हो चला हूँ। क्लास में प्रवेश करने पर ये लोग खड़े नहीं होते और क्लास से जाने परभी नहीं। इसका भी अभ्यस्त हो गया हूँ ।'' (वही पृ.सं. ६२) इस तरह इस कहानी में पाश्चात्य सभ्यता का वर्णन आया हुआ है।

'भरोसा' कहानी के माध्यम पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण बताया गया है। यतीन एक दिन अपने प्रमोशन की खुशी में इंडिया गेट पर पार्टी देता है। इस पार्टी में यतीन के ऑफीस में काम करनेवाली पाँच-छः लड़कियाँ आती है। सभी के लिबासचुस्त थे बाल सलीके से कटे या गुंथे थे। सभी में एक खास किस्म का आत्मविश्वास था। आशा उनके सामने थोडा अलसा गई थी। सबके जाने के बाद सामान समेंटती बोली थी-''ये सब कितनी स्मार्ट है,है न?" (वही पृ.सं. १०६) यतीन कहता है ''हॉ बहुत स्मार्ट हैं। बनोगी ऐसी ? वह थी न नीली साड़ी वाली बत्रा? उसका इस साल तीसरा लव अफेअर शुरु हुआ है और वह थी ना घोष? वह बॉस की 'खास' है, और वह गोरी-सी भसीन उसके दो-दो एबार्शन हो चुके हैं। शादी आभी नहीं हुई ....।"(वही, पृ.सं. ११८) यह सभी महिलाएँ भारतीय होने के बावजुद भी उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण किया है।

'सिनिकल सुबोध' कहानी में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण दर्शाया गया है। सुबोध की जर्मन भाषा की परीक्षा है। इसलिए वह बिना कार के पैदल युनिवर्सिटी चला गया है। रातभर बर्फ अंधड चलता रहा। उसकी कार रात भर बाहर खुले में खड़ी रह कर जमगई। सुबह नहीं चल रही थी। युनिवर्सिटी के पिछवाडे वृक्षों के नीचे छोटे रास्ते से होता वह बिल्डींग तक पहुँच गया। बिल्डींग के सामने वाले'पार्किंग लॉट' में आज अधिक कारें नहीं थी। ''उधर की लाल कार में प्रगाढ आलिंगन में बँधे दो शरीर सुबोध की आँखों में गड़ गए। साँस भीतर अटक गई। क्षण के सूक्ष्म भाग के लिए एक भूरा सिर जुदा है दाएँ से बाएँ को ढुलक गया कि अब जुदा नहीं होगा। गर्दन के गिर्द दो गोरी बाँहों का घेरा धूप में दीप्त हो उठा या दो शरीर .... बेचैन आलिंगन ..... ।" (वही, पृ.सं. १३७–१३८) कार में के दोनों ने पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता का अंधानुकरण कर रहें है।

'इतने बरसों बाद' कहानी में पाश्चात्य सभ्यता की झलक दिखाई देती है। इसमें प्रो. जॉर्ज, प्रो.बॉब दोनों के परिवार पाश्चात्य संस्कृति में पले हुए है। प्रो. जॉर्ज, प्रो. बॉब और एक महिला प्रोफेसर एक ही कॉलेज में पढ़ाते हैं। बॉब की पत्नी उसी कॉलेज में प्रोफेसर है। बॉब महिला प्रोफेसर की साड़ियों पर पहनावे पर कई काम्पलीमेंण्ट दे चुके थे। महिला प्रोफेसर कहती है, '' बहुत खुश है आज?''''इस लिबा में तुम्हें देखकर खुश न हों ? आखिर तो इटालियन खून है मेरा। दो पुश्त से अमरीका में रह रहे हैं तो क्या।" (वही, पृ.सं. १६२)

'मंगलसूत्र' कहानी में इस बात का बहुत अच्छा चित्रण डेरा के माध्यम से हुआ है। डेरा पहले एलफ्रेड सेप्यार करती है। एलफ्रेड सबसे खुबसूरत धनी लडका था। उसने एक प्रेमिका के गर्व से उसें स्वयं को सौंपा । बाद में एलफ्रेड बदला वह उसकी मुहब्बत से थक गया । वह नवीनता चाहता था। एलफ्रेड उसे छोड़ चला गया । तभी बॉब से परिचय हुआ। बॉब एलफ्रेड का दोस्त था और उसे उसकी आसक्ति थी। बाद में दोनों ने कंट्रेक्ट विवाह किया। बॉब को बच्चे पसंत नहीं थे। इस कारण दोनों का सम्बध विच्छेद हो गया । यह सभी बातें वह संतोष को बता रही है। संतोष डेरा से पुछती है।''अब क्या करना है? क्या जार्ज ....।"

''नहीं वह मात्र मित्र है। वैसे सम्भावनाएँ तोरहती ही है। एक ही स्कूल में हम दोनों पढ़ाते हैं। बहुत थकी हुई थी इसी से छुट्टियाँ बिताने 'लांग आईलैंण्ड' आए थे। तुम.. .तुम कैसी रही ?" (वही, पृ.सं. १८८) इस तरह पाश्चात्य सभ्यता में कंट्रेक्ट विवाह, सम्बध विच्छेद या आदि का चित्रण किया गया है।

'राम बचाए हिन्दुस्थानी' कहानी के माध्यम से पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। चिरंजीव 'विद्यार्थी उद्योगमना' के लिए अमरीका जा रहा था, तो बहुत से लोगों ने बहुत से उपदेश दिए। माँ ने कहा बेटा, ठंड से बचना, पिता बोले भैया शराब-उराब नचखाना, भैया ने सुझाया सड़कों पर लूट-खसोट रहती है, रात में अधिक अकेलेन घूमना, दीदी बोली देख चावल आलू उबालकर खालियो पर मीट-वीट मत शुरु करना, चाचा बोले 'फुल बुट' अवश्य खरीदना मौसी के एक मफलर बुना दिया था। दोस्तों ने कहा यार बड़ी चालबाज होती है, गोरी छोकरियों से संभलकर रहना। विद्यार्थी जी सबकी सुनते और गाँठ बाँधते चलते। विद्यार्थी चौदा दिन के सफर के बाद अमरीका गया ।सोचा था-''गोरों के देश चेल, यहाँ बात ही और है, जिधर देखो काले ही काले। पोर्टर काले, चेकन काले, टॅक्सी ड्रायव्हर काले। सड़कों पर लोग अधिकतर काले यानी अमरीका और अफ्रीका में अन्तर 'म' व 'फ' का ही रह गया।"(वही, पृ.सं. २०२)

महानगरीय लोगों की बढ़ती भोग-लिप्सा बेशुमार पैसा खाली वक्त और पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित युवा पीढ़ी आदि कारणों से क्लब संस्कृति का उदय हुआ है। पुरुष फाईव्हस्टार होटलों या क्लबों में जाकर नारी का नग्न नृत्य देखकर अपनी कामपिपासा तृप्त करते हैं। तो इस क्षेत्र में लड़कियाँ भी पीछे नहीं है। लड़कों के साथ शराब पीकर अर्धनग्न अवस्था मे नृत्यकर साथ निभाती रहती हैं। इस अपसंस्कृति के बारे में आशारानी व्होरा का मत सार्थ है-''इधर घरों में मम्मी पापा अपने क्लब जीवन के स्त्री-पुरुष मित्रों के बीच मस्त व्यस्त है, उधर उनके युवा बेटे-बेटियाँ न केवल यहाँ वहाँ प्रेम? का खेल खेलने में मशगुल है, घरों के भीतर भी वासना का घृणित खेल खेलकर निकट रिश्तों, खुन के रिश्तों तक की गरिमा भंग करते रहे हैं।'' (वही, पृ.सं. २१३) सर्वत्र मुक्त यौनाचार बढ़ रहा है। परिणामस्वरुप यह सभ्यता पनप रही है।

'बाट'कहानी के माध्यम से क्लब सभ्यता और संस्कृति का चित्रण दिखाया गया है। गुणमालासरला की सास है। गुणमाला को तेज बुखार है क्या? सरला ने अपनी बेटी शीलू को थर्मामीटर लाने को कहा। शीलू खेल रही थी, वह खेलना छोड़कर नहीं आई, ना सरला आयी। सरला आधुनिक विचार वाली पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नारी है। वह सास को तेज बुखार होने के बाद भी पडोसवाले घर में ताश खेलने गयी है। वह सास के लिए थाली से ढक खाना रख गयी थी। रसोई में ठण्डा खाना देख गुणमाला का कलेजा मुँह में भर आया। ''ऐसे खाने हो गये सासुओं के जी ..... ऐसे बहुओं के खिलाने'' (वही, पृ.सं. ५४) इस तरह दुर्व्यवहार सरला के साथ करती है।

दुरदर्शन ज्ञान मनोरंजन के क्षेत्र में कार्य करनेवाला अद्भूत संचार माध्यम रहा है। परंतु आज वह सभी नीति मूल्यों को नष्ट करने का काम कर रहा है। अश्लील गाने, फिल्म और विज्ञापन परिवार का वातावरण दुषित कर रहे हैं। पढ़ाई छोड़कर बच्चे टी.व्ही. के सामने घंटों बैठे रहते हैं। टी.व्ही. के कारण परंपरागत दिनचर्या और संस्कार तो इतिहास ही बन चुके हैं। आज दुरदर्शन ज्ञान देने और मूल्य संवर्धित करने की अपेक्षा संस्कृति विघटन का काम अधिक कर रहा है। टी.व्ही. पर दिखाए जाने वाले अश्लील दृश्य परिवार के साथ बैठकर देखना बहुत ही कठिण होता। इस समय बड़ो को या तो आँखें चुरानी पडती हैं। या वहाँ से दूर जाना पड़ता है। इन प्रसंगों को खुलकर दिखाने की अपेक्षा संकेतों सेभी दर्शाया जा सकता है। आज टी.व्ही. शिक्षा और नैतिक मूंल्यों का प्रसार करने की अपेक्षा विकृति उत्पन्न करने का साधन बन रही है।

भारतीय मनुष्य कभी उच्च शिक्षा के उद्देश से कभी अच्छी नौकरी के उद्देश्य से तो कभी अपनी उच्च महत्वकांक्षाओं की पुर्ति हेतु विदेश जा रहा है। विदेश में जाने पर लौटने की तीव्र इच्छा होकर भी वह लौट नहीं पाता। भौतिक आकर्षण, बड़ी नौकरी, विदेशी जीवन साथी, वापस लौटने पर योग्यतानुरुप नौकरी मिलने का अभाव आदि कारणों से वह साशंक बनता है। माँ-बाप विदेश में नहीं रहना चाहते हैं और बेटा उनके प्यार से वंचित नहीं होना चाहता है ना ही विदेश से लौटना चाहता है। परिणाम स्वरुप वह स्वदेश विदेश के चक्रव्युव्ह में फँस जाता है।

'कमाई' कहानी में आशा अवध के साथ शादी होने के बाद भारत छोड़ अमरीका जाती है। अमरीका जाते समय वह अपने घरों से बाहर किसी अच्छी, किसी बड़ी दुनिया का जीव खुद को मानने लगी थी।परसों एक साथ में काम करनेवाली पूछ बैठी-''अरे यह नाक में क्या पहना है?'' बात अनसुनी कर वह खिसग गई थी। जानती थी कि साथिन पूछेगी तुम कहाँ की हो और उसे कहते हुए लाज लगती है, कि वह 'इंडिया की है'। (हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी–डॉ.रेखा कुलकर्णी, पृ.सं. ३६) आशा को भारतीय कहते हुए शर्म मालुम होती है।

''पाँच दिन'' कहानी में ललित के द्वारा विदेशी चक्रव्यूह में फँसे भारतीय मनुष्य का मनोहारी चित्रण किया गया है।भारत छोड़ ललित पढ़ने के लिए अमेरीका चला जाता है। ललित ने नौवर्ष पहले जब लिखा थाकी उसे एक लड़की पसन्द आई है और वह अमरीका में उससे विवाह करेगा। ललित ने अमरीका जाते वक्त कहा था कि-''नहीं माँ मैं विदेश में नहीं बसूँगा औरों की तरह । मैं तो पढ़ाई समाप्त होते ही सीधा दिल्ली आउँगा ।''(अब तक कहानी (सुनीता जैन)-सं. कृष्णदेव शर्मा, पृ.सं. २६६) इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है। उसने अमरीका जाते समय कुर्ते-पायजमा में यहाँतक एक गांधी टोपी भी अपने सामान में रखी थी। लेकिन विदेशी सभ्यता के प्रभाव से वह इन सब बातों को भूल जाता है। वह अमरीका में प्रज्ञा के साथ विवाह करता है। ललित ने एकांत में बैठे, माँ को कहा था-''माँ प्रज्ञा अमरीका में पली है। बहुत 'अमेरिक्नाईज्ड' है उससे किसी

भारतीय तौर तरीके की अपेक्षा नहीं करना।'' (वही, पृ.सं. २२३) इस तरह वह पत्नी प्रज्ञा के सामने घुँटने टेकता है।

'किमत' कहानी में विदेशी चक्रव्युह में फँसे नीला का मार्मिक अंकन हुआ है। नीला विवाह होने के बाद अमरीका जाने के लिए उत्सुक थी। नीला और मनोज दोनों पत्नी-पति न्युयार्क के प्रिन्सटन नामक छोटे से शहर में रहते थे। मनोज कम्पनी में था। नीला बच्चे होने तक भारत नहीं जाती। बाद में उसमें उदासी आजाती है। ''जब वह नई -नई आई थी तो जैसे खो गई थी न्यूयार्क के 'फिफ्थ एवन्यू' पर कितना बड़ा था न्यूयार्क। कितनी बड़ी-बड़ी दुकाने थी वहाँ। तब तक पिन्टू का भी बन्धन नहीं था। नीला घंटों अपने होटल से आकर 'डिपार्टमेंट स्टोर' में घुमती रहती। जब तक उसके पैर दुख नहीं जाते उसकी जाने की इच्छा नहीं होती। आलू प्याज से लेकर मोटर कार तक बिकती थी। उस एक दुकान में लेकिन अब तो कुछ भी क्रय करने की उसकी इच्छा नहीं होती। उसके सन्दुक उपर तक कपड़ों से अटे पड़े है। बिजली की कोई ऐसी चीज नहीं जो उसके पास न हो और फिर लेकर कैसे जाएगी । इतना सब सामान ।''(वही, पृ.सं. २३६.२४०)

बड़ी-बड़ी महत्वकांक्षाएँ मन में रखकर युवा पीढ़ी विदेश में उच्च-शिक्षा, नौकरी और पैसा कमाने के उद्देश्य से जाती है और वहीं की हो बैठती है। माता-पिता भी विदेश में स्थित बेटे का मोह नहीं छोड़ पाते है। नहीं वे विदेश में रह पाते हैं। दोनों भी इस चक्रव्यहयू में फँस चुके हैं, बाहर निकलना मुश्किल है। आज पाश्चात्य सभ्यता के पीछ भागती नई पीढ़ी अच्छाई-बुराई का ध्यान न रखते हुए अंधानुकरण कर रही उनके अच्छे विचारों का अनुकरण होने की आवश्यकता है। जब कि हम उनकी वेशभूषा और भोगवादी सभ्यता और संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं।

भूमंडलीकरण और हिंदी भाषा

प्रा. डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर
हिंदी विभाग
महिला महाविद्यालय, गेवराई
ता.गेवराई जिला बीड महाराष्ट्र

आज का युग भूंमडलीकरण अर्थात ग्लोबलायझेशन का युग है। इस प्रक्रिया से संपूर्ण विश्व एक परिवार के रूप में निकट आ रहा है। जिसके चलते ही विश्व एक ग्लोबल विलेज याने भूंमडली गांव बन गया है। भूंमडलीकरण से तात्पर्य विश्व बाजारवाद है। भूंमडलीकरण के दौर में भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत विश्व का सबसे बडा बाजार है और इस बाजार की माध्यम भाषा है हिंदी। भूंमडलीकरण के इस नाटकीय दौर में जहॉ तक हिंदी भाषा के प्रयोग का सवाल है, यदि हिंदी सॉफ्टवेअर पूर्ण रूप से विकसित हुआ तो नि:संदेह हिंदी संसार की सबसे लोकप्रीय और प्रचलित भाषा बन जायेगी।

भूंमडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा को कुछ मात्रा में लाभ हुआ हैं तो कुछ मात्रा में हानी भी हो रही है। भूंमडलीकरण दौर में हिंदी भाषा को लाभ यह हुआ हैं कि हिंदी भाषा का शब्द समुह बढ गया अर्थात हिंदी की शब्द संख्या में बढोत्तरी हुई है, तो संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास हो रहा है, हिंदी भाषा को एक अलग स्थान मिला है, भूंमडलीकरण ने हिंदी भाषा को कई नये आयाम दिए है। भूंमडलीकरण के वजह से हिंदी भाषा की जो हानी हो रही है वह यह है कि विज्ञापनों में हिंदी भाषा का व्याकरणिक ढांचा बिगड रहा है। हिंदी भाषा को लाभ के सिंध्दात तक ही सिमित रखा जा रहा हैं। ऐसा यदि होगा तो आनेवाले दिनों में हिंदी भाषा केवल एक बोली भाषा बन जाएगी इस का डर है क्योंकि लिपि के लिए अॅग्रेजी भाषा का ही प्रयोग किया जा रहा है। इस तरह भूंमडलीकरण के दौर में हिंदी का कुछ विकासोन्मुख तो कुछ मात्रा में –हासोन्मुख ब्यौरा हम इस प्रकार से दे सकते है।

आज भारत एक बहुत बडे बाजार के रूप में उभरकर आया है। यहॉ उपभोगताओं की संख्या बहुत है। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की अनिवार्यता को महसुस कर रही है क्योंकि यहॉ के ७० करोड से भी अधिक उपभोगता हिंदी समझते है और बोलते है। इस संदर्भ में राधाकृष्ण जी का कथन दृष्टव्य है– '' हिंदी विश्व में तीन सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं में परिगणित है सौ करोड लोग हिंदी बोलते और समझते है। आज चीनी और अॅग्रेजी के समकक्ष हिंदी खडी है।'' हिंदी दुनिया की सबसे सरल भाषा है इसका मुख्य कारण यह है किवह जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती हैं। इसीलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विज्ञापन के लिए हिंदी भाषा को चुना है। यही कारण है कि भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में उभरकर आयी है। परंतु हमें यह ध्यान में रखना होगा कि विज्ञापनों व्दारा प्रयुक्त हिंदी भाषा में व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन न करे किंतु आजा तो ठिक इसके विपरित दिन–ब–दिन हिंदी विज्ञापनों में व्याकरणिक ढांचा बिगडता जा रहा है।

सूचना प्रोद्योगिक के वर्तमान दौर में हिंदी का दबदबा बढते जा रहा है हाल ही में मायक्रोसॉफ्ट ने अपने एम.एस. ऑफिस नामक लोकप्रिय पॅकेज का हिंदी रूपांतर बाजार में उतारा है सबसे बडी बेस कंपनी और कल हिंदी में समस्त डेटा बेस ला रही है। यहॉ तक कि आज मोबाईल फोन पर भी हिंदी का प्रयोग संभव हो गया है। सी डेक पूणे ने क्रांतिकारी शोध दवारा हिंदी में यह सॉफ्टवेअर उपलब्ध

कराए जो कि अॅग्रेजी में है। आज कम्प्युटर पर हिंदी में कोई भी काम किया जा सकता हैं। हिंदी में इमेल भेजने की सुविधा आज उपलब्ध है। आज इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता कॉफी बढ गई है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा के विकास एवं सुधार के लिए सकरकार एवं विविध संस्था और विदवतजनों व्दारा विविध प्रयास किए जा रहे है। जिस में सातवें विश्व हिंदी साहित्य संमेलन की भूमिका सराहनीय है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को अधिकारिक भाषा बनाना विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठों की स्थापना, एक उच्चस्तरीय अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन, विश्व स्तर पर हिंदी वेबसाईट का सृजन, हिंदी विदवानों का एक विश्वनिर्देशिका का प्रकाशन, १० जनवरी २००४ से १० जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाय जाएगा। कैरिबिये में हिंदी परिषद की स्थापना भारत में एम.ए. हिंदी पाठयक्रम में विदेशों में हिंदी लेखन को एक प्रश्न पत्र के रूप में शामिल किया जाए। साथ ही सूरीनाम की प्राथमिक कक्षाओं के माध्यम भाषा के रूप में डच एवं अॅग्रेजी भाषा के साथ—साथ शामिल किया जाए।

भारतीय वर्तमान हिंदी सिनेमा वर्तमान विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है और भारतीय टि.वी. धारावाहिकों ने विदेशों में हिंदी प्रसार और समझ में पर्याप्त योगदान दिया है इंडिया टू डे में प्रकाशित आंकडे के अनुसार अमरिका में ६० प्रतिशत से भी अधिक नवयुवक हिंदी फिल्म देखने में रूची रखते है। आज भी भाभी जी घर पे है, बालिका वधु, रामायण, महाभारत, ऑफिस—ऑफिस, आदि अनेक धारावाहिकों को विदेशी लोग बडे चाव से देखते और सुनते है अर्थात यहॉ हिंदी का क्षेत्रिय विकास हो रहा है। भारत से बाहर १०५ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन कार्य हो रहा है। अनेक विदेशी विदवान अपने देशों में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में लगे हुए है। जिसमें जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्सें और नैदरलैण्ड के थियाडेमिस्टी के नाम इस क्षेत्र में अग्रगण्य है।

विदेशी संचार माध्यम विशुध्द हिंदी में प्रसारण करते है रेडियों स्टेशन जापान रेडिया, चायना रेडियो इण्टरनैशनल आदि अनेक विदेशी रेडियों स्टेशनों से आप नियमित हिंदी के कार्यक्रम सून सकते है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी अब खतरे में है इस संदर्भ में कृष्णकुमार जी ने लिखा है कि— ''भाषा का संकट यह भी है कि वह इन माध्यमों व्दारा अपना स्वरूप बिगाड रही है। भाषा का संकट यह भी है कि भाषा का वैज्ञानिक व्याकरणिक पक्ष नष्ठ हो रहा है, भाषा का संकट यह भी है कि बहुत से लोगों को प्रेषित हो रही भाषा किसी और स्थान की लग रही है और आज भाषा का संकट यह भी है कि भाषा अपनी नही पराई लगती है।''

आज अभिभावकों में बच्चों को आरंभ से ही अॅग्रेजी माध्यम की शिक्षा दिलवाने की होड लगी रहती हैं। देहातों में भी अॅग्रेजी माध्यम की शिक्षा दिलवाने की होड लगी रहती है। देहातों में भी अंग्रेजी स्कुल खोले जा रहे है। दिन—ब—दिन अॅगेज स्कुलों की बढती संख्या और बच्चों का होड देखकर तो लगता है कि हिंदी का क्या होगा। कई प्रदेशों में तो पहली कक्षा से अॅग्रेजी भाषा को अनिवार्य भाषा के रूप में रखा गया है। लगभग यही स्थिति भारतीय विश्वविद्यालयों की है यहॉ भी अॅगेजी को अनिवार्य विषय के रूप में पढाया जा रहा है। हमारे देश के कुछ कुटिल राजनेताओं के कारण हिंदी को रोजगार की भाषा नहीं बनाने दिया जा रहा है। यहा सरकार व्दारा हिंदी भाषा में तकनीकि साहित्य और शिक्षा के विकास पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। ऐसे कई कारण है जो हिंदी को भूमंडलीकरण के इस दौर में पिछे ला सकती है इसके लिए हमे सतर्कता या सावधानी बरतनी चाहिए। भले ही हिंदी भाषा भूमंडलीकरण के इस दौर में संपर्क भाषा के रूप में और अधिक विस्तृत हुई हो या इसका भाषाई

विकास हो रहा है, या इसकी शब्द संख्या को नया आयाम दिया हो यह सब कुछ होते हुए भी हमे ध्यान देना होगा कि हिंदी का व्याकरणिक ढांचा भूमंडलीकरण के इस दौर में ना बिगडे, जो विज्ञापनों के माध्यम से बिगड रहा है जैसे—''अब तो इसका बैंड बजकर रहेगा, ऐसे विज्ञापनों के कारण हिंदी मुख्यधारा में अँग्रेजी शब्दों एवं मुहावरों की घुसपेठ बढ रही है जैसे ''हम तो बिंदास है''।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखना है तो सबसे पहले हमे अपनी मानसिकता को सुधारणा होगा। साथ ही साथ हिंदी भाषा को लाभ के सिध्दांत तक सीमित न रखते हुए उसे सरल एवं लचिली बनाने की आवश्यकता है। उसके व्याकरणिक ढांचेपर ध्यान देना होगा, विज्ञापनों में व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन ना हो इसकी हमें सतर्कता बरतनी होगी। इस प्रकार भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखा जा सकता है।

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

हिंदी सिनेमा : संदर्भ और प्रकृति

डॉ.नवनाथ गाड़ेकर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तहसील - करमाळा, जिला - सोलापुर

हिंदी सिनेमा का प्रारंभ १९१३ से माना जाता है। उस समय हिंदी सिनेमा में केवल चित्र दिखाएँ जाते थे। इस सिनेमा में ध्वनि का अभाव था। सिनेमा जगत में सबसे पहले बनी फिल्म का शीर्षक हिंदी पौराणिक आख्यान 'राजा हरिश्चंद्र' को लेकर था। इसे ही हिंदी की पहली फिल्म माना जाता है। इस युग में धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक फिल्मों का निर्माण भी शुरू हुआ। यह सभी चलचित्र दादासाहब फालके द्वारा निर्मित हुए। 'सत्यवान सावित्री', 'कृष्ण जन्म', 'भस्मासुर मोहनी', 'लंका दहन' आदि जैसी सिनेमा पौराणिक धार्मिक आख्यानों पर आधारित थे। १९१३ से लेकर १९२५ तक देखे तो तत्कालीन सिनेमा पर 'पारसी थियेटर' का प्रभाव दिखाई देता है। सिनेमा का मुख्य उद्देश मनोरंजन था।

सिनेमा एक दृश्य श्रव्य माध्यम है। सिनेमा जनसंचार का एक सशक्त कलात्मक माध्यम है। सिनेमा एक संयुक्त आई है क्योंकि यह एक सम्मिलित प्रयाग है। एक समूह की सृजनात्मकता इसके निर्माण से जुडी हुई है। मूक फिल्मों का दौर १९३१ में 'आलमआरा' के आगमन से खत्म हुआ। प्रथम पूर्ण रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' १९३७ में प्रदर्शित हुई। १९३३ में भारतीय फिल्मों की रजत जयंती मनाई गई। १९४३ में प्रदर्शित 'किस्मत' फिल्म का 'दूर हटों ए दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है' यह गाना राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्त किया जाने लगा।

आजादी के पश्चात भारतीय सिनेमा पर व्यावसायिकता हवी होती जा रही थी। वी.शांताराम, महबूब, विमलराय जैसे फिल्मकारों ने भारतीय सिनेमा को सार्थक दिशा थी। १९५१ में राजकुमार की 'आवारा' विमलराय की 'दो बीघा जमीन' आदि फिल्मों ने दर्शकों पर अद्भुत प्रभाव डाला। मोहराब मोदी की मिर्जा गालिब राष्ट्रपति का स्वर्णपदक पानेवाली पहली फिल्म थी। ये सभी सिनेमा हिंदी की सर्वाधिक मुनाफा कमानेवाली फिल्मों में शामिल है। १९८६ के बाद यश चोपड़ा, सुभाष घई, राजकुमार संतोषी, रामगोपाल वर्मा आदि ने व्यावसायिक फिल्मों का निर्माण किया।

सिनेमा नाटक का ही एक विकसित रूप माना जाता है। नाटक रंगमंच अथवा सिनेमा के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। पारसी रंगमंच पर खेले गए नाटकों की नींव पर भारतीय सिनेमा विकसित हुआ। पारस रंगमंच पर खेले गए नाटकों के निर्माता, अभिनेता और गायक कालांतर में सिनेमा के निर्माता, अभिनेता और गायक बन गए। वस्तुतः आज जिसे हम सिनेमा से जानते है वह बहुत कुछ रूप से रंगमंच, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों से गुजरते हम तक पहुँचने वाली एक ऐसी शैली है, जिसने आज यांत्रिकता के विभिन्न उपादानों का रूप पाकर कला का रूप धारण कर लिया है।

सिनेमा और रंगमंच की संस्कृति, सौंदर्यशास्त्र, आपसी रिश्ते आदि स्वयं में एक रोमांचक और सर्जनात्मक अनुभव है। रतनकुमार पाण्डेय के अनुसार -''फिल्म और नाटक चाक्षुष और वैचारिक माध्यम है। इसी कारण एक अच्छी फिल्म या अच्छा नाटक दर्शक से हमेशा कुछ कहता है, कहानी के अलावा भी बहुत कुछ देता है, बोलता है। दोनों का हर दृश्य - बंध, हर स्थिति, हर प्रसंग और प्रत्येक मोड़ विश्वसनीय बने यह निर्देशक और उस माध्यम की भाषा पर भी निर्भर करता है। वह सर्जनात्मक भाषा है जो उपरी भाषा के बंधन से फिल्म और रंगमंच को आजाद कर देती है।''[१]

फिल्म निर्देशक का माध्यम होती है और रंगमंच अभिनेता का। फिल्म में अभिनेता के साथ बहुत से उपादानों की भूमिका रहती है। सिनेमा में मुख्य रूप में निर्देशक, कैमरे की ऑख है। दर्शक निर्देशक की कल्पना को कैमरे की ऑख से ही देखता है। रंगमंच अपने आप में स्वायत्त है। रंगमंच संघर्ष की मॉग रखता है। सिनेमा नाटकीयता को तोड़ती है। रंगमंच नाटकीयता का सृजन करता है ।

हिंदी में सिनेमा पत्रकारिता की ठोस परंपरा नहीं रही। 'दिनमान', 'धर्मयुग', 'माधुरी' और 'हिंदुस्तान' पत्रिकाओं में कवियों के विश्लेषण के हथियारों से फिल्मों का विश्लेषण किया। इस संदर्भ में अजय ब्रह्मात्मज कहते है -''हिंदी की फिल्म पत्रकारिता ने कला और समांतर सिनेमा को श्रेष्ठ सिनेमा मानने की संकीर्णता दिखाकर पॉपुलर फिल्मों से किनारा कर लिया। ऐसे फिल्म आलोचकों समीक्षकों और लेखकों की जमात आज भी सक्रिय है। वे एक दूसरे की तारीफ कर फिल्म पत्रकारिता और लेखन को एक दूसरे गर्त में ले जा रहे हैं।''[२] हिंदी पत्रकारिता अपने विचारों का जनता तक पहुँचाने का एक सशक्त साधन है। पत्रकारिता का उद्देश्य संसार भर की खबरों एवं घटनाओं को एकत्रित करना, उनका विवेचन करना, उनका विवरण इकठ्ठा करना और उन्हें पत्र - पत्रिकाओं के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का होता है।

निष्कर्ष -

आज भारत में फिल्म निर्माण एक महत्वपूर्ण उद्योग है। सिनेमा मनुष्य की मूल प्रवृत्ति को छुनेवाला माध्यम है। साहित्य और सिनेमा दोनों समाज के अभिन्न अंग है। सिनेमा का मुख्य उद्देश्य समाज को खुश करना होता है। हिंदी फिल्मों के दर्शक सिर्फ भारतीय ही नहीं, विदेशों में भी हिंदी फिल्में पसंद करते हैं। हिंदी फिल्मों का आज बड़ा बाजार है। आज सभी पत्र - पत्रिकाओं में फिल्मों का स्थान सुनिश्चित है। फिल्म लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा है। सिनेमा ने आधुनिक सामाजिक मूल्यों, आधुनिक वैचारिकी और कलात्मक सुरूचि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

१. अनभै (पत्रिका) सं.रतनकुमार पांडेय - (अप्रैल - जून २००६) पृ.२२
२. सिनेमा समकालीन सिनेमा - अजय ब्रहमात्मज - भूमिका से

भूमंडलीकरण और हिंदी कविता : संवेदना के स्वर

प्रा. एन. व्ही. जाधव
सहा. प्राध्यापक
श्री. संत गाडगेबाबा महाविद्यालय, कापशी (महाराष्ट्र)

प्रा. वाय. एस. गायकवाड
हिंदी विभाग प्रमुख
श्री. संत गाडगेबाबा महाविद्यालय, कापशी (महाराष्ट्र)

भारत में आर्थिक नीतियों के साथ-साथ उदारीकरण, भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर उदारवाद, उपभोक्तावाद और बाजारवाद धीरे-धीरे अपनी जड़े जमा रहा था, बीसवी सदी के अंतिम दशक से ही आरंभ कर दिया था। वैश्वीकरण ने भारत के आर्थिक और सामाजिक ढाँचे को आशा से अधिक प्रभावित किया लेकिन समय के साथ इनमें परिवर्तन भी आने लगे। जब-जब परिवेश ने साहित्य को प्रभावित किया है तब-तब साहित्य ने भी परिवेश के ऊपर अपना असर डाला है। लेखक, कवि या रचनाकार अपने भाव की सृजनता भले ही अकेले में करता हो, मगर उन एकांत क्षणों में भी उसके काव्य का परिवेश उसके साथ रहता है। समाज परिवेश के बिना किसी प्रकार की रचना का सृजन करना असंभव है, भले ही उस क्षण को कविता का नायक उसकी आँखों के सामने न हो; लेकिन कल्पना में उसका चित्र तो रहता है। जिसे देखकर ही तो वह अपने काव्यविषय की रचना करता है। लेकिन परिवेश की दृष्टि से सोचो तो उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है, उसके अंतर्गत कवि या लेखक की वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक, साहित्य प्रेरणा और स्त्रोतों को लिया जा सकता है। अत: कवि का कथ्य विषय या परिवेश में फर्क न करते हुए उस कसौटी पर कसते वक्त दोनों में भेद नहीं करना चाहिए। तभी उसकी रचना भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद के प्रभाव को सहने और मानवीय गुणों को बचाए रखने में और भी प्रभावकारी एवं सक्षम बनेगी ऐसा हमे लगता है। प्रस्तुत शोध आलेख में हमने कवि और उसके परिवेश को अधोरेखीत करने का प्रयास किया है।

"यहाँ अंधेरा। यह अलगाव। यह बेचैनी
भूमंडलीकरण के बीचो-बीच।
उसका यह अकेलापन। भूमंडलीकरण का शोर
और में तट पर में केंद्र हूँ।... भूमंडलीकरण का शोर है।
और वीरान है बंदरगाह!"[1]

आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता, भूमंडलीय संस्कृति, बाजारवादी संस्कृति की चर्चा-परिचर्चा और उसकी चपेट में फँसे हुए आम आदमी की स्थिती को देखकर कवि का चिंतित होना स्वाभाविक है क्योंकि उसे ये उपलब्धियाँ मात्र छलावा नजर आ रही है। संवेदना का ढीला होता ताना-बाना भूमंडलीय आवर्त में उलझकर टूटता जा रहा है। कवि की अनुभूतियों का संसार अद्भूत एवं अद्वितीय और अति संवेदनशील कवि को जब अपने आस-पास के बदलते हुए जीवन शैली एवं उसके मूल्यों को देखता है तो वह चूप नहीं रहता है। तबउसकी विचारों की गलीयारों में शब्द रुपी आँधीयाँ चलने लगती है, संवेदनाओं की ज्योति प्रज्वलीत होती है।

कवि विश्वगंगा में अपना गाँव ढूढ़ रहा है। बाजार ने सीमाओं को तोड़कर विश्वस्तर पर जो जोड़ने का काम किया है वहाँ जुड़कर भी सब अलग-अलग है क्योंकि अब मानव से मानव दूर होता जा रहा है। जितना तकनीकी क्षेत्र में विकास होता जा रहा है वह उतना ही मानवीय संवेदनाओं से दूर होता जा रहा है। मानव ने आज अपने कदम इतनी तेजी से आगे बढ़ाये है कि अपना

गाँव, घर, पुरानी याँदे पिछे छूटती जा रही है। उसने अपने सुखी जीवन तथा समृद्धि के लिए गाँव का खुशहाल जीवन त्याग दिया है। परिवार का सहारा छोड़ दिया है और आज जा बसा हैं क्रोंकिट के जंगलों में जहाँ कोई कमी नहीं है पर संवेदनाएँ भी न के बराबर है। वहाँ दिन-ब-दिन संवेदनाओं की हत्या होती जा रही हैं।

''दुनिया में इतना दु:ख है इतना ज्वर,
सुख के लिए बस दो रोटी और एक घर।''[2]

कवि को ज्यादा नहीं, सुकून की रोटी और शांति मिले ऐसे घर की तलाश है। आलीशान मकान में रहने से वह घर नहीं बन जाता। घर तो घर के परिजनों से, अपनों से बनता है जो एक दूसरे के सुख-दु:ख में संम्मिलीत होता है।

'' हथकडियों के रूप में आई होती तो उन्हें
पहचान लेता
परंतु ये आई थी, सपनों की माला की शक्ल में,
ये समय बनकर, काल-खंड बनकर आई थीं,
ये आई थी इतिहास का मोड़ बनकर...''[3]

मनुष्य कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो? कितना ही सावधान क्यों न रहे? लेकिन यह भूमंडलीकरण और बाजारवाद का रूप ऐसा है कि जिसके मकड़ जाल में सब फस जाते हैं। आज मल्टीनेशनल कंपनियाँ, विदेशी व्यापार छलिया के रूप में चुप के से प्रवेश कर, आपको लुभाकर छलते हैं। शुरू में मन भावन लगने वाली ये चीजें समय रहते उसका असली रूप दिखाकर आपको छलने का, बंधन में बंध जाने का पता ही नहीं चल पाता और जब पता चलता है तब तक बहुत देरी हो चुकी होती है। आज अमीर से गरीब मनुष्य भी इस भ्रमजाल में फँसा हुआ है। इसे इस झंझट से छुटकारा पाना है, पर कैसे छुटा जाय? यह समझ में नहीं आ रहा है? इतिहास गवाह है कि जब सीता माता ने उस स्वर्ण मृग को देखा था तो माता के मन में उसे पाने की इच्छा और जिद की थी परंतु मर्यादा पुरूषोत्तम राम भी अपनी सद्-सद् विवेक बुद्धि से निर्णय नहीं कर पाये थे कि भला स्वर्ण मृग क्या होता है?

''असम्भवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्राय: समापन विपत्तिकाले धियोड पिपुसाचलिता
भवन्ति।'' [4]

विपद काल में धीर पुरूषों की बुद्धि भी मारी जाती है तो भला आज के भूमंडलीकरण और बाजारवाद की इस सदी में साधारण लोग भ्रम के शिकार हो जाए तो इसमें आश्चर्य किस बात का? बाजारवाद की मायाजाल, भ्रमजाल की धोखा देनेवाले नित्य नए रुप धारण करनेवाले रूप को और संकेत कर उसे तोड़ने के लिए कवि कटिबद्ध है।

''वक्त के साथ चीजें पुरानी होती जाती हैं,
और होती जाती है कमजोर पर इनकी तो,
तेज हो जाती है झनक
इस बार कृपया इसबार, इन्हें तोड़ लेने दीजिए।''[5]

हिंमांशू जोशी जी की कविताओं में संवेदना एवं विचार पक्ष प्रमुख है। इनकी कविताओं में आधुनिक समाज का वास्तविक चित्रण देखने को मिलता है। इनकी 'अग्नि-संभव' असाधारण व्यक्ति का प्रतिक है जिसमें आग से लोहा लेने की शक्ति है। इस कविता में साधारण व्यक्ति असाधारण व्यक्ति के इशारे पर अपनी जान किस प्रकार कुर्बान या दाव पर कैसे लगाता है? इसका मार्मिक चित्रण किया गया है। वह काम करते-करते थक जाती है और असफल बन जाता है-

'' सुनो, अग्निसम्भव सुनो
मैंने यह सब सहा, जो तुमसे सहा न गया,
मैंने वह सब किया, जो तुमने कहा-इसलिए
जिन्दा रहने के लिए
अंजुरियों में भर-भरकर अपना ही रक्त पिया!''[6]

हिंदी के प्रगतिवादी कवियों में पीड़ितो के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है, मृत प्राय इन व्यक्तियों के कलेवरों

में प्राण प्रतिष्ठा करने वाले डॉ. युवराज सोनटक्के जी की कविताओं में दलितों के तुफान का उफान नजर आता है। सोनटक्के जी ने दलितों की दयनीय दुर्दशा देखकर शोषकों के नुकिले काँटोंपर पर कवि मृत्यू भर चिल्लाते है। दलितों के सपनों को जिन्होंने तोडा-मरोडा है उन पर जबरदस्त प्रहार करते नजर आते है जैसे -

''तब दलितों के सचर सपनों के नीचे हुए फलक लेकर
चिल्लाया में मृत्यू भर तुम्हारे हृदय के नुकीले काँटो पर।''[7]

साम्प्रदायिक दंगो में स्त्रियों की हालत काफी दयनीय हो जाती है। वैसे भी कोई भी दंगा हो उसमें यातना तो स्त्री को ही दी जाती है। धर्म के ठेकेदारों ने भी स्त्रियों पर ही ज्यादा से ज्यादा बिजलीयाँ गिरायी है। सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एवं राजनीतिक, बौद्धिक दंगो में सिर्फ और सिर्फ पिसती है तो वह है स्त्री-

''मुझे नहीं लगता दंगा खत्म हुआ है अभी
ये दंगा कभी कत्म होगा भी नहीं, मेरे और
मेरी देह के खिलाफ ये दंगा सदियों से जारी है
और में इनदिनों भाग रही हूँ गुजरात की सडकों पर।''[8]

सुरजपाल जी साहित्य के बारे में विद्रोह करते है कि साहित्य तो समाज का दर्पण है। पर यह कैसा दर्ण है, जिसमें दलित मनुष्य का रुप धुंधला नजर आता है क्योंकि वह एक दलित है इस कारण.... यानी साहित्य ने भी दलितों की उपेक्षा की है।

''तुम कहते हो साहित्य समाज का दर्पण है
ठीक है पर-यह कैसा दर्पण है जिसमें
मेरा चेहरा हमेशा घिघियाता और घिनौना नजर आता है।[9]

शैलचंदा जी की कविताओं में कन्या भ्रूण हत्या का स्वर मुखरित होता हुआ नजर आता है उनकी कविताएँ भ्रूण हत्या रोकने के प्रति प्रयास रत कविता है -

''क्या हुआ गर लडकी हूँ
मुझे भी घर में थोड़ी जगह चाहिए
लड़की होने की सजा गर्भ में मुझे मत दो
हूँ जीवित प्राणी इस धरती का मुझे भी मेरे
हिस्से का प्यार दो, अधिकार दो।''[10]

भारत किसानों का देश है। ८० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है, पुरे समाज के लिए अनाज पैदा करने का काम किसान ही करता है लेकिन आज उसकी अवस्था बहुत ही दयनीय बनी है। प्रेमचंद्र के 'गोदान' से लेकर संजीव के 'फाँस' तक इसकी कहानी या व्यथा में कोई बदलाव नजर नहीं आता वह ज्यों के त्यों नजर आता हैं। आज वह इन परिस्थितियों में फँसा है कि उनसे बचने या छूटने के लिए उसके सामने एक ही पर्याय उसे नजर आता है और वह है ''आत्महत्या''। आज के राजनीतिज्ञ एवं गंदी राजनीति के चक्की में वह पिस रहा है। इन बिकट परिस्थितियों के बीच आम आदमी, किसान और मजदूर सत्ता के दलालों के हथ्थे मार खाकर जी रहा है, बल्कि अपनी जिंदगी जीने के लिए विवश है। कवि जगन्नाथ पंडित इन किसानों की मजबुरी को अपनी कविता का माध्यम बनाकर उनके प्रति बुहार देता हुआ नजर आ रहा है-

'लश्कर नहीं है उसके पास
न बम, न पिस्तौल, न हथगोले
न चाकू, न कवच, पर निरंतर प्रहार झेलता है...[11]

भूमंडलीकरण का यह युग मानो संक्रांति का युग है, इसमें मानवीय भावनाए कम और उपयोगिता अधिक नजर आती है। पहले अपने रिश्तेदारों को, दूरदर्राज के मित्रों को लंबा-चौडा खत लिखा जाता था। इसकी सलामती, खैरियत एवं आशीर्वाद रुपी शब्दों का भांडार हुआ करता था पर अब इस युग में पत्राचार की वह भावभीनी भाषा अब गायब हो चुकी हैं। इस के लिए हम भी अपवाद नहीं हैं । इसकी जगह घूमंतू ने ले ली है। इसके द्वारा एस्एम्एस् और ईमेल ने ली है। इसका उदाहरण हम प्रथा मजमूदार जी की कविता 'ओके' इसे कुछ इस प्रकार स्पष्ट करती है-

''चार पन्नों के पत्र
ई–मेल की दो लाइनों में
सिमटने लगे,
या साल दो साल के अन्तराल में
एकाध फोन काल में।''[12]

निष्कर्षत: हम ये कह सकते है कि भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद के कारण कवि की कविताओं में अनेक प्रश्नों को लेकर कविताएँ हमारे सामने खड़ी है। आज का वर्तमान कवि को जैसे चुनौतियाँ देता हुआ नजर आता है। तो दूसरी ओर उदारीकरण और बाजारीकरण के इस युग में भाषा को भी छलनी करने का काम किया है। हमारे घर, गाँव , शहर आदि विदेशी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध में पड़कर अपनी भाषा और संस्कृति को धीरे–धीरे भूल रहे हैं। ग्लोबल वोर्मिंग के कारण जैसे प्राकृतिक संकटों का सामना पूरा विश्व कर रहा है, इसी के परिणाम स्वरूप अनेक पशु–पक्षियों की प्रजातियाँ लुप्त हो जाने के कगार पर है। लेकिन यह भाषा भूमंडलीकरण के साथ फैल रहे उपभोक्ता संस्कृति की ही बनती जा रही है, विमर्श की नहीं। इस भाषा में अब वह लोक राग और रंग नहीं है, जहाँ से हिंदी अपनी जीवन शक्ति पाती रही है। हमें भय है कि यह भूमंडलीकरण का राक्षस हमारी हिंदी भाषा की सरलता, सुबोधता एवं स्पष्टता कहीं अपने हलक के नीचे न उतार लें। उसकी मृदूता कहीं खत्म न हो जाए। हिंदी भाषा सहज अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं है उसमें मनुष्य की अस्मिता का स्वर हैं, उसमें सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति भी है। समय के साथ–साथ होनेवाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनाई पडती है। भूमंडलीकरण के बाद कवि की भाषा का रूप जितनी तेजी से बदला है उतनी तेजी से हिंदी मानस की सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना नहीं बदली है ऐसा हमें लगता हैं।

संदर्भ :

1) इब्बार रब्बी : वर्षामें भीगकर पृष्ठ. 27
2) अरूण कमल :
3) बद्री नारायण : हथकडियाँ
4) रामायण :
5) बद्री नारायण : इसबार
6) हिमांशू जोशी : 'अग्नि–संभव
7) ज. सोनटक्के : गुंगी हस्ती
8) यह आवाज मुझे सच्चि नहीं लगती : पृष्ठ 58
9) सूरजपाल चौहान : हम दम मेरी बारी क्यों? पृष्ठ30
10) शैलाचंद की कविता :
11) जगन्नाथ पंडित : समय के सागर में

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मानवीय मूल्य ('ईंधन' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,
श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद महाविद्यालय, सांगली

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण एक ऐसी धारणा है जिसका मूलाधार है - बाजार, बाजारवाद या उपभोक्तावाद। भूमंडलीकरण के कारण बाजारवाद पनपा है और बाजारवाद से उपभोक्तावाद। आज इंसान की पहचान एक उपभोक्ता के रूप में ही रह गई है। इसमें इंसान सब कुछ भोग लेना अर्थात् उपभोग कर लेना चाहता है। भूमंडलीकरण के कारण तेजी से बदलती दुनिया हमारे जीवन को बाहर से ही नहीं बल्कि भीतर से भी प्रभावित कर रही है। भूमंडलीकरण के कारण दुनिया सिकुड़ गई है और साथ ही इसके ही परिणामस्वरूप हमारे रिश्तों-संबंधों में भी शिथिलता ने स्थान ग्रहण किया है। मानवीय मूल्यों में शीघ्रता से बदलाव हो रहे हैं। संवेदनहीनता की अंधेरी खाई की ओर हम निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। हमारे अंदर की इंसानियत धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है और हम सिर्फ और सिर्फ भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे लगातार दौड़ रहे हैं। और फिर अकेलेपन, बेचैनी, दुख तथा नैराश्य आदि त्रासदियों में हम घिरते जा रहे हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण एवं उसके प्रभाव को समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने अपने अलग-अलग भाव तथा धारणाओं की दृष्टि से सामने रखा है। इनमें से कई उपन्यासकारों ने भूमंडलीकरण के प्रभावों को गहराई से परख-निरखकर उनका चित्रण करते हुए उनके प्रतिरोध में लेखनी चलाई है। और इन उपन्यासकारों में से एक स्वयं प्रकाश जी है, जिन्होंने अपने उपन्यास 'ईंधन' में अत्यंत गहराई से भूमंडलीकरण और उसके प्रभावों को चित्रित कर सर्जनात्मक प्रतिरोध को अभिव्यक्ति दी है। लगातार बढ़ती भौतिक चकाचौंध की दुनिया, संघर्ष, मानवीय रिश्ते तथा संबंधों में होता अमूलाग्र मूल्य-परिवर्तन, निरंतर मानवीय संवेदनाओं का खोते जाना, बदलते मानवीय मूल्य आदि से संबंधित वास्तव को उपन्यास बेहद गंभीरता के साथ सामने रखता है।

स्वयं प्रकाश जी का 'ईंधन' यह उपन्यास सन २००४ को प्रकाशित हुआ है। २७१ पृष्ठों में उपन्यास की विषय-वस्तु वर्णित की गई है। भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व के आर्थिक-सांस्कृतिक ढ़ाँचे को परिवर्तित कर दिया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में नई आर्थिक-सामाजिक नीति, खुले बाजार की अवधारणा, सार्वजनिक संस्थानों का निजी संस्थानों में रूपांतरण, मल्टीनेशनल कंपनियों का बढ़ता प्रभुत्व, प्रौद्योगिकी और तकनीक की विस्फोटक प्रगति, कम्प्यूटर और मोबाइल का तीव्र विकास, प्रबंधन और वितरण की नई पद्धतियाँ, विज्ञापनों का मायावी संसार और परिणामतः बाजारवाद और उपभोक्तावाद के अंतहीन प्रसार ने हमारे अंतःबाह्य जीवन को पूरी तरह बदल कर रख दिया है। स्वंय प्रकाश जी ने इस बदलाव को औपन्यासिक स्तर पर अपने उपन्यास 'ईंधन' में उपस्थित किया है।[१] समय की हरकत पर गहरी दृष्टि रखते हुए समकालीन जीवन की विसंगतियों की पहचान करते हुए स्वयं प्रकाश जी ने उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

प्रस्तुत उपन्यास में रोहित और स्निग्धा इनके दाम्पत्य-जीवन की कथा है, जिस पर भूमंडलीकरण और उसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। और प्रभाव के कारण उनके संबंधों में बिखराव भी आ जाता है। इन दोनों के पारस्परिक संबंधों का तनाव और द्वंद्व ही इस उपन्यास की कथा है। हीन आर्थिक स्थिति से ऊपर उठने की जिजीविषा में और लगातार तीव्र गति से परिवर्तित होती स्थितियों में रोहित बहता ही चला जाता है। मायावी दुनिया की लगातार चलती इस भागदौड में अपना स्थान जमाने तथा भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागते-भागते वह अपनी पत्नी स्निग्धा तथा अपने एकलौते बेटे निखिल को तक वक्त नहीं पाता। परिणामस्वरूप संबंधों में दरार आनी

तो स्वाभाविक ही है। निखिल के अनपेक्षित मृत्यु के बाद तो दोनों अलग रहकर ही जीवन बसर करते हैं। लेकिन उपन्यासकार ने अंत में इस प्रकार के असफल जीवन के पर्यायस्वरूप संवेदना एवं स्नेहभरी सादगी का पक्ष लेते हुए इन दोनों की कथा को खत्म किया है। रोहित और स्निग्धा उपन्यास के अंत में नई अर्थसंस्कृति की अंधी दौड़ से निकलकर नई शुरूआत करते हैं। भूमंडलीकरण की इस अंधी दौड में मानवीय मूल्यों में जो झट से एवं अमूलाग्र परिवर्तन हो रहे हैं, इसकी झलक प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलती है। भूमंडलीकृत अर्थसंस्कृति की बुनावट इस तरह की है कि यह अपने अस्तित्व और निरंतरता के लिए मनुष्य को बतौर ईंधन इस्तेमाल करती है। यह उपन्यास इस सच्चाई का जीवंत दस्तावेज है। भूमंडलीकरण की अंधी दौड़ में दौड़ते-दौड़ते इंसानी संवेदनाओं का खोते जाना, पारिवारिक जिम्मेदारियों और स्नेह की उपेक्षा तथा फिर नैराश्य एवं अकेलेपन की घुटन, बेरोजगारी से त्रस्त इंसान की दुर्दशा, चकाचौंध की भूलभुलैया में खोता जाता इंसान इस प्रकार परिवर्तित होते मानवीय मूल्यों को उपन्यास भलिभाँति सम्मुख रख देता है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में बढ़ती टेक्नॉलॉजी के कारण कई लोगों के सामने रोजगार का संकट पैदा हुआ और कईयों के सामने कम मेहनाताने पर कार्य करने की मजबूरी पैदा हुई। पुरानी पीढ़ी के लोगों के सामने तो गहरा संकट उपस्थित हुआ। सामान्य लोगों पर भूमंडलीकरण के चकाचौंध एवं उसके प्रभाव का होना जायज ही था। भारत एक बड़ा उपभोक्ता बाजार था, अतः विदेशी उत्पादों का तीव्र प्रवाह यहाँ हुआ। कुल मिलाकर स्थिति अत्यंत शोचनीय होती गई। इस स्थिति को प्रस्तुत उपन्यास में इस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है - ''फिर जैसे भैंस के साथ भुनगे, खुजियल कुत्ते के साथ मक्खियाँ और व्हेल के साथ छोटी-छोटी मछलियाँ आ जाती हैं, उसी तरह पेप्सी आ गई, कोला आ गया, एक बार तो खबर आई कि गोबर भी आयात किया जा रहा है। अब बेचोबेचो की गुहार लगी। हाथ धोने की पुकार उठी। निकालो-निकालो का शोर मचा, हटाओ-हटाओ की हाँक लगी तो देसी उद्योग-धंधे बंद होने लगे, मजदूर कारीगर बेरोजगार होने लगे, किसान आत्महत्या करने लगे, लड़कियाँ वेश्यावृत्ति करने लगीं, नवयुवक बीहड़ कूदने लगे और गरीब लोग अखाद्य खाकर मरने लगे। ठीक जिस समय गरीब आम की गुठली खाकर मर रहे थे, भारत सरकार एड्स के बचाव पर करोड़ों रूपये खर्च कर रही थी।''[२] विदेशी कंपनियों ने अपने उत्पाद यहाँ के बाजार में जमाने हेतु हमारे दैनिक जीवन में उन चीजों की घुसपैठ करनी शुरू कर दी। भौतिक सुख, अपना स्टेटस और लालसा के कारण हम इन चीजों के अनावश्यक मायावी जंजाल में फँसते ही चले जा रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में रोहित के माध्यम से इस बात की अभिव्यक्ति देते हुए स्वयं प्रकाश जी ने लिखा है - ''मुझे यह बात किसी भी तरह नहीं जँचती थी कि अगर मैंने वुडलैण्ड के जूते नहीं पहने, पीटर इंग्लैण्ड की कमीज नहीं पहनी...और टाइटन की घड़ी नहीं बाँधी तो मैं कुछ कम आदमी हूँ या हो जाऊँगा।...मैं समझ नहीं पाता था कि क्यों मुफ्त में अपने चश्मे पर रेबॅन, टी-शर्ट पर नाइके या एडिडास, बरम्यूडास पर रेंगलर या मार्क एंड स्पेन्सर का नाम या बिल्ला चिपकाएँ घूमूँ? इंसान की कदर उसके गुणों के कारण होती है या उन वस्तुओं के कारण जिन्हें वह इस्तेमाल करता है?..''[३] रोहित के इन वाक्यों में इन अनावश्यक चीजों का हम पर लदते जाना साफ जाहिर होता है। इन्हें छोड़ कोई व्यक्ति यदि सस्ती चीजें इस्तेमाल करता है तो उसे निम्न हैसियत वाला माना जाता है। सादगी से जीवन बसर करने वाले तो अब इस मॉडर्न सोसायटी में औकात से छोटे या हीन माने जाते हैं और काफी हद तक भूमंडलीकरण के प्रभाव को इसका जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

मल्टीनेशनल कंपनियों ने उसमें काम करनेवाले व्यक्ति को आज इस हद तक गिरफ्त में ले लिया है कि वह अपने खुद के निजी जीवन को समय ही नहीं दे पा रहा है। सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए वे एक घटक के रूप में उससे काम लेना चाहते हैं। वह अपनी तरफ, अपने संसार की तरफ ध्यान नहीं दे पाता, जैसे इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने उससे उसका कीमती समय ही छिन लिया हो। ऊपरी पद, अधिक की कमाई के कारण टार्गेट्स के टार्गेट्स में गुंथते जाने के कारण वह निरंतर तनाव में ही रहता है। उसकी इस स्थिति को उपन्यास में इस प्रकार से वर्णित किया गया है - ''...उनमें से हरेक बेहद स्मार्ट, वाकपटु और कुशल हिसाबी था, लेकिन वे हर समय तनाव में रहते थे। उनसे कहा भी यही जाता था कि तुम्हें हर समय तनाव में रहना चाहिए। 'ऑलवेज ऑन योर टोज।' उन्हें दिए गए टारगेट उनकी नींद हराम किए रहते। जो टारगेट पूरा कर लेता उसे सवाए टारगेट पकड़ा दिए जाते और जो नहीं कर

पाता उसे बुरी तरह झिड़का जाता और जलील किया जाता।...हमारे यहाँ से हर शाम यह रिपोर्ट सीधी अमरीका भेजी जाती थी। टारगेट वहाँ से आते थे, एप्रीसिएशन भी वहीं से, और पीठ पर लात भी वहीं से। बेशक सीईओ की मार्फत।''[४]

भूमंडलीकरण से जुड़ी एक अन्य वृद्धावस्था की समस्या को भी स्वयं प्रकाश जी ने इस उपन्यास में उठाया है। भूमंडलीकरण के कारण यह समस्या और भी भयावह रूप को धारण किए हुए है। आज युवाओं का एक बड़ा वर्ग अमरिका एवं अन्य देशों में जा बसा है और यहाँ बसते हैं उनके वृद्ध और अकेले माता-पिता। उपन्यास में अकेलेपन से त्रस्त बीना आंटी के बच्चे भी अमरिका में बसे हैं और वहाँ से आने को तैयार नहीं हैं। बीना आंटी के कथन में अकेलेपन की पीड़ा और खत्म होते इंसानियत को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है - ''कोई किसी का नहीं है। कोई काम नहीं आता। आप जिंदगी भर मर-खपकर जिन्हें खड़ा करते हो वो भी काम नहीं आते।...मैं इस इतने बड़े मकान में किसी रोज मर गई तो कौन आएगा? कोई नहीं आएगा। भले दस रोज मेरी मिट्टी खराब होती रहे। अभी लाजपतनगर में हमारे एक रिश्तेदार थे...मर गए। अड़ोसियों-पड़ोसियों को बदबू आई तो दरवाजा तोड़ा। उनके बच्चों को अमरीका फोन लगाया...तो केंदे हैं...उनका अंतिम संस्कार वगैरह हमारी तरफ से आप ही कर दो। वीडियो फिल्म बनाके हमको भेज देना। हम पे कर देंगे। बोलो! कोई बात है!! कोई इंसानियत है!!''[५] भौतिक बदलाव ने इस हद तक इंसान को संवेदनशून्य बना दिया है कि अब वह अपनी इंसानियत को भी खोता जा रहा है, इस कटु यथार्थ को बीना आंटी के ऊपरी कथन द्वारा सामने लाने की कोशिश स्वयं प्रकाश जी ने की है।

रोहित भूमंडलीकरण के कारण बढ़ते बाजार के मायाचक्र में इस कदर खोता चला जाता है कि वह अपने एकलौते बेटे निखिल की ओर ध्यान नहीं दे पाता। उसकी जिम्मेदारी को वह टालता है। भौतिक सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण माहौल में निखिल को जो चाहे वह सब कुछ रोहित उसे देता है, बस दे नहीं पाता समय और प्यार। जीवन को लेकर किए सारे गुणाभाग जब वह टटोलता है, तो अंततः उसकी निरर्थकता को अनुभव करता है - ''मेरा ध्यान पैसा कमाने और वस्तुएँ जुटाने में लगा रहा। मैं उपलब्धियों की मीनार पर खड़ा संभावनाओं के उस पहाड़ पर निगाहें जमाए रहा जो था तो न जाने कितनी दूर, लेकिन सामने नजर आ रहा था और जिस पर मुझे फतेह हासिल करनी थी। उस दलदल को मैंने गंभीरतापूर्वक लिया ही नहीं जो मेरे कदमों के ठीक नीचे बनती जा रही थी और अंततः जिसमें धँसकर मुझे और मेरे परिवार को नष्ट हो जाना था।''[६] बेटे के प्रति की अपनी जिम्मेदारी को न सँभालने के कारण एक दिन वह पाता है कि सांप्रदायिक घटना को अंजाम देने गया उसका पुत्र जीप-दुर्घटना में मारा गया है। परिवार के अन्य लोग निखिल की इस दशा के लिए उसे जिम्मेदार समझते हों, लेकिन रोहित का मानना होता है कि इसके मूल में उपभोक्तावाद की भट्टी है, जो अपने फलने फूलने हेतु लोगों को ईंधन की तरह इस्तेमाल कर रही है। निरंतर उपभोक्तावादी संस्कृति के पीछे दौड़ते हुए रोहित संवेदना और रिश्ते-संबंधों से विलग होता जाता है और अंततः वह अकेलेपन का शिकार हो जाता है। निखिल तो मर गया और अब स्निग्धा भी उसके पास नहीं रहती तो वह अपने-आप को निरर्थक पाता है। उपभोग्य भौतिक सुख-सुविधाओं को पाने की अदम्य प्रक्रिया में संवेदनशून्य एवं स्नेहहीन जीवन की निरर्थकता को स्वयं प्रकाश जी ने यहाँ बखूबी ढ़ंग से सामने रखा है।

निष्कर्षतः प्रस्तुत उपन्यास में भूमंडलीकरण के प्रभाव में निरंतर बदलते मानवीय मूल्यों को बखूबी चित्रित किया गया है। भूमंडलीकरण के कारण उत्पन्न उपभोक्तावाद के मायाजाल में फँसकर रोहित अपना सब कुछ खोता है। यहाँ स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति प्रतिष्ठा, लालसा और भौतिक चकाचौंध के पीछे भागते हुए इंसानियत को छोड़, संवेदनहीन एवं अकेलेपन का शिकार होता चला जा रहा है। उपन्यास के अंत में स्वयं प्रकाश जी ने इस प्रवृत्ति के विरोध में प्रतिरोध-चेतना को व्यंजित किया है। रोहित का मल्टीनेशनल कंपनियों की दुनिया त्यागकर अपने छोटे शहर में लौटकर अपने साथियों के साथ प्रेस खोलना तथा स्निग्धा का एन. जी. ओ. में शामिल होकर समाज सेवा में लीन हो जाना प्रतिरोध भाव को व्यक्त करता है। अंततः भूमंडलीकरण एवं उसके प्रभाव में परिवर्तित होते मानवीय मूल्यों को लेकर लिखे समकालीन हिंदी उपन्यासों में 'ईंधन' उपन्यास महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

संदर्भ :

१. मूक आवाज हिंदी जर्नल, (अंक-७२० १४ सितंबर २०१४), (भूमंडलीकरण की भट्टी में भस्म होते मनुष्यत्व की कथा - धर्मा रावत) (website:https://sites-google-com/site/mookaawazhindijournal/)
२. स्वंय प्रकाश, ईंधन, (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : द्वितीय संस्करण २००८) पृ. १६३-१६४.
३. स्वंय प्रकाश, ईंधन, (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : द्वितीय संस्करण २००८) पृ. ४६.
४. स्वंय प्रकाश, ईंधन, (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : द्वितीय संस्करण २००८) पृ. १३१.
५. स्वंय प्रकाश, ईंधन, (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : द्वितीय संस्करण २००८) पृ. १६८.
६. स्वंय प्रकाश, ईंधन, (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : द्वितीय संस्करण २००८) पृ. २१०-२११.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

भूमंडीलीकरण की चुनौतियॉं : संचार माध्यम और हिंदी का संदर्भ

प्रा. अनिता विश्वानाथ चौधरी
गोविंदलाल कन्हैयालाल जोशी,
(रात्रीचे) वाणिज्य महाविद्यालय, लातूर

भूमंडलीकरण ने विगत दो दशको में भारत जैसे महादेश के सक्षम जो नई चुनौतियॉं खडी की है उनमें सूचना विस्फोट से उत्पन्न हुई अफरा तफरी और उसे सॅंभालने के लिए जनसंचार माध्यमों के पल प्रतिपल बदलते रुपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें संदेह नही है की, वर्तमान संदर्भ में भूमंडलीकरण का अर्थ व्यापक तौर पर बाजारीकरण है।

भारत दुनियाभर के उत्पाद निर्माताओ के लिए एक बडा खरीदार और उपभोक्ता बाजार है। बेशक हतारे पास भी अपने काफी उत्पाद है और हम भी उन्हे बदले में दुनियाभर के बाजार मे उतार रहे है। क्योंकि बाजार केवल खरीदने की ही नही, बेचने की भी जगह होती है। इस क्रय विक्रय की आंतराष्ट्रीय वेला में संचार माध्यमो का केंद्रीय महत्व है क्योंकि वे ही किसी भी उत्पाद को खरीदने के लिए उपभोक्ता के मन में ललक पैदा करते है। यह उत्पाद वस्तू से लेकर विचार तक कुछ भी हो सकता है। यही कारण है कि आज भूमंडलीकरण की भाषा का प्रसार हो रहा है। तथा मातृबोलियॉं सिकुड और मर रही है।

आज के भाषा संकट को इस रुप में देखा जा रहा है कि भारतीय भाषाओके सक्षम उच्चरित रुप भर बनकर रह जाने का खतरा उपस्थित है, क्योंकि संप्रेशण का सबसे महत्वपूर्ण उत्तर आधुनिक माध्यम टी. वी. आपने विज्ञापनों से लेकर करोडपति बनाने वाले बहोत लोकप्रिय कार्यक्रमों तक में हिन्दी में बोलता ही है, लिखता अंग्रेजीमें ही है। इसके बावजुद यह सच है कि, इसी माध्यम के सहारे हिन्दी अखिल भारतीय ही नही बल्कि वैष्विक विस्तार के नए आयाम छू रही है। विज्ञापनो की भाषा और प्रोमोशन वीडियो की भाषा के रुप मे सामने आनेवाली हिन्दी शुध्दवादियों को भले ही न पच रही हो, युवा वर्गने उसे देशभर में अपने सक्रिय भाषाकोष में शामिल कर लिया है।इसे हिन्दी के संदर्भ में संचार माध्यमम की बडी देन कहा जा सकता है।

सूचना संचार प्रणाली किसी भी व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अंग्रेज रहे हो या हिटलर जैसे तानाशाह सबको यह मालूम था कि, सैन्य शक्ति के अलावा असली सत्ता जनसंचार में निहित होती है। आज भी भूमंडलीकरण की व्यवस्था की जान इसी में बसती है। दुसरी तरफ समाज के दर्पण के रुप में साहित्य भी तो संचार माध्यम ही है, जो सुचनाओं का व्यापक संप्रेशण करता है। साहित्य की तुलना में संचार माध्यमों का ताना बाना अधिक जटिल और व्यापक है, क्योंकि वे तुरंत और दूरगामी असर करते है। भूमंडलीकरण ने उन्हे अनेक चैनल ही उपलब्ध नही कराए है। इंटरनेट और वेबसाईट के रुप में आंतराष्ट्रीयता के नए अस्त्र शस्त्र भी मुहैया कराए है। परिणाम स्वरुप संचार माध्यमों की त्वरा के अनुरुप भाषा में भी नए शब्दो, वाक्यों, अभिव्यक्तियों और वाक्य संयोजन की विधियों का समावेश हुआ है।

एक तरफ साहित्य लेखन की भाषा आज भी संस्कृतनिष्ठ बनी हुई है तो दुसरी तरफ संचार माध्यम की भाषा ने जनभाषा का रुप धारण करके व्यापक जन स्वकृति प्राप्त की है। समाचार विश्लेषण तक में कोडमिश्रित हिन्दी का प्रयोग इसका प्रमुख उदाहरण है। इसी प्रकार पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, पारिवारिक, जासुसी, वैज्ञानिक और हास्यप्रधान अनेक प्रकार के धारावाहिको का प्रदर्षन विभिन्न चैनलो पर जिस हिन्दी में किया जा रहा है वह एकरुपी और एकरस नही है, बल्कि विषय के अनुरुप उसमे अनेक प्रकार के व्यावहारिक भाषा रुपों या कोंडो का मिश्रण उसे सहज जनस्वीकृत स्वरुप प्रदान कर रहा है। एक वाक्य में कहा जा सकता है कि संचार माध्यमों के कारण हिन्दी भाषा बडी तेजी से तत्समता से सरलीकरण की ओर जा रही है। इससे उसे अखिल भारतीय ही नही वैश्विक स्वीकृति प्राप्त हो रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक हिन्दी दुनिया में तीसरी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा थी, परंतू आज स्थिती यह है कि वह दूसरी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा बन गई है, तथा यादे हिन्दी जानने समझने वाले हिन्दीतर भाषी, देषी विदेषी हिन्दी भाषा प्रयोक्ताओं को भी इसके साथ जोड लिया जाए तो हो सकता है कि, हिन्दी दुनिया की प्रथम

सर्वाधिक व्यवहत भाषा सिध्द हो। हिन्दी के इस वैश्विकविस्तार का बडा श्रेय भूमंडलीकरण और संचार माध्यमो ने हिन्दी के जिस विविधतापूर्ण सर्वसमर्थ नए रुप का विकार किया है। उसने भाषा समृध्द समाज के साथ साथ भाषा वंचित समाज के सदस्यों को भी वैश्विक संदर्भोसे जोडने का काम किया है। यह नई हिन्दी कुछ प्रतिशत अभिजात वर्ग के दिमागी शकल की भाषा नही बल्कि अनेकानेक बोलियों में व्यक्त होने वाले ग्रामीण भारत की नई संपर्क भाषा है। इस भारत तक पहुँचने के लिए बडी से बडी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी हिंदी और भारतीय भाषाओं का सहारा लेना पड रहा है।

बाजार और हिंदी की इस अनुकूलता का एक बडा उदाहरण यह हो सकता है की पिछले पॉच-सात वर्षो में संचार माध्यमों पर हिंदी के विज्ञापनो के अनुपात में सत्तर प्रतिशत उछाल आया है। इसका कारण भी साफ है। भारतरुपी इस बडे बाजार में सब से बडा उपभोक्ता वर्ग मध्य और निम्नवित्त समाज का हैं जिसकी समझ और आस्था अंग्रेजी की अपेक्षा अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा से अधिक प्रभावित होती है। इस नए भाषिक परिवेश में विभिन्न संचार माध्यमों की भूमिका केंद्रिय हो गई है।

हम देख सकते है कि इधर हिंदी पत्रकारिता का स्वरुप बहुत बदल गया है। अनेक पत्रिकाएँ यद्यपि बंद हुई है परंतु अनेक नई पत्रिकाएँ नए रुपाकार में शुरु भी हुई है। आज हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी और हिंदीत्तर राज्यों का अंतर मिटता जा रहा है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का पाठकवर्ग तो संपूर्ण देश में है ही उनका प्रकाशन भी देशभर से हो रहा है। डिजिटल टेकनिक और बहुरंगे चित्रों के प्रकाशन की सुविधा ने हिंदी पत्रकारिता जगत को आमूल परिवर्तित कर दिया है।

इसी के साथ यह भी स्मरणीय है कि प्रकाशन जगत में भी वैश्विकरण के साथ जुड़ी नई तकनीक के कारण मूलभूत क्रांती संभव हो सकी है। विभिन्न आयू और रुचियों के पाठको के लिए हिंदी में विविध प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हो रहा है तथा मनोरंजन, ज्ञान, शिक्षा और परस्पर व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों मे उसका विस्तार हो रहा है।

रेडिओ तो हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग करनेवाला व्यापक माध्यम रहा ही है, प्रसन्नता को बात यह है कि टेलिविज़न बहुत थोडे समय के भीतर ही हिंदी माध्यम बन गया है। प्रतिदिन होने वाले सर्वेक्षण इसबात का प्रमाण है कि हिंदी के कार्यक्रम चाहे किसी भी विषय से संबंधित हो देश भर में सर्वाधिक देखे जाते है। अर्थात व्यावसायिकता का दृष्टी से हिंदी संचार माध्यमों के लिए बहुत बडा क्षेत्र उपलब्ध कराती है। यही कारण है कि अंग्रेजी के तमाम, जानकारीपूर्ण और मनोरंचनात्मक दोनो प्रकार के कार्यक्रम हिंदी में डब करके प्रसारित करने की बाढ़सी आ गई है। इससे अन्य भारतीय भाषाओं में भी उनके अनुवाद में सुविधा होती है। यह कहना न होगा कि टेलिविजन ने इस तरह हिंदी के भाषावैविध्य और संप्रेषण क्षमता को सर्वथा नई दिशाएँ प्रदान की है।

इसी प्रकार फिल्म के माध्यम से भी हिंदी को वैश्विक स्तर पर सम्मान प्राप्त हो रहा है। आज अनेक फिल्मकार भारत ही नही यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों के अपने दर्शको को ध्यान में रखकर फिल्में बना रहे है। और हिंदी सिनेमा, ऑस्कर तक पहुँच रहा है। दुनिया की संस्कृतियों को निकट लाने के क्षेत्र में निश्चिय ही इस संचार माध्यम का योगदान चमत्कार कर सकता है। यदि मनोरंजन और अर्थ उत्पादन के साथ साथ सार्थकता का भी ध्यान रखा जाए तो सिनेमा सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम सिध्द हो सकता है। इसमें संदेह नही की सिनेमा ने हिंदी की लोकप्रियता भी बढाई है और व्यवहारिकता भी।

यहॉ यदि मोबाईल और कम्प्यूटर की संचार क्रांति की चर्चा न की जाए तो बात अधूरी रह जाएगी। ये ऐसे माध्यम है जिन्होंने दुनिया को सचमुच मनुष्य की मुठठी में कर दिया है। सूचना, समाचार और संवाद प्रेषण के लिए इन्होंने हिंदी को विकल्प के रुप में विकसित करके संचार-तकनीक को तो समृध्द किया ही है, हिंदी को भी समृध्दतर बनाया है। इसी प्रकार इंटरनेट और वेबसाइट की सुविधा ने पत्र-पत्रिकाओं के ई-संस्करण तथा पूर्णतः ऑनलाईन पत्र- पत्रिकाएँ उपलब्ध करा कर सर्वथा नई दुनिया के दरवाजे खोज दिए है, आज हिंदी की अनेक पत्रिकाएँ इस रुप में विश्वभर में कही भी कभी भी सुलभ है तथा अब हर प्रकार की जानकारी इंटरनेट पर हिंदी में प्राप्त होने लगी है। इस तरह हिंदी भाषा ने 'बाजार' और 'कम्प्युटर' दोनों की भाषा के रुप में अपना सामर्थ्य सिध्द कर दिया है। भविष्य की विश्वभाषा की ये ही तो दो कसौटियॉ बताई जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है की, २१ वी शताब्दी में मुद्रित और इलेक्ट्रानिक दोनो ही प्रकार के जनसंचार माध्यम नए विकास के आयामों को छु रहे है। जिसके परिणाम स्वरुप हिंदी भाषा भी नई-नई चुनौतियों का सामना करने के लिए और - और शक्ति का अर्जन कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ :

१ भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी - डॉ. कांचन पुरी
२ भुमंडलीकरण और हिंदी - अरविन्द दास

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

भूमंडलीकरण और राष्ट्रवाद

डॉ. आरिफ जमादार
सह. अध्यापक
वालचंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय,सोलापूर

आज समृध्द स्मृति से प्रौढाव्यवस्था की नीति पर अपने व्यवहार को दर्शाने में हर कोई अपने होने को बता रहा है। आज का समय भारतीय संस्कृति की उस बात को पूरे तर्ज के साथ अभिव्यक्त कर रहीं है। जिसमें कहा गया था कि 'वसुदैव कुटुम्बकम्' अर्थात यह पूरी धरती एक परिवार के समान है और जहॉ परिवार होता है वहॉ नेतृत्व की वाणी का बहरना लाजमी होता है। परिवार का वस्तुतः अर्थ यह निकलता है कि एक खलिहान में विविध रंगो से बना हुआ एक मोहक 'गुलदस्ता', एक गुलदस्तें में सारे फूल इकट्ठेटे क्यों न हो लेकिन सबको ओड़ है अपने रौब की 'नजर हटे नहीं यही चाहत दिल में।'

आज का समय 'रेस' का है जिसे कोशीय अर्थ में भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण कहा जाता है। भूमंडलीकरण अर्थात सारे संसार में किसी एक भाव का सार्वभौतिकता से पड़ा हुआ प्रभाव है। इन्सानी जरुरते ही किसी भी जीच को उसके बड़े होने को घोषित करते है। एक समय था जब खाने के लाले थे तो अनाज (भूक को मिटाने के साधन) का नारा पूरे संसार में सरचढ बोल रहा था। समय बदलता गया, इन्सानी जरुरते जिंदगी से हटकर अपने-अपने बरताव में सीमित हो गयी। इस बदलाव को प्रकृति का सामान्य नियम मानकर अपने व्यवहार को दर्शाना मनुष्य ने अपना जीवन दर्शन बना लिया। लेकिन इस बदलाव में मनुष्य कर्मिता की एक नजर अपने आस-पास के परिवेश पर रही जिसे नाम दिया गया व्यष्टिवाद जो समय के साथ समष्टिवाद बना और आज कोशीय संपदा में एक विश्वास बना है।

जरुरते और साधन एक ही पहलू के दो हिस्से है। एक पर जहॉ इन्सानी सांसे टिकी है जो दूसरे पर सांसो की रफ्तार।

आज का समय साधनों से साध्य को साधनें का है। और साधनों का बिखराव यह प्रकृति का नियम है। जिसके कारण मनुष्य अपने जीवन में घुमक्कड़शास्त्र को अपनाता है। फलस्वरुप वह विविध जीवनियों से अपनी तुलना करने लगता है। आज अपने जीवन के साध्य को साधन में एक मात्र साधन अर्थ (पैसा) है। कोई भी एकल रहकर अपनी बंद प्रणाली में अपनी जीवनावश्यक वस्तुओं को प्राप्त नहीं कर सकता उसकी यह आवश्यकता ही एकल संप्रभुता को नष्ट कर देती है और समष्टि की व्याख्या को समझने में बल प्रदान करती है। एकल व्यक्ति अपने नीति आदर्शों से समाज के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की कभी बात नहीं कर सकता इसका कारण है कि व्यक्ति जब किसी सीमा को लाघंता है तो विनाश की ओर जाता है लेकिन, वहीं व्यक्ति समूह जब कभी सीमा से परे होती है तो नवनिर्माण की ओर जाती है क्योंकि, हर एकता का संबंध निर्माण से जुड़ा है।

भूमंडलीकरण और राष्ट्रवाद एक ही सिक्के के दो ऐसे एहलू है जिसमें एक की जीत दूसरे को प्रश्नांकित कराती है कि, वह कहॉ तक सीमित रह सकती है।

भूमंडलीकरण के समय साधनों में परिवर्तन होता नजर आता है। कभी अनाज, कभी भूमी, कभी लोग, कभी स्थान और आज अर्थ। भूमंडलीकरण का विषय इन्सानी जरुरतों के साथ रहा है। इन्सानी जरुरते इन्सान को मजबुर करती है, यह बात बिल्कुल सही है, लेकिन इन्सानी मजबूरी प्रश्नाव्यहार को अभिनीत करती है यह बड़ी खूबी है। भूमंडलीकरण में इन्सान अपने कर्म से ज्यादा अपने इच्छा को महत्व देता है, जिसके कारण मनुष्य निर्मित बंदिशे मानवी इच्छा के कारण ही ताक पर रखी जाती है। इच्छाओं को महत्व देना यह मनुष्य की अपनी भावचेतना का असर होता है। मनुष्य जीतना भी विकास क्यों न कर लें वह मानवी गरीमा तब तक नहीं छोड़ता जब तक इच्छाओं की सीमा अपनी सतह से उपर न उठ जाए। भूमंडलीकरण में मानवी सीमाओं का आकलन नहीं होता लेकिन प्रकृति जो परिवर्तनशील है मनुष्य को अपनी रफ्तार के साथ एहसास को बनाए रखने में सहयोग देती है। बाजारगठन ही भूमंडलीकरण का लक्ष्य होता है। विकासशील राष्ट्र अपने तोड़ में बाजार बनने के लिए जगह निर्धारण का मौका विकसन राष्ट्र को कभी मुहैय्या नहीं करता, जिसके कारण

विकासशील और विकसीनसील राष्ट्र अपनी-अपनी मर्यादाओं के बाद बाजार को प्रभावित करने में साधनों को नये आकार एवं प्रकार में ग्राहकों के सम्मुख लाकर ध्यानाकर्षित करने का प्रयत्न करते है। प्रकृति के विभिन्न रंगाभियनता के कारण से एक विशिष्ट क्षेत्र में मानवी गरजों की पूरी-की-पूरी जीवनावश्यक वस्तुएं कभी मुहैया नहीं होती। इसी कारण मनुष्य जीवन में घुमक्कड़ का होना आम बात बन जाती है। मानवी आवश्यकता के कारण ही आज संयुक्त राष्ट्र, विश्वव्यापार संगठन, यूरोपीय संघ जैसे अनेक प्रभावशाली संगठन मानवी आवश्यक वस्तुओं को इकट्ठा करने का काम कर रहे है। भूमंडलीकरण के वजह ही एक देहात की मामूली वस्तू विश्व पटलपर अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही है। यह भूमंडलीकरण का असर ही है कि, एक विभाषी व्यक्ति समभाषी परिवेश की तरह अनजानों के बीच में अपने व्यवहार को दर्शा रहा है।

भूमंडलीकरण का मतलब पूरी दुनिया एक मण्डी या बाजर में तब्दील करना है। अब सवाल है उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्यीय संस्कृति का क्या होगा?

मनुष्य अपने आचरण को धर्मोपरिवेश के बुनियाद पर कसता है। यथार्थ से रु-ब-रु होकर आचरण की दर्शिता ही मनुष्य का अपना 'नेशन' है। २४ जुलाई १९९१ में तत्कालीन नरसिंह राव सरकार ने उदारीकरण Literati Station की घोषणा कर दी। अर्थात 'नेशन' की समुचित व्याख्या समयोचित में बदल दी गई। उसका एक पहलू शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय का नाम सन १९९४ के संसद अधिवेशन के बाद 'मानव संसाधन मंत्रालय' हो गया। वर्तमान बाजारीकरण के जमाने में इन्सान की पहचान सिर्फ साधनों के अतिरिक्त इस्तेमाल होने लगी। आज इन्सानी जरुरतों का पुराना मंत्र बदल गया है। वह अपने से अपनों में समेटा गया है। पहले जहाँ 'अपना-अपना देख' का व्यवहार था वह आज 'अपनों का साथ अपना विकास' इस घोषार्थ में गतिमान हुआ नजर आता है।

आज भूमंडलीकरण के भागमभागी में 'नेशन' अपने सीमार्थ का विस्तृत अर्थ देता बनता है।

आज के व्यक्तिगत विकास में 'नेशन' की संरचना बदल रही है, यह एक निर्विवाद सत्य है। आर्थिक वैश्वीकरण एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार वृध्दि के कारण सकल घरेलु परिवेश की व्याख्या पूरी तरह से नये शब्दों में दर्ज की जा रही है। आज वित्तीय बाजारों और पूंजी की तेजी इतने गति से आगे परिवर्तित हो रही है कि, एकत्व केंद्रीकरण को बल मिलते जाने को देखा जा सकता है। जो राज्य कमजोर है वह अंतराष्ट्रीय निगमों की भूमिका के कारण एक राष्ट्र के दो अलग-अलग राज्यों के आंतरिक मामलों को प्रभावित कर रहे है। वर्तमान वैश्वीकरण के शोर में यह बात नोटिस करना आवश्यक है कि, आधुनिकतावाद के नाम पर पंरपरागत रुढिवाद और सांस्कृतिक मूल्यों को पार किया जा रहा है। आज वैश्वीकरण के संस्कृति ने स्कूली शिक्षा में मनोरंजन और सांप्रतिकवादी बातों से सभी क्षेत्रो को प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण के समयानुसारी चिजों ने एक कीमत पर दों देने का वायदाकर सुपर बाजारवादी परिवेश को प्रभावित एवं 'टीआरपी' तूल्य बना रही है। बाजारी सामानो से 'लॉटरी' के उम्मीद से 'जी' के प्रलोभन मुँह में जबरदस्ती से ठूँस दी जाती है, जिसके कारण 'आदत से मजबूर' बना व्यक्ति स्वभाववादी व्यावहार को दर्शाने लगता है। वर्तमान भूमंडलीकरण पूँजीवाद के सामने हमारी सारी की सारी रणनीति, आशनीति और खंडनीति असहाय नजर आते है। प्रेमजगत की सच्चाई को आर-चेतन क्रान्ति यों शब्द-बद्ध करते है-

"यह प्रेम के तरीकों पर शोध का दौर था,
देह के देवत्व पर रात-दिन काम चल रहा था
वात्सायन की एक टीका रोज बाजार में आती थी
और प्रेम प्रीति भोज में कडाहों की
तरह जगह-जगह चढ़ा हुआ था
खेल रहा था एक रहा था।"

भूमंडलीकरण का एक गूण साधारण स्वरुप हमें नजर आता है वह कि, अपने परिवेश का पूरा आकलन। 'आदमी' भूमंडलीकरण के कारण ही आज बंदिस्त से बंधन मुक्त को समझने लगा है। भूमंडलीकरण से अपने परिवेश के अर्थ को समझना बिल्कुल उस दो कप्तानों की तरह है जिसमें अम्पाइयर ने अर्थात समय ने अपना सिक्का तो उछाल दिया परंतु खूले गगन में घूमतें सिक्के ने फैसले के लिए अपनी रफ्तार को व्यक्तिजरों से अछूता रखा है। ताकि फैसला मांग और नजरें मिलकर करें।

सहयोगाभिव्यक्ति लेख

१. संग्रथन पत्रिका
२. भूमंडलीकरण वीकिपीडिया
३. साहित्यचिंतन साल्इड

भूमंडीलीकरण और हिंदी भाषा

प्रा. नयन भादुले-राजमाने
जी. के. जोशी (रात्रीचे)
वाणिज्य महाविद्यालय, लातूर

भूमंडीलीकरण ने विगत दो दशकों में भारत जैसे महादेश के समक्ष जो नई चुनौतियॉं खडी की हैं उनमें सूचना विस्फोट से उत्पन्न हुई अफ़रा-तफ़री और उसे सँभालने के लिए जनसंचार माध्यमों के पल-प्रतिपल बदलते रुपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें बिल्कुल संदेह नहीं कि वर्तमान संदर्भ में भूमंडीलीकरण का अर्थ व्यापक तौर पर बाजारीकरण है।

९० के दशक में भारत में उदारीकरण, बाजारीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अपने साथ संचार क्रांति लेकर आया, या कहना चाहिए कि संचार माध्यमों के रथ पर चढ कर ही भूमंडलीकरण ने भारत में अपना पॉव फैलाया। वर्तमान में केबल, इंटरनेट, मोबाईल के माध्यम तेजी से फैल रही है। सच है कि विज्ञापन की हिंदी सहज ही लोगों के दिल में जगह बना लेती है, लेकिन यह भाषा भूमंडलीकरण के साथ फैल रही उपभोक्ता संस्कृति की है, विमर्श की नहीं।

किसी भी भाषा के विकास और प्रचार-प्रसार में संचार माध्यमों का विशिष्ट योगदान रहा है। हिंदी इसका अपवाद नहीं है। उन्नीसवीं सदी के आखिरी तथा बीसवीं सदी के आरंभ के दशकों में हिंदी भाषा, विशेष रुप से हिंदी गद्य के विकास और परिमार्जन में हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं के योगदान का ऐतिहासिक महत्त्व है। पर पिछले दशकों में हिंदी के स्वरुप में काफी तेजी से बदलाव हुआ है। खास तौर पर हिंदी अखबारीं में, जिसकी पहुँच भारत के कोने-कोने में बढती जा रही है। ९० के दशक में तकनीक उपलब्धता, फैलते बाजार तथा सरकार की उदारीकरण की नीतियों के कारण देश में हिंदी के दर्जनों खबरिया चैनलों का प्रवेश हुआ। हिंदी अखबारों की भाषा पर इन चैनलों का खासा प्रभाव दिखाई देता है।

आगे जाकर ९० के दशक में अखबार की सुर्खियां स्पष्ट, वस्तुनिष्ठ और अभिधापरक हुआ करती थी। अखबार की सुर्खियों से खबरों का आभास अच्छी तरह मिल जाता था। अंग्रेजी के उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल होता था जो सहज और सरल हों, जिससे पूरी पंक्ति के प्रवाह में बाधा नहीं पड़ती हो। प्रकाश जोडी, राजेंद्र माथूर और सुरेंद्र प्रताप सिंह जैसे पत्रकारों ने इस दशक में ऐसी भाषा का प्रयोग शुरु किया जिसकी पहुँच हिंदी के बहुसंख्य पाठकों तक थी। इन पत्रकारों ने बोलियों और लोक से जुड़ी हुई भाषा का इस्तेमाल किया जिससे अखबार की भाषा लोगों के सरोकारों से जुड़ी।

लेकिन आल अखबारों की सुर्खियां चुटीली, मुहावरेदार और अंग्रेजी की छौंक लिए होती है। कई बार शीर्षक और खबर में तालमेल बिठाना मुश्किल हो जाता है। बजट और चुनाव जैसी महत्त्वपूर्ण खबरों को भी मनोरंजक भाषा में प्रस्तुत करने का चलन जोर पकड़ रहा है।

भाषा महज अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं है। भाषा में मनुष्य की अस्मिता स्वर पाती है। समय के साथ होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। समय के साथ होनेवाले सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनाई पड़ती है। भूमंडलीकरण के बाद हिंदी के अखबारों में भाषा का रुप जितनी तेजी से बदला है उतनी तेजी से हिंदी मानस की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना नहीं बदलति है। नतीजा यह है कि यह बदलाव अनायस न होकर सायास है। एक खास उभर रहे उपभोक्ता वर्ग को ध्यान में रखकर इस तरह की भाषा का इस्तेमाल किया जा रहा है। यह शहरी नव धनाढया वर्ग है जिसकी आय में अप्रत्यशित वृध्दि उदारीकरण, बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में हुई है। यही वर्ग खुद को इस भाषा में अभिव्यक्त कर रहा है। इस वर्ग में हिंदी क्षेत्र के बहुसंख्यक किसान, मजदूर, स्त्री तथा दलित नहीं आते। हिंदी के विद्वान-आलोचक राम विलास शर्मा ने ठिक ही लिखा है कि 'समाज में वर्ग पहले से ही होते हैं। भाषा में कठिन और अस्वभाविक शब्दों के प्रयोग से वे नहीं बनते किंतु इन शब्दों के गढ़ने और उनका व्यवहार करने के बारे में वर्गो की अपनी नीति होती है।'

हिंदी के साथ यह कोई दिनों से होता आ रहा है कि कुछ निहित राजनितिक स्वार्थो के चलते कभी इसे उर्दू,

कभी तामिल तो कभी अंग्रेजी के बरक्स खडा किया जाता रहा है। स्वाभाविक हिंदी जिसे बहुसंख्य जनता बोलती है, इसका विकास इससे बाधित हुआ। राजभाषा हिंदी को वर्षो तक सांस्कृतिक, उर्दु-फारसी शब्दों से परहेज के तहत तैयार किया गया। कागज पर भले ही राष्ट्रभाषा-राजभाषा हिंदी का विशाल भवन तैयार किया जाता रहा, सच्चाई यह है कि हिंदी की जमीन लगातार कमजोर होती गई।

राजनीतिक स्वार्थपर, सवर्ण मानसिकता तथा राष्ट्रभाषा-राजभाषा के तिकड़म में सबसे ज्यादा दुर्गति की हिंदी हुई। १९६० के दशक में उत्तर भारत में 'अंग्रेजी हटाओ' और दक्षिण भारत में 'हिंदी हटाओ' के राजनीतिक अभियान में भाषा किस कदर प्रभावित हुई इसे हिंदी कवि धूमिल ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया था।-

'तुम्हारा ये तमिल दुःख।
मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का भाई है।
भाषा उस तिकड़मी दरिंदे का कौर है।'

हिंदी की अस्मिता विभिन्न भाषाओं और बोलियों से मिलकर बनी हैं। कबीर से लेकर प्रेमचंद और बाबा नागार्जुन का साहित्य इसका दृष्टांत है। हिंदी भाषा का विकास और प्रसार इन्हीं बोलियों, क्षेत्रिय भाषाओं के साथ संवाद के माध्यम से संभव है।

सारांश :

अतः हम कह सकते है, आजादी के इतने सालों बाद भी समाज विज्ञान, विज्ञान और तकनीक जैसे विषयों पर कोई ढंग का हिंदी में मौलिक लेखन काफी ढुढ़ने पर मिलता है। देश के प्रतिष्ठित उच्च अध्ययन संख्याओं में सारा शोध अंग्रेजी भाषा में हो रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में अंग्रेजी का ऐसा हौव्वा खड़ा किया जा रहा है कि हिंदी के पक्ष में की गई किसी भी बात को दकियानूसी विचार करार दिया जाता है। निसंदेह अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय संपर्क की भाषा है। इस भाषा के माध्यम से हम एक बड़े समूह तक अपनी बात पहुँचा सकते है। इस भाषा की जानकारी भूमंडलीकरण के इस दौर में हमारी जरुरत है। लेकिन देश-विदेश में रह रहे भारतीयों की अस्मिता, उसकी असली पहचान निज भाषा में ही संभव है। तथा हिंदी देर से ही सही अंग्रेजी के गढ़ में सेंध लगाने में कामयाब हो रही है। इसका सबूत है विभिन्न वेब साइटों पर मौजूद हिंदी के अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ। इससे हिंदी का प्रसार और पहँच देश-विदेश में तेजी से हो रहा है। साथ ही हाल के वर्षों में जिस तेजी से हिंदी के ब्लॉग इंटरनेट पर फैलें है, इससे एक उम्मीद बंधनी है। सूचना, समाचार और संवाद प्रेषण के लिए इन्होंने हिंदी को विकल्प के रुप में विकसित करके संचार-तकनीक को तो समृध्द किया ही है, हिंदी को भी समृध्द बनाया है। इस तरह हिंदी भाषा ने 'बाजार' और 'कम्प्युटर' दोनों की भाषा के रुप में अपना सामर्थ्य सिध्द कर दिया है।

संदर्भ सूची :

१. ग्लोबलाइजेशन के दौर में ग्लोबल होती हिंदी - रंजना त्रिपाठी
२. भूमंडलीकरण और राजभाषा हिंदी - वीरेन्द्र कुमार यादव
३. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ : संचार माध्यम और हिंदी का संदर्भ - डॉ. ऋषभदेव शर्मा

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

'नस्ल' कहानी में बाजारवाद

प्रा.डॉ.सुचिता जगन्नाथ गायकवाड
अध्यक्षा, हिंदी विभाग,
वसुंधरा कला महाविद्यालय,
जुले सोलापुर, महाराष्ट्र।

प्रस्तावना :

भूमंडलीकरण प्रक्रिया का प्रारंभ अमरिका, जर्मनी, फ्रान्स, ब्रिटेन आदि जैसे पश्चिमी राष्ट्रों में हुआ है। भूमंडलीकरण के लिए 'ग्लोबलाइजेशन' इस अंग्रेजी शब्द का भी प्रयोग होता है। ''वैश्वीकरण एक सुघड़ शब्द है, जिसका अर्थ है, विश्व समाज का निर्माण। ऐसा समाज जिसके एक भाग में आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय तथा सांस्कृतिक घटनाएँ दुनिया के दूसरे हिस्सों में रहनेवालों के लिए भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। भूमंडलीकरण वस्तुतः संचार व्यवस्था, यातायात तथा सूचना तकनीक में हुई बहुत अधिक प्रगति का परिणाम है। इससे अधिक राजनीतिक, संस्कृति, व्यापार में न केवल वृध्दि हुई है, साथ ही व्यक्तियों, समूहों, सरकारों और विभिन्न संस्थाओं के बीच सामंजस्य पैदा हुआ है। वैश्वीकरण ने संस्थागत आधारों को स्थानीयता से उठाकर वैश्विक स्तर पर पहुँचाया है। यही वैश्वीकरण की विशेषता है।''[1]

भूमंडलीकरण यह अत्यंत व्यापक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया ने मनुष्य जीवन को अत्यंत प्रभावित किया है। इसका संबंध आज के आधुनिक मनुष्य जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि प्रत्येक क्षेत्र से है। भूमंडलीकरण के कारण विश्व में रहनेवाले व्यक्तियों में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना दृढ़ हुई है। आज का प्रत्येक मनुष्य विश्व को एक परिवार के रूप में देखने समझने लगा है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के कारण भारत का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, तकनीकी आदि प्रत्येक क्षेत्र का विकास हुआ है।

भूमंडलीकरण के कारण भारतीय लोगों के जीवन में मानवीय रिश्ते और परिवार का महत्व नष्ट होता जा रहा है। पारिवारिक रिश्तों में बाजारवाद ने प्रवेश किया है। कहानीकार संजीव 'नस्ल' कहानी के नायक संजय के पिता जमनालाल संग्रामपुर कोलियरी के ओवरमैन के रूप में काम करते हैं। संजय उर्फ कुमार उर्फ संजू का आई.आई.टी. में सिलेक्शन होते ही निम्न मध्यवर्गीय जमनालाल का कद अपने कस्बे में अचानक उँचा हो जाता है। परिवार और रिश्तेदारों के बोझसे जमनालाल गरीबी में धँसते जाते हैं। बेटे संजू को इंजीनियर बनाते समय उन्हें अत्यंत कष्ट उठाने पड़ते हैं। उनकी इस दयनीय अवस्था में उनकी कंपनी में काम करनेवाले बड़े बाबू इस स्वार्थ से संजू को कंपनी की स्कॉलरशिप दिलवा देते हैं कि आगे चलकर संजू से उनकी बेटी प्रज्ञा का विवाह किया जा सकता है। इस उद्देश्य से बड़े बाबू अपनी बेटी प्रज्ञा को शिक्षित–प्रशिक्षित कर अभियंता बननेवाले संजू के योग्य बनाते हैं और अभियंता के हिसाब से अपना पेट काट कर बूँद–बूँद संचय कर दहेज की रकम जमा करना शुरू करते हैं। संजय पाँच वर्षों में प्रथम श्रेणी में प्रथम आकर इंजीनियर की डिग्री हासिल करता है। तब संजय को हथियाने के लिए मैनेजर वर्मा साहब संजय के पीछे–पीछे दौड़ते रहते हैं। संजू के एम.बी.ए. की टेस्ट क्वालिफाई करते ही एरिया मैनेजर वर्मा साहब जमनालाल को एक बंगला एलॉट कर देते हैं। इसके पहले एक छोटी–सी भूल के लिए एरिया मैनेजर वर्मा साहब ने जमनालाल को सस्पैंड़ किया था। लेकिन संजू के साथ अपनी बेटी का रिश्ता जोड़ने के चक्कर में अब वर्मा साहब को उनमें सिर्फ अच्छाइयाँही नजर आने लगती हैं। संजय के एम.बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही उसे हथियाने की होड़ में डायरेक्टर और मंत्री भी शामिल हो जाते हैं। संजय के एम.बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने की खबर सुनने के बाद जमनालाल के सभी रिश्तेदार, पडौसी, मित्र, परिचित और कंपनी में काम करनेवाले सहकर्मी संजू के जरिए अपना लाभ कर लेना चाहते हैं।इसलिए सबका जमनालाल के घर आना–जाना बढ़ जाता है। आदर्शवादी विचारों के जमनालाल को इससे बहुत परेशानी होती है, लेकिन वे किसीसे कुछ कहते नहीं है। प्रस्तुत प्रसंग में संजीव यह दर्शाते हैं कि भूमंडलीकरण का भारतीय लोगों के जीवन पर इतना प्रभाव हुआ है कि आज आधुनिक भारतीय मनुष्य निष्पक्ष भाव से किसी की मदद नहीं कर रहा है और ना ही किसी से सच्ची मित्रता निभा रहा है।

भूमंडलीकरण के कारण शहरों का विकास हुआ है। शिक्षित युवक अपने गाँव और कस्बों मे रहने की बजाय शहरों में रहना पसंद करते हैं। कुमार संजय भी शहर में रहता है। उस पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगता है। वह कभी–कभी ही घर आता है। शुरूआत के दिनों में संजू जमनालाल के रिश्तेदारों और मित्रों से दो–चार बातें कर लेता है। लेकिन बाद में उसे इन सबसे उकताहट महसूस होती है। सभी संजू से बातें करने के लिए लालायित रहते हैं। लेकिन वह किसी से बात नहीं करता है। वह सबसे दूर रहना चाहता है। बाद में तो सिर्फ उसने लिखे पर्चों और लेखों से ही उसकी गतिविधियों का पता चलता है।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप मनुष्य आदर्शवादी सिध्दांतों को बिल्कुल महत्व नहीं दे रहा है। उसके लिए तो सिर्फ विज्ञान और टेक्नोलॉजी ही मनुष्य जीवन के लिए उपयुक्त है। संजू भी उन्हीं विचारों को अपनाता है। उसका परिचय वह विभिन्न लेख लिखकर देता है। उसका पहला लेख 'इकॉनॉमिक्स एज' पत्रिका में प्रकाशित होता है। इसमें वह भारत समेत तृतीय विश्व के लोगों के पिछड़ेपन का कारण उनके जाहिल और अकर्मण्य बने रहने की प्रवृत्ति को बताता है। जमनालाल बेटे का यह लेख पढ़कर सोच में पड़ जाते हैं कि यह लेख लिखकर संजू ने उन्हें और उनके रिश्तेदारों तथा मित्रों को कहीं उसने यह जवाब तो नहीं दिया है। संजू का दूसरा लेख 'मुक्ति' शीर्षक से विदेशी जर्नल में छपता है। जिसमें संजू यह कहता है कि मनुष्य को मुक्ति की राह विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास से मिलती है। संजू के शब्दों में, ''मुक्ति न तो मार्क्सवाद से मिलती है, न ताल्सतायवाद से, या गांधीवाद जैसे यूटोपिया से। मुक्ति की राह खुलती है, टेक्नोलॉजी के विकास से। साम्यवादी लाख बहस करें, मगर क्या उन्होने कभी इस तथ्य पर गौर किया है कि आदिम साम्यवाद तो मानव सभ्यता के शैशव काल में ही था, मगर यह साम्यवाद उन्हें मुक्ति के मार्ग पर ले जा पाया ?मुक्ति का साधन सही अर्थों में बने विज्ञान और टेक्नोलॉजी – आग का आविष्कार, नाव का आविष्कार, चाक और चक्की का आविष्कार, धातुओं की जानकारी और उपयोग आदि। युरोप में मुक्ति की दिशा में पहला बड़ा कदम पड़ा औद्योगिक क्रांति से। बाद में दूसरा बड़ा पग–निक्षेप बिजली के आविष्कार से और तीसरा इलैक्ट्रोनॉक्सि, जींस, टिशू, अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी में आए ज्ञान के विस्फोट से। ये मुद्दे न तो गांधीवाद के सीमित सोच की परिधि में आ सकते थे, न मार्क्सवाद की परिधि में, बल्किकहीं–कहीं तो ये सत्याग्रह या आंदोलन की आदिम प्रवृत्तियों से विकास के रास्ते में निषेध, प्रत्याहार या अवरोध बनकर सामने आए हैं। जंगल में एक सियार ने कहा, हुआँ...? बस, बाकी सियार ने आव देखा न ताव कर बैठे हुआँ... हुआँ... हमें यह भेड़चाल छोड़ देनी होगी।''[1] आदर्शवादी और नैतिकवादी सिध्दांतों को माननेवालेजमनालाल बेटे संजय के इस तरह के लेख पढ़कर अत्यंत असुविधा महसूस करते हैं। क्योंकि उनका सफर गांधीवाद से साम्यवाद तक तय होता है। उनके विचारों के अनुसार मानवीय मुक्ति की शुरूआत इन्हीं सिध्दांतवादी विचारों से होती है। लेकिन उनका बेटा संजय इन विचारों को त्याग देने की बात करता है।

संजय के विचार जमनालाल के रिश्तेदार और पडौसियों की समझ में नहीं आते हैं। फिर भी हर कोई संजय की प्रशंसा करतेहुए जमनालाल को यह दर्शाता है कि उसका संजू से बहुत नजदीकी संबंध रहा है।जमनालाल के ऑफिस के सहकर्मी, डायरेक्टर साहब और मित्र भी संजू की प्रशंसा करते हुए जमनालाल को यह बताते हैं कि उनके बेटे कुमार संजय के हाथों में ही देश का उध्दार लिखा हुआ है। जमनालाल बेटे की प्रशंसा सुनकर गद्‌गद होते हैं। लेकिन उन्हें हमेशा इस बात की आशंका लगी रहती है कि, कहीं सभी लोग एक साथ कुमार संजय के पास फरियाद लेकर पहुँच जाए तो क्या होगा ? जमनालाल की आशंका बिल्कुल सच साबित होती है। कुमार संजय के आने की खबर मिलते ही सभी रिश्तेदार उससे मिलने उनके घर पहुँचते हैं। कुमार संजय को रिश्तेदारों को देखकर खुशी बिल्कुल नहीं होती है। वह सबको देखकर नाराज हो जाता है। वह किसी से बात तक नहीं करता है। घर में रहने के बजाय होटल में रहने की बात करता है। माँ के कहने पर घर के एक कमरे में अकेला रहता है। संजू अपने कमरे से बाहर तक नहीं आता है। दूसरे दिन भोर के तीन बजे बंबई की फ्लाईट पकड़कर चला जाता है।

भारतीय संस्कृति भूलकर पाश्चात्य सभ्यता अपनाकरसंजय अपने घर आता है, तब वह अपनी माँ को गोद में उठाकर यह बताता है कि उसे नौकरी मिल गयी है। ट्रेनिंग के समय दस हजार तनख्वाह, जेबखर्च और फ्लैट भी मिल गया है। जमनालाल को बेटे का यह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित व्यवहार बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है। पिता को चश्मे से घूरते देख संजय अपनी माँ को धीरे से जमीन पर उतारता है।

संजू जमनालाल को 'बाबूजी' की जगह 'पापा' कहकर पुकारता है। पाश्चात्य सभ्यता का संजू पर प्रभाव देखकर जमनालाल को बहुत आश्चर्य होता है।

जमनालाल बेटे संजू से पूछते हैं, ''तुमने किसी से कायदे से बात तक नहीं की संजू ? मुझे मालूम है, तुम्हें इनके चेहरे तक देखना पसंद नहीं, मगर क्या करें, हमारी तो जड़ें इन्हीं में हैं।''[2]संजय के व्यवहार से असहमति दर्ज करते हुए जमनालाल कहते हैं, ''इतनी तकलीफें उठाकर लोग तुमसे मिलने आए। सभी हमसे आग्रह करते रहे कि एक बार संजू को हमारे यहाँ भेज दें, हमारा भी मान उँचा हो जाए। उनकी नजर में तुम्हारे लिए ऐसे उँचे आदर के भाव है और तुम्हारी नजर में ?''[3]लेकिन संजू को पिता की इस तरह की बातें बिल्कुल पसंद नहीं आती है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि उसके पास रिश्तेदारियाँ निभाने के लिए समय नहीं है। जमनालाल संजू को समझाते हैं कि संजू उनके लिए कुछ विशेष नहीं कर सकता है तो उन रिश्तेदारों की प्रेरणा और हौसला अफजाई करें। जमनालाल यह चाहते हैं कि उनका बेटा रिश्तेदारों अैर जरूरतमंद लोगों की मदद करें। वे बेटे को बताते हैं कि जब भी कोई उसकी प्रशंसा करता है तो उन्हें उस पर नाज हो आता है। संजू की प्रतिभा दीन–हीन लोगों की बेहतरी में लग जाए। जमनालाल की यह बातें संजू को बिल्कुल पसंद नहीं आती हैं। वह दूसरे ही दिन अपना सूटकेस उठाकर बंबई चला जाता है और इस घटना के बाद बहुत लंबे अंतराल से घर आने लगता है। जमनालाल और उनकी पत्नी यह चाहते हैं कि कुमार संजय उनके रिश्तेदारों की मदद करें। लेकिन कुमार संजय किसी भी रिश्तेदार की कोई सहायता करना नहीं चाहता है। उनसे किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं रखता है।

भूमंडलीकरण के युग में मेहनत और इमानदार लोगों का कोई महत्व नहीं रहा है। संजू जमनालाल के मेहनती और ईमानदार रिश्तेदारों के बारे में प्रस्तुत कथन कहता है, ''मेहनत करने से दुनिया भर से अगर किसी की दशा सुधरती तो रिक्शावाले, भोटिया–मजदूरया पत्थर तोड़नेवाले दुनिया के सबसे धनी आदमी होते, मगर क्या हैं? ईमानदारी से ही प्रतिष्ठा मिलती होती तो ईमानदार ही देश–दुनिया के टॉप पर होते, वे कहाँ हैं? इवेन हेल्थ या ब्यूटी की काउंट होती तो तमाम हेल्दी पर्सस और ब्यूटीफूल लेडीज ही सभी हायर पोस्ट पर बहाल की जातीं,मगर ऐसा है ?''[4]

जमनालाल बेटे संजू से कहते हैं कि वह रिश्तेदारों की उतनी सहायता करें जिससे कि उनके रिश्तेदार अपने पाँव पर खडे हो सकें। लकिन संजूउनकी बातें मानने से स्पष्ट रूप से मना करते हुए कहता है कि वह रिश्तेदारों को हजार–दो हजार रूपए देसकता है। उन पैसों से वे चाय–पान की गुमटी या कोई छोटा–मोटा बिजनेस शुरू करें। इससे ज्यादा वह उनके लिए कुछ नहीं कर सकता है। जमनालाल अपने बेटे का यह जवाब सुनकर अवाक् रह जाते हैं। वे सोच में पड़ जाते हैं कि जगदीशपुर में अनेक उद्योग शुरू होने के बावजूद स्थानीय लोगों को कोई रोजगार नहीं मिल पाया था। तब उन्हें सिर्फ चाय–पान की गुमटियों से ही संतोष करना पड़ा था। जमनालाल की इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि भूमंडलीकरण के कारण औद्योगिकरण का विकास हुआ है। लेकिन इससे स्थानीय लोगों को कोई रोजगार नहीं मिला है। संजू के इस व्यवहार के बाद सारे रिश्तेदार बिना किसी से कुछ पूछे चाय–पान की गुमटियाँ लगाकर बैठ जाते हैं। संजू के उपेक्षापूर्ण व्यवहार के बाद उससे किसी पंकार की कोई अपेक्षा नहीं रखते हैं। जमनालाल के रिश्तेदार उनके घर सिर्फ उनसे मिलने और उनका हालचाल पूछने ही आते हैं।

संजू का घर आना पूरी तरह से बंद हो जाता है। संजय द्वारा बहन अनीता अैर सुनीता के पतियों की कोई मदद नहीं होती है इसलिए दोनों बहनें ससुराल से मायके आकर रहने लगती हैं। वे जमनालाल से कहती हैं कि जब तक मायके से उनके पतियों के स्थायी रोजगार का कोई प्रबंध नहीं किया जाता है तब तकवे अपने ससुराल नहीं जाएँगी। दोनों बहनों का यह मानना था कि मायके की संपत्ति पर उनका भी हक है। अगर उन्हें भी संजू की तरह पढ़ाया–लिखाया गया होता तो वे भी उनके भाई संजू की तरह कुछबन जातीं। लेकिन उनके पिता जमनालाल ने बेटे संजय पर ही सारी संपत्ति लूटा दी है।

बेटियों को क्वार्टर में मुँह फुलाए घुमते देखकर जमनालाल और उनकी पत्नी अत्यंतदुःखी और परेशान रहते हैं। वे बेटे संजू से अनीता और सुनीता के बारे में बात कर कोई मनर्णय लेना चाहते हैं। लेकिन संजू का घर आना–जाना पूरी तरह से बंद हो जाने के कारण और फोन पर भी उससे जल्दी संपर्क न हो पाने के कारण जमनालाल बेटे से मिलने बंबई पहुँचते हैं। बहुत देर भटकने के बाद उन्हें संजू होटल के हेल्थ क्लब में मिलता है। संजूअचानक पिता कोदेखकर गड़बड़ा जाता

है। पिता का चेहरा देखकर उसे बिल्कुल खुशी नहीं होती है। वह इधर–उधर देखकर ड़रते हुए पिता जमनालाल से कहता है कि उन्हें बंबई आने से पहले फोन करना चाहिए था।

जमनालाल होटल के हेल्थ क्लब में ही बेटे संजू से बातें करते हैं। अनीता अैर सुनीता के बारे में पूछते हैं कि वे कब तक उनकोघर में बिठाए रखें। संजू को अपनी बहनों के भविष्य के बारे में कोई चिंता नहीं है। वह जमनालाल से बहन अनीता और सुनीता के बारे में प्रस्तुत कथन कहता है, ''जिस तरह के लल्लू–पंजू के गले में आपने बाँध दिया है। यह तो होना ही था, फिर भी वे अपने पाँवों पर खडी हो सकती हैं। स्टैनो, क्लर्की, मॉडलिंग कुछ भी कर सकती हैं।''[5] जमनालाल को संजू के मॉडलिंग जैसे शब्द गाली जैसे लगते हैं। किसी दूसरे आदमी के मुँह से बेटियों के लिए ऐसे शब्द वे बिल्कुल बरदाश्त नहीं कर सकते थे, परंतु उनका अपना ही बेटा होने के कारण वे कुछ कह नहीं पाते हैं।

भूमंडलीकरण के युग में अपनी तरक्की करने की होड़ में माता– पिता और रिश्तेदारों के लिए समय नहीं है और ना ही विवाह के लिए समय है। कंपनी में काम करनेवाले युवक विवाह को एक बोझ समझने लगे हैं। जमनालाल संजू से उसकी शादी के लिए आ रहे रिश्तों के बारे में पूछते हैं। तब संजू उन्हें यह जवाब देते हुए कहता है, ''शादी, मेरे पास वक्त ही कहाँ है कि ढोल की तरह लटकाए फिरू ?''[6]

कहानीकार संजीव यह बताते हैं कि भूमंडलीकरण के कारण लोग बिकने लगे हैं। जितनी जिसकी योग्यता होगी, उतनी ही उसकी किमत मिलती है।जमनालाल संजू से पूछते हैं कि क्या वह किसी रिश्तेदारों के लिए कुछ नहीं कर सकता है? तब संजू रिश्तेदारों की नौकरी के बारे मेंकहता है कि, ''मैं कैसे और कहाँ लगाऊँ... न पर्सनालिटी है, न इम्प्रेस करने लायक कोई दूसरी 'एबिलिटी' । यहाँ तो लोग बिकते हैं पापा! जितनी उँची योग्यता, उतनी उँची कीमत।''[7]

नाश्तें में टोस्ट, आमलेट, दही और फलों का ज्यूस लेता है। उसका सारा जीवन पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है। वह माता–पिता के लिए घर लेने की बात हाऊसिंग एजेंट से करते हुए कहता है कि उसे किस तरह का घर चाहिए। घर के साथ–साथ और कौन–कौनसी चीजें चाहिए, यह बताते हुए कहता है, ''मिस्टर अंकल, एक छोटा–सा कॉटेज... हाँ हाँ ... फोर रूम्स, रिटायर्ड पॅरेंट्स के लिए। लॉन और पांड तो हो ही, नदी...? उँ... नो नो बाढ़ वाढ़ का सिरदर्द क्यों लेना ?... पहाड़ ?... भी चाहिए? ''[8] जमनालाल बेटे की यह बातें सुनकर भौचक रह जाते हैं । लॉन, तालाब, नदी, पहाड़, जंगल ये चीजें जैसे मनुष्य के लिए खिलौने बन गए हैं। जैसे कि कहने भर की देरी के साथ ही कोई जिन्नसारी चीजें लाकर उनके सामने रखे दे। भौतिक सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने आधुनिक सुख–सुविधाएँ विकसित की हैं। उसने ऐसे अत्याधुनिक यंत्र और उपकरण विकसित किए हैं जिनके पास मनुष्य को जाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि, यंत्र खुद मनुष्य के पास चलकर आने लगे हैं। धरती, हवा, सुर्य, मौसम, दूरियाँ, काल सब संजय के गुलाम बन गए थे।संजू की आधुनिक जीवन शैली देखकर जमनालाल को बहुत आश्चर्य होता है। उन्हें लगता है कि उनका बेटा ऐसी दुनिया में जा रहा है, जो सितारों से भी बहुत ऊपर है। जमनालाल बेटे की यह नई दुनिया देखकर उसके भविष्य के प्रति चिंतित हो जाते हैं।

संजय के पास पिता से बात करने के लिए समय नहीं है। वह जल्दी–जल्दी में कपड़े पहनते हुए बातें करता है। यहाँ तक कि उन्हें नाश्ता भी जल्दी करने के लिए कहता है। जमनालाल को रूकने के लिए कहने की बजाय नाश्ता जल्दी करने के लिए कहता है। ताकि वह पिता को वापिस गाँव भेजने के लिए स्टेशन तक छोड़ सकें। किंतु जमनालाल संजू को मना करते हैं क्योंकि उन्हें बड़े बाबू की बेटी प्रज्ञा से मिलने जाना है। बड़े बाबू की बेटी प्रज्ञा विवाह के बाद उसके हस्बैंड़ के साथ बंबई शहर के कोलाबा में रहती है।जमनालाल संजू को यह बात याद दिलाते हैं कि प्रज्ञा के पिता बड़े बाबू ने दिलवायी कंपनी की स्कॉलरशिप पर ही उसने इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की है। बड़े बाबू यह चाहते थे कि वह उनकी बेटी प्रज्ञा के साथ विवाह करें। लेकिन संजू एम.बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करते ही सारी बातें भूल जाता है।वह बड़े बाबू और प्रज्ञा के बारे में कोई बात तक नहीं करना चाहता है। उसके मन में बड़े बाबू और प्रज्ञा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है। संजू जमनालाल को होटल में ही छोड़कर आफिस चला जाता है। बेटे से मिलकर वापिस लौटते समय जमनालाल को ऐसा महसूस होता है, जैसे कि वेअपने बेटे से मिलकर नहीं, बल्कि किसी प्रबंधन मीटिंग से लौट रहे हो, और वह मीटिंग बीच में ही भंग हो गयी हो।

भूमंडलीकरण के दौर में पैसों का महत्व बढ़ गया है। संजू नवमी के दिन घर पहुँचता है। तब घर में सारे रिश्तेदार यही बातें करते हैं कि संजू उसे

मिलनेवाली सालाना तनख्वाह का क्या करता होगा ? उसे कंपनी से इतनी अधिक सुविधाएँ क्यों मिलती हैं? संजू उसे मिलनेवाले इतने अधिक रूपयों का क्या करता होगा ? इसी तरह के अनेक सवालों के बारें में सभी बातें करते हैं। संजू का बहनोई अजित हिस्ट्री का टॉपर होने के बावजूद बेरोजगार है। संजू अजित को समझाते हुए कहता है ''बिजनैसमैन और कारखानों के मालिक आपके लिए शोषक हैं, पूँजीपति,जोंक, नेता क्या कहते हैं, वाईरस ऑफिसर्स, कसाई, दलाल, आपकी डिक्शनरी की सबसे गलीज गाली। इसी ठसके पड़े रहिए जिंदगी–भर, कोई पूछने तक नहीं आएगा। जमाना बदल गया है बहनोई जी, दलाल अब गाली नहीं ऑनर है।''[9]भूमंड़लीकरण के युग में नए उद्योग शुरू हुए हैं। लेकिन देश के लघु उद्योग नष्ट होते जा रहे हैं।अजित संजू से कहता है, ''सो आवर आनरेबुल साले साहब!... आपकी कंपनी के इलेक्ट्रॉनिक्स उत्पाद के चलते देशी बाजार का भट्टा बैठ गया है। हजारों लोग बेरोजगार हो गए हैं।''[10]

बाजारवाद के कारण युवकों को माता–पिता, भाई–बहन, रिश्तेदार इनका मूल्य नहीं रहा है।इनके लिए जिस कंपनी में वे काम करते हैं, वह कंपनी ही सब कुछ हो जाती है। अजित संजू से पूछता है कि क्या उसके जीवन में भी कंपनी ही सब कुछ है? परिवार और रिश्तेदारों का कोई महत्व नहीं है? संजू स्पष्ट रूप से कहता है कि उसके जीवन में अब जिस कंपनी में वह काम करता है, उसकंपनी का स्थान परिवार से पहले है। संजू के शब्दों में, ''लेकिन एक नंबर पर तो वही है। आपको मालूम है, चिप्स का फॉर्मूला और प्रबंधन के नए सूत्रों को लेकर जब मैं एक मंत्री से मिला तो देश के स्तर पर मेरी कोई सहायता करने में खुद को असमर्थ बताने लगे। हाँ उन्होंने ग्लोगल से मेरा संपर्क जरूरकरा दिया, जिसने मुझे स्पांसर किया और आज....तो मैं किसका अहसान मानू ?''[11] संजू कहता है कि जिसका नमक खाया है, उसके अहसान उसे भूलने नहीं चाहिए। अजित और बहन संजू से यह पूछते हैं कि क्या उसने नमक सिर्फ कंपनी का ही खाया है ? परिवार का भी उसकी उन्नति में योगदान रहा है। तब संजू कहता है कि उसने परिवार का भी नमक खाया है। वह परिवार के नमक का कर्ज भी अदा कर देगा । संजू की इस बात पर जमनालाल कहते हैं कि ,वे कोई सूदखोर नहीं है। उन्होंने तो सिर्फ अपना फर्ज निभाया है।

भूमंडलीकरण का यह विपरित परिणाम हुआ है कि युवक सामाजिक दायित्व को बिल्कुल भूलते जा रहे हैं। बेटे संजू से अपनी उम्मीदें बताते हुए जमनालाल कहते हैं कि उसे गाँव के विकास में अपना योगदान देना चाहिए। अपनी प्रतिभा और ज्ञान का उपयोग गाँव और कस्बे के विकास के लिए करना चाहिए। लेकिन संजू को यह सारी बातें पुरानी लगती हैं। वह जमनालाल सेकहता है, ''शेक ऑफ ओल्ड टिट–बिट्स पापा, शेक ऑफ।'' [12]

भूमंडलीकरण के युग में युवकों की नौकरी या रोजगार की स्थिरता नहीं है। जमनालाल को संजू के भविष्य की चिंता होती है। वे उसे सजग करते हुए कहते हैं ,''संजू तुम ग्लोबल के टॉप एक्जिक्यूटिव ही नहीं हमारे बेटे भी हो। अपनी राह चुनने को स्वतंत्र हो । मैं भला तुम्हे क्या हिदायत दे सकूँगा! मुझसे हर मायने में जहीन अैर काबिल हो। मुझे एक ही बात की आशंका हैकि तुम जिस अंधी दौड में शामिल हो उसमें कल को अगर तुमसे तेज–तर्रार कोई आया तो तुम आब्स्लीट टेक्नोलॉजी की तरह कंपनी के द्वारा निकाल न दिए जाओ।'' [13] संजू कहता है कि अगर कंपनी उसे निकाल दे, तो यह गलत नहीं होगा। जमनालाल कहते हैं कि इससे उसे तकलीफ होगी। संजू के अनुसार आजकल हर कोई सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए जीता है। संजू कहता है, ''तकलीफ तो होगी, मगर इसमें गलत क्या है? मैं, आप, भैया, बहनें, बहनोई, रिश्तेदार, यह कंसर्न सभी अपने लिए ही तो जीते हैं, सिर्फ अपने लिए।''[14]संजू की माँ उसे रोकने का प्रयास करती है । लेकिन वह अपनी बात पूरी कहकर ही चुप होता है। उसके अनुसार, ''यह दुनिया एक बाजार है। पहले जंगलों की तरह ग्रो करते थे लोग, जहाँ–तहाँ जैसे–तैसे। जैसे–जैसे हम सिविलाईज्ड हुए, परिवार, समाज और देश जैसे इंस्टीट्यूट बने, लोग नर्सरी... क्या कहते हैं, हाँ पौधशालाओं में ग्रो कराए जाने लगे । अब परिवार को ही लीजिए, हमारे पैरेंट्स हमें ग्रो कराकर हमें बाजार ले जाते हैं। सिस्टम आय मीन व्यवस्था उन्हें छाँटती है और वह छँटे हुए उन्नत किस्म के पौधों को अपने हिसाब से ग्रो कराती है। ग्रोथ शार्टिंग एंड देन यूटिलायजेशन... ।'' [15]संजू की माँ उसे अगली बार घर जल्दी आने के लिए कहती है। तब संजू माँ से कहता है, ''तुम धरती हो माँ, हमेशा अपने केंद्र की ओर खींचती हो... मगर हर पौधा सूरज की ओर भागना चाहता है, माँ... मैं भी । मुझे अपनी बाढ़ से मत रोको । बाकी तुम जब भी बुलाओगी , मैं आऊँगा, जरूर

आऊँगा।''[16] इसके बाद कुमार घर नहीं आता है। लेकिन वह पाँच लाख रूपए घर भेज देता है। परंतु उसने भेजे पाँच लाख रूपए जमनालाल वापिस लौटा देते हैं।

भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप कंपनी में काम करनेवाले युवकों को प्रतिस्पर्धा की दौड मेंइसके नकारात्मक परिणाम बहुत जल्द ही भुगतने पड़ रहे हैं। उन्हें अत्यंत मानसिक पीड़ा सहनी पड़ती है कि अस्पताल में इलाज करना पड़ता है। कंपनी के नुकसान के लिए कंपनी में काम करनेवाले युवकों को जिम्मेदार समझाया जाता है। संजू के साथ भी यही होता है।बड़े बाबू सिन्हा साहब जमनालाल को बताते हैं कि उनके बेटे कुमार संजय ग्लोबल कंपनी को छोड़कर दूसरी कंपनी ज्वाईन कर रहा है। इसका कारण बताते हुए बडे बाबू कहते हैं ''ये जो व्यावारिक संस्थाएँ हैं, उनकी अंदर की दुनिया में जबरदस्त होड़, जोड़–तोड़, लंगी बाजी और उखाड–पखाड़ मची है। ग्लोबल अचानक पिछड़ने लगा है, कारण चाहे इसके प्रतिद्वंद्वियों की साजिश हो या ग्लोबल का उनसे बराबरी न कर पाना, दोष मढ़ा गया आपके लड़के पर।''[17]संजू ग्लोबल कंपनी के लिए दिन–रात एक कर काम करता है। परिवार और रिश्तों से ज्यादा कंपनी को महत्व देता है। लेकिन बाजारवाद में चल रही प्रतिस्पर्धा के कारण संजू को हायपरटेंशन और नर्वस डिसऑर्डर जैसी बीमारी के कारण नर्सिंग होम में भरती होना पड़ता है। उसकी बीमारी के इलाज का खर्च ग्लोबल कंपनी की राइवल 'न्यू एरा' कंपनी करती है। कुमार संजू के हॉस्पिटलाइज्ड होने की खबर मिलते ही जमनालाल, उनकी पत्नी, बड़े बाबू और सभी रिश्तेदार संजू से मिलने बंबई निकलते हैं। बंबई वी. टी. स्टेशन पर पहुँचते ही 'न्यू एरा' कंपनी के एजेंट मिस्टर बासवानी सबकी अगवानी के लिए हाजिर हो जाते हैं। मिस्टर बासवानी इतने सारे रिश्तेदारों को एकसाथ देखकर परेशान हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने होटल के कमरे सिर्फ संजू के माता–पिता के लिए बुक किए थे। मिस्टर बासवानी की परेशानी समझकर जमनालाल उनसे कहते हैं किवे सभी अपने रहने का इंतजाम स्वंय कर लेंगे। जमनालाल और उनके रिश्तेदार देखते हैं कि संजू इंटेसिंव केअर यूनिट में भर्ती हैं। डॉक्टर किसी को भी संजू से मिलने की इजाजत नहीं देते हैं। संजू को इंटेसिंव केअर यूनिट में भर्ती देखकर सभी बहुत परेशान हो जाते हैं। सबके पस्त चेहरे देखकर डॉक्टर उन्हें बताते हुए कहते हैं कि, ''देखिए अभी तक तो उनका चेक अप ही चल रहा है। सिचुएशन आऊट ऑफ कंट्रोल नहीं है। नर्वस टेंशन ही मेन है, दवा हम कर रहे हैं, दुआ आप कीजिए, दैट मच।''[18] कुमार संजय और उसके रिश्तेदारों की बातें सुनकर संजू का इलाज कर रहे डॉक्टर मिस्टर बासवानी से कहते हैं कि ,''विश्वास नहीं होता कि अजायबघर के ये जीव कुमार के रिश्तेदार हैं।''[19] डॉक्टर की यह बात जमनालाल सुनते हैं। उन्हें रिश्तेदारों के बारे में इस तरह की बात सुनकर बहुत दुःख और पीड़ा होती है। दूसरे दिन भी जमनालाल और उनके रिश्तेदारों को संजू से मिलने नहीं दिया जाता है। जमनालाल, बडे बाबू, प्रज्ञा और उनके रिश्तेदार अस्पताल की भव्य इमारत के पीछे समुद्र के किनारे पड़ी सीमेंट की बेंचों पर बैठकर संजू के बारे में सोचते हुए दुःखी होते हैं। जमनालाल की पत्नी और उनकी विधवा बहन राधा को रोने के अलावा कुछ और सूझता ही नहीं है। सभी रिश्तेदारों की संजू के प्रति चिंता और प्रेम देखकर जमनालाल बड़े बाबू सिन्हा साहब से कहते हैं, ''वो मैं सोच रहा था कि हम सभी खासकर ये लोग क्यों आए हैं यहाँ? सिर्फ अपनी फजीहत कराने ? संजू तक को भी तो हम देख नहीं पाए, क्या तकलीफ है, जान नहीं पाए। हमारा क्या लगाव है उससे ? क्या दिया उसने... ये बेटी प्रज्ञा है, ये मेरी बहन– क्या मिला है उससे इन्हें?'' [20]

भूमंडलीकरण के परिणाम माता–पिता को भी सहने पड़ रहे हैं। संजू की माँ अपने बेटे की बीमारावस्था देखकर बहुत चिंतित होती है। फफकते हुए वह कहती है कि अगर उनके बेटे को कुछ हुआ तो वे निर्वंश ही रह जाएँगे। जमनालाल अत्यंत भावुक और उद्विग्न होकर पत्नी से कहते हैं, ''तुम किस वंश की बात कर रही हो ?... वह हमारा था ही कब ? इंसानी नस्लों के जंगल में एक पौधा ही तो था वह, जहाँ से चुन लिया। उन्होंने गोद लिया ले लिया, अपनी पौधशाला में ग्रो कराया–यह मैं नहीं संजू कह रहा था। गलत नहीं कहा उसने। अबवह उन्हीं की वंश वृध्दि करता या हमारी?''[21]जमनालाल कहते हैं, ''जो प्रतिभा परिवार, समाज, देश या दुनिया को अँधेरों से निजात दिलाने या बेहतर बनाने में लगकर धन्य होती, वह आज एक–दो बनियों का कारोबार फैलाने में जुत गई... बाकी जो बचा– जंगल है, सिर्फ जंगल!''[22] संजीव ने इस प्रसंग के माध्यम से स्पष्ट किया है कि भूमंडलीकरण का प्रकिया ने भारतीय युवकों के जीवन पर अत्यंत विपरित परिणाम हो रहे हैं। उनके परिवार और रिश्तेदारों को भी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं।

निष्कर्ष :–

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के कारण भारतीय मनुष्य का विकास हुआ है। किंतु इसके अनेक नकारात्मक परिणाम भी हुए हैं। संजीव ने प्रस्तुत कहानी में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। भूमंडलीकरण के कारण भारत में हर जगह बाजारवाद की समस्या निर्माण हुई है। शहरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता, आधुनिक जीवन प्रणाली आदि के कारण मानवीय रिश्तों में स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा, असहानुभूति निर्माण हुई है। इसका सफल चित्रण कथाकार संजीव की 'नस्ल' कहानी में हुआ है। संजीव ने 'नस्ल' कहानी में भूमंडलीकरण के कारण निर्माण हुई बाजारवाद की समस्या का अत्यंत जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है।

संदर्भ संकेत :–

1. वैश्वीकरण समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य – नरेश भार्गव, पृ. 15–19
2. दस प्रतिनिधि कहानियाँ – संजीव, पृ. 123
3. वही, पृ. 124
4. वही।
5. वही, पृ. 125
6. वही।
7. वही, पृ. 127
8. वही।
9. वही।
10. वही, पृ. 128
11. वही।
12. वही, पृ. 129
13. वही।
14. वही।
15. वही।
16. वही, पृ. 130
17. वही।
18. वही।
19. वही, पृ. 132
20. वही, पृ. 133
21. वही।
22. वही।

वैश्वीकरण - बाजारीकरण और हिंदी

डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
प्रा. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापूर,
जि. कोल्हापूर.

वैश्वीकरण प्रभुत्वशाली केंद्र का नाम है । असल में भूमंडलीकरण के केंद्र में अर्थव्यवस्था ही है । निजीकरण से कारोबार का क्षेत्र प्रभावित हो चुका है । आज के युग में भूमंडलीकरण के कारण जीवनमूल्यों में काफी बदलाव हो रहा है । भले ही आज आर्थिक तथा भौतिक उन्नती जरूर हो रही है किंतु आर्थिक समानता नहीं है । वैश्वीकरण का रथ आज के युग में रोका नहीं जा सकता है । हर घर में आज बाजारवाद दिखाई देने लगा है, मानव भी मानो एक प्रोडक्ट ही बन कर रह गया है ।

वर्तमान जगत में साहित्यिक विश्व में वैश्वीकरण, बाजारवाद, आदिवासी, दलित तथा नारी विमर्श आदि धाराओं का सूत्रपात हुआ है । वर्तमान युग यानी भूमंडलीकरण तथा प्रौद्योगिकी का युग है । सूचना प्रौद्योगिकी की पिढी डायनेमिक है । हमें यह मान्य करना होगा कि आज सारा विश्व गॉव में तब्दिल हुआ है । पलक झपकते ही सारी दुनिया की सारी जानकारी उपलब्ध होती है । अनेक रचनाकार वैश्वीकरण की चपेट में आ गये है । वैश्वीकरण यह शब्द अंग्रेजी के 'ग्लोबालाईजेशन' का हिंदी अनुवाद है ।

वैश्वीकरण भारतीयों के लिए कोई नई बात नहीं है । भारत के विभिन्न धार्मिक ग्रंथों और संतो का भाव विश्वात्मक भाव दर्शाता है । पाषाण युग से आज तक चला आ रहा है बाजार, वास्को-द-गामा का आगमन और इस्ट इंडिया कंपनी का आगमन वैश्वीकरण की संकल्पना समझने में काफी है । सन १८६५ में थियांडर लेव्होट ने सबसे पहली बार वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग किया । भारत में वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण २४ जुलाई १९९१ में आर्थिक उदारीकरण की नीति के परिणाम स्वरूप शुरू हुआ । गिरीश मिश्र का कथन बिल्कुल सही है कि, ''मावितिहास में एक नया युग शुरू हुआ है । जिसमें राष्ट्रीय सीमाएँ निरर्थक हो गई है और राष्ट्र, राज्य की अवधारणा कुडेदान में चली गई है । भूमंडलीय बाजार के तर्क कि मॉग है कि सभी देश अपने दरवाजे वस्तुओं और पूँजी के उन्मुक्त प्रवाह के खोल दें । उनके पास दुसरा कोई विकल्प नहीं ।''[१]

आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया को काफी गति मिली है । वैश्वीकरण की इस सर्वग्राही शक्ति का प्रभाव हमारी हिंदी भाषा और साहित्य पर पडा है । सच्चे अर्थो में भाषा मनुष्य को व्यवसाय, संस्कृति और राष्ट्र को भी जोडती है । समूच्चे जगत में कतिपय भाषाओं की तरह हिंदी भाषा के सामने बडी चुनौती अंग्रेजी की है । प्रशासन की दोयम स्थिति, शासन की उदासिनता और अंग्रेजी का बढता समर्थन आदि मुख्य कारण है । ''वैश्वीकरण और बाजारीकरण के इस संक्रमण काल में हिंदी अधिक फलने-फुलने की संभावनाएँ है । क्योंकि एक अरब से भी अधिक लोगों की मंडी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए सोने की खान सी है । और दुनिया की सबसे बडी इस मंडी को अपना ग्राहक बनाने हेतु इन कंपनियों को अपनी प्रिय भाषा अंग्रेजीको दूरकर हिंदी का सहारा लेना समझदारी प्रतीत हो रही है । हिंदी के नाम पर रोटियॉ सेंकनेवालों से कहीं ज्यादा हिंदी का विकास बाजारीकरण की व्यवस्था से अधिक हुआ है, हो रहा है ।''[२]

कितनी गौरव की बात है कि भारत के बाहर भी टी.व्ही. चैनल्स, इंटरनेट, ई मेल, मोबाईल आदि में हिंदी ने विशेष स्थान पाया है । विदेशो में हिंदी शिक्षा नीति का प्रसार और पत्र-पत्रिकाओं का हिंदी संस्करण की बढती लोकप्रियता साथ ही साथ हवाई जहाज की हिंदी उदघोषणा हिंदी लोकप्रियता का प्रमाण दर्शाता है । सरकार की निश्चित नीति ही हिंदी को विकसित कर सकती है सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान तथा संगणक का ज्ञान देकर अधिकांश लोगों को प्रशिक्षित किया जाए तो बदलाव तो जरूर देखने को मिलेगा । नये शब्दों का प्रयोग हिंदी में होना चाहिए किंतु हिंदी भाषा की प्रकृति में बिगडाव नहीं आना चाहिए । उल्लेखनीय बात यह है कि फ्रेंच, जर्मन, अंगेजी और

मंडारिन भाषाओं की अपेक्षा हिंदी का मंडी में बोलबाला अधिक है ।

हमें दुःख के साथ कहना पडता है कि हिंदी मनिषियों की गुटबाजी ने और मतभिन्नता की शिकार बनी है। हमें आपसी गलतफहमियों को दूर कर भारतीय विचारों को प्रसारित करने की आवश्यकता है । हिंदी भाषा संप्रेषण का बहुत बडा माध्यम है । इसके द्वारा ही लोग बडे पैमानेपर अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त कर रहे है । बाजार के कारण विश्वमन हिंदी की ओर आकर्षित हो रहा है । स्पष्ट है कि ज्ञान, विज्ञान, साहित्य और कोश आदि क्षेत्रों में हिंदी अग्रगण्य हुई है । भारत देश बहुभाषिक होने के कारण खास प्रयास करके हिंदी को समृध्द करने की नितांत आवश्यकता है ।

आधुनिक काल में विश्वबाजारवाद, वैश्वीकरण और विश्वग्राम आदि की संकल्पना को लोग स्वीकार कर रहे है । हिंदी ने आज वैश्विक रूप धारण कर सहिष्णुता का आदर्श रखा है । सत्य यह है कि अधिक मात्रा में शुध्दतावाद की भूमिका लेना हिंदी को पीछे धकेलना जैसा है । हिंदी प्रेमी, हिंदी समर्थक और हिंदी प्रचारक ने वैश्विक संस्कृति, सभ्यता का विशेष स्थान ध्यान में लेकर बहुप्रयक्त शब्दों को स्वीकृत करना चाहिए । आजकल हिंदी बोलनेवालों की संख्या निश्चित ही बढ रही है किंतु भारत के सभी निवासियों ने हिंदी का प्रयोग कर हिंदी को समृध्द करना होगा । बाजार की स्पर्धा के कारण अंग्रेजी चैनलों का हिंदी अनुवाद हो रहा है यह हिंदी के लिए महत्त्वपूर्ण बात है । प्रत्येक क्षेत्रों में हिंदी पहुँचने के कारण सभी दृष्टियों से हिंदी परिपूर्ण बन रही है । मुगल काल हो या उसके पूर्व का काल हो हिंदी के द्वारा देश के अंदर और बाहर व्यापारी व्यापार बडे पैमाने पर करते थे । भारत वर्ष में आज विश्वात्मक बाजार खुलने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्रचलित व्यावसायिकता में हिंदी विश्वात्मक बाजार के लिए सराहनीय योगदान दे रही है । ‘‘बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने कर्मचारियों को हिंदी में प्रशिक्षण देना आरंभ कर दिया है । क्योंकि वे जानते हैं कि हिंदी भाषा की सीखे बिना भारत में उनकी दाल गलेगी नहीं । जिस तरह कहा जाता है कि जिस देश पर अपना वर्चस्व स्थापित करना है तो पहले तो उस देश की भाषा को छीनना पडता है । इस तरह प्रशिक्षित कर्मचारियों को बाजार में मार्केटिंग के लिए भेजा जाता है । इन कंपनियें को अगर माल बेचना है तो उनको हिंदी भाषा को अपनाना ही होगा ।’’[३]

भारत के बाहर १८० विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन अध्यापन हो रहा है । विदेशों मे रेडियो प्रसारण में स्थानिक समालोचक हिंदी में योगदान दे रहे है । हिंदी में मौलिक समीक्षात्मक अनुदित और संपादित ग्रंथो की भरमार देश के अंदर बाहर, देखने को मिल रही है । आज अनेक विदेशी कंपनियाँ अपने स्वार्थ के लिए हिंदी के द्वारा छोटे-छोटे गाँवो तक पहुँची है । एक तरह से आज बाजारू संस्कृती का उदय हुआ है । मानवजाति के कल्याण को तिलांजली दी जा रही है । अपने लाभ हेतु किसी भी स्तर तक गिरने की मानसिकता बढ गई है। भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी के बदलते तेवर की पृष्टी सिनेमा जगत से भी होती है । सिनेमा जगत इस उद्योग के माध्यम से हॉलीवुड और बॉलीवूड का अंतराल मिटा है ।

गर्व की बात है कि विश्वस्तर पर हिंदी में अनुसंधान के साथ साथ विभिन्न विषयों पर संगोष्ठियों का आयोजन और विश्व संम्मेलनों मनाएँ जा रहे हैं । हिंदी भारतीय राष्ट्रीय एकात्मकता बढावा देनेवाला साधन है । ‘‘भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषात्मक एकात्मकता को एकता के धागे में पिरोने का कार्य करनेवाली हिंदी एकमात्र भाषा है जो अपने बलबूते पर भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी प्रयुक्त होने लगी है । विश्वभाषा में हिंदी की यह महिमान्वित स्थिति वैश्विक सत्ता को पुष्ठ कर रही है ।’’[४] हिंदी विश्व की श्रेष्ठ भाषा बनी है इसका मुख्य कारण हिंदी का विशाल शब्दभंडार है ।राजनीति को अलग रखकर हम देखे तो समूच्चे जगत् में अधिक मात्राा में लोग हिंदी समझते तथा बोलते है ।

संक्षेप में इतना कहना चाहते है कि आज वैश्वीकरण पर चर्चा करना यह काल की बहुत बडी माँग है । हिंदी का स्थान काफी महत्त्वपूर्ण है । वैश्वीकरण बाजारीकरण ने विकास के साथ साथ हिंदी भाषा को नया रूप प्रदान करने की कोशिष की है । प्रौद्योगिकी में हिंदी का ढाँचा भी आधुनिक हो रहा है । राजभाषा हिंदी को विश्वभाषा बनाने के लिए मीडिया एक उच्चतम माध्यम है । हिंदी भूमंडलीकरण की दृष्टि से आज विश्वभाषा बन गयी है, जिसका प्रयोग साहित्य के क्षेत्र के अलावा प्रयोजनपुरक क्षेत्रो के प्रयुक्त होकर विश्वसमुदाय के व्यावसायिक संगठानों की अपनी भाषा बन चुकी है ।

संदर्भ - संकेत

१. गिरीश मिश्र बाजार, समाज और भूमंडलीकरण, वाक (त्रैमासिक) अंक २ पृ. १६
२. संपा - प्रो. डॉ. माधव सोनटक्के, प्रो. डॉ. अंबादास देशमुख, वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भाषा और साहित्य, पृ. १२७
३. वही, पृ. २०
४. संपा. प्रो. डॉ. माधव सोनटक्के, डॉ. हणमंतराव पाटील, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषा तथा साहित्य का अध्ययन - अध्यापन, पृ. ४९.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

टूटते सपनों का कड़ुआ सच : जानकीदास तेजपाल मैनशन

डॉ. दीपक रामा तुपे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
दत्ताजीराव कदम आर्टस्, साइन्स एंड कॉमर्स,
इचलकरंजी—४१६११५.

आज का युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। जहाँ पर उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण की हवा बह रही है। इनमें भूमंडलीकरण की हवा पूरी सक्रियता के साथ समग्र विश्व में विस्तारित हो रही है। इसी भूमंडीकरण के कारण आज पूरा विश्व वैश्विक ग्राम में तब्दील हो गया है। भूमंडलीकरण के कारण हम एक—दूसरे के करीब तो आ चुके हैं, लेकिन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक जैसे क्षेत्र एक—दूसरे से अपरिचित हो रहे हैं। इसी परिचय की वजह से हमारा साहित्यकार भी भूमंडलीकरण के प्रभाव से प्रभावित है। हमारा समाज अन्यान्य समस्याओं से ग्रस्त है। हमारी संस्कृति पर देश—विदेश की संस्कृतियों का असर हो रहा है, जिसके कारण हमारी संस्कृतिक धरोहर बचाए रखना एक चुनौती बन गई है। अलका सरावगी लिखित 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' प्रकाशन क्रम के अनुसार पाँचवाँ उपन्यास है, जो राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा सन् २०१५ ई. में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत उपन्यास भूमंडलीकरण से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को हमारे सम्मुख रखता है और देश पर आने वाले खतरों के प्रति सजग करता है। इस उपन्यास की कथा कलकत्ता के सेंट्रल ऐवन्यू स्थित 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' नाम की अस्सी परिवारों की एक खड़ी इमारत के इर्द—गिर्द घूमती है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक जयगोविंद सन् १९७० ई. के दशक में कोलकाता के जादवपुर विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करता है और पिताजी एडवोकेट बाबू उन्हें अमेरिका के मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी से कम्प्यूटर इंजीनियरिंग की मास्टर डिग्री करने भेजते हैं। बेटे जयगोविंद को अमेरिका भेजने के लिए माँ का विरोधी है, लेकिन पिता के आग्रह से वह अमेरिका में कम्प्यूटर की मास्टर डिग्री करता है। अमेरिका में सात साल बिताकर जयगोविंद कोलकाता लौट आता है और वह न इधर का रहता है और न उधर का। जयदीप हिंद मोटर कंपनी में नौकरी जरूर प्राप्त करता है, मगर टिक नहीं पाता। इस कदर एडवोकेट बाबू और माँ का दिल टूट जाता है। उसके बाद स्टील ट्रेडिंग कंपनी शुरू करता है, मगर उन दिनों स्टील खरीदना और बेचना गैरकानूनी था। परिणामस्वरूप उसे जेल जाना पड़ता है। जेल का मामला रफा—दफा करने के बाद वह व्यासजी की मदद से वह राजारामबाबू का ए. डी. सी. बनकर रह जाता है यानी राष्ट्रपति के पीछे खड़ा रहने वाले सुदर्शन या रोबोटनुमा चौकन्ना व्यक्ति की तरह। राजाराम बाबू का हर काम वह करता रहता है। दिल्ली मंत्रालय सहित हर जगह वह अपनी पहुँच बना देता है। राजाराम बाबू से छुटकारा पाने के बाद उसका दोस्त प्रीतम भंन्साली का कोलकत्ते स्थित बेहाला की जमीन खाली करने का काम उसके पास आता है। बेहला के सबसे बड़े मस्तान दिवाकर घोष की मदद से बेहाला की जमीन लगभग खाली कर कई लोगों को बेघर बना देता है, मगर एक बुढ़िया वहाँ से जाने के लिए तैयार नहीं होती। उस बुढ़िया के पास दूर का भतीजा रहता था। दिवाकर ने भतीजे की मदद से नींद की गोली खिलाकर उसे इस दुनिया से बेघर कर दिया। इधर आफताब हुसैन ने कॉरपोरेशन के चीफ इंजीनियर की सिफारिश पर जानकीदास तेजपाल मैनशन को गिरा दिया और जयदीप को बेघर कर दिया। अपने को बेदखल किए जाने

की पीड़ा दूसरों को बेदखल करने में आड़े नहीं आती। "इधर बुढ़िया भागी, इधर जयदीप। एक ही रात में दोनों बेघर हो गए थे। ...बेदखल होना और बेदखल करना एक साथ होते ही है। यह तो जीवन का शाश्वत सत्य है।"[1] संयोग की बात यह है कि किसी को बेदखल करना या बेदखल होना एक ही सिक्के दो पहलू है। लेखिका अलका सरावगी ने जयदीप के माध्यम से जीवन के इस शाश्वत सत्य उजागर कर दिया है।

आधे उपन्यास में वह अपना जीवन जयदीप के रूप में जीता है और आधे उपन्यास में बड़े बाजार को नेशन स्टेट से रीयल इस्टेट बनाने की यथार्थता में जीता है। 'विडंबना यह नहीं है कि जयगोविंद का जीवन जयदीप से असम्पृक्त है बल्कि दोनों को अलग करना मुश्किल है और टेढ़ी खीर भी।' फर्क यह है कि वास्तविक आत्मकथा लिखने के प्रयास में वह बार—बार अपने आपको बचाने की कोशिश करता है, जो अपने ही लिखे को सही नहीं मानता। इस क्रम में आजादी के बाद इस देश की जवान पहली पीढ़ी को मिले धोखे और नाकामयाबी सिस्टम की दास्तान अमेरिका के वियतनाम—युद्ध से लेकर विकीलीक्स के धोखे तक फैली है। जयगोविंद के नए. आर. आई. मित्र हैं, जो इंफेक्शन के डर से इंडिया नहीं आते और वह लौटने के लिए तड़पता रहता है। जयदीप का बेटा रोहित, जो विदेश में पढ़कर आया है वह इंडिया को चिडियाघर कहता है। इस चिडियाघर के कोलकाता शहर में जानकीदास तेजपाल मैनशन नामक इमारत की वास्तविकता मेट्रो की सुरंग लगाने से ढहने और ढहाए जाने में है। इस इमारत को बचाने के लिए जयगोविंद जी—जान से प्रयास करता है। इसके लिए वह मेट्रो—पीड़ित बंधु एसोसिएशन प्रेसिडेंट का अध्यक्ष भी बन जाता है। यह इमारत अपने देश का प्रतीक है। यह इमारत गुजरती बस की आवाजाही से हिलता रहता है; जिसका गिर जाना तय है। "सड़क पर गुजरती हर बस के साथ हिलता 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' एक नया अर्थ—संकेत है—पूरे देश का, जिसका ढहाया जाना तय है। राजनीति, प्रशासन, पुलिस और पूँजी के बीच बिचौलियों का तंत्र सबसे कमजोर को सबसे पहले बेदखल करने में लगा हुआ है।"[2] स्पष्ट है कि आज राजनीति, प्रशासन, पुलिस और पूँजीपति 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' की तरह देश को ढहाने में तुले हुए है, जिसे बचाना एक चुनौती बन गई है, लेखिका अलका सरावगी देशवासियों से इसी चुनौती से अवगत कराना चाहती है। उपन्यास सिर्फ विस्थापन की समस्या ही नहीं बल्कि अंडरवर्ल्ड गैरकानूनी ढंग से धन कमाने, सौदेबाजी, जुगाड़ की दुनिया, नेशन स्टेट, रियल इस्टेट, नाकाम सिस्टम की दास्तान, अमेरिका के वियतनाम—युद्ध से लेकर विकीलीक्स के धोखे तक कई भूमंडलीय मसले हैं, जो पाठक सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं। राजनीति, प्रशासन, पुलिस, नक्सली और पूँजी के बीच के बिचौलियों का तंत्र सबसे कमजोर लोगों को जानकीदास तेजपाल मैनशन से अर्थात् देश से पहले बेदखल करने में तुले हुए है। लेकिन नायक जयदीप उसे बचाना चाहता है। यहाँ के अंडरवर्ल्ड गैरकानूनी ढंग से धन हड़पने, सौदेबाजी और जुगाड़ की दुनिया से पैसे ऐंठकर देश को ढहाने में लगे हुए है। इस दुनिया के कई पात्र हमारे जाने हुए है, लेकिन हम नहीं जानते कि वे किस हद तक हमारे जीवन को चलाते हैं और कब हमें अपने में शामिल कर लेते हैं। दूसरा शाश्वत सत्य यह भी है कि "क्या दिया है आजादी ने? क्या दिया नेहरू की सड़ी हुई योजनाओं ने? आजादी के पास खाने के लिए भरपेट रोटी नहीं है और ये लोग लोकतंत्र का बाजा बजाकर हमें गूँगा—बहरा रखना चाहते हैं। जब पब्लिक अनाज की दुकानों पर हमला करके उन्हें लूटेगी, तो ये लोग उसे बंदूक की गोली खिलाएंगे। उसके लिए इनके पास पैसे हैं। गोली के लिए पैसे नहीं..."[3] स्पष्ट है कि हमारी आजादी के पास खाने के लिए भरपेट रोटी नहीं है, गोली के लिए पैसे नहीं है,

मगर लोकतंत्र के नाम पर बंदूक की गोली खिलाई जाती है। यही भूमंडलीय शाश्वत सत्य है।

इस दौरान उपन्यास में जयदीप की माँ तिरबेनीबाई, एडवोकेट बाबू, पत्नी दीपा, बेटा रहित और सुमित, प्रेमिका मिशेल, हर्षद मेहता, समर शुक्ला, रमेश खेतान, गोवर्धन दास, राधेश्यामबाबू उर्फ राजारामबाबू, मिंटू चौधरी, समरेंद्र किल्ला उर्फ सैमकी, ज्योतिमर्य गुप्ता, जयंत भाई, नक्सली नेता देवनाथ मुखर्जी, जतींद्र मोहन, नेताजी सुभाषचंद्र बोस के विचारों का अनुयायी शांतनु बैनर्जी, ऊषा अय्यर उफ ऊषा उत्थुप, मजदूर नेता अशोक तिवारी, राजीव मिश्रा, दीपंकर सेन, प्रीतम भंसाली, सिनियर बिडला, आर. एन. मुखर्जी, असीम चटर्जी, शेखर रतन, जादवपुर विश्वविद्यालय के कुलपति गोपाल सेन, अफताब हुसैन, राजू बंसल, विमल कोठारी, प्रियरंजनदास मुंशी, दरबान तिवारी, विजय जैन, सुमेधा बने, बालानंद पंडित, व्यास आदि पात्रों की छोटी–छोटी कथाओं के माध्यम से भूमंडलीय मुद्दों को उठाकर उपन्यास को गति देने में सफल रहें हैं। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल है। संवाद बहुत ही कम और संक्षिप्त है। आजादी की पूर्व स्थिति और आजादी के बाद का काल का माहौल प्रस्तुत में अंकित है। भाषा सीधी, सरल, सरस है, लेकिन बंगाली के प्रभाव से प्रभावित भी है। साथ ही भाषा में अंग्रेजी शब्दों की भरमार दिखाई देती है जो भूमंडलीकरण का ही प्रभाव मानना होगा। उपन्यास का शीर्षक 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' समर्पक है। जिस तरह जानकीदास तेजपाल मैनशन गिरने की स्थिति में है, उसी प्रकार अपने देश का सुनहरा भविष्य भी विनाश की कगार पर है, जो बिलकुल टूटते सपनों का कडुआ सच है। लेखिका प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से विनाश की ओर जा रहे देश को बचाने का संकेत देती है। जानकीदास तेजपाल मैनशन के माध्यम से हमारे पुराने मूल्य ध्वस्त होते जा रहे हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण के प्रभाव में हमारे पुराने मूल्य, साहित्य, संस्कृति, हमारी धरोहर बचाने की बहुत बड़ी चुनौती है। आज हमारे देश की राजनीति, प्रशासन, पुलिस व्यवस्था, नक्सली और पूँजीपति, आतंकवादी, बिचौलिए हमारा लोकतंत्र, जानकीदास तेजपाल मैनशन से अर्थात् देश से बेदखल करने में तुले हुए हैं। जानकीदास तेजपाल मैनशन हमारे देश का प्रतीक है। यह घर यानी हमारा देश है और यह घर जिन समस्याओं से जूझ रहा है उन्हीं समस्याओं से आज हमारा भारत देश जूझ रहा है। इसी कारण जानकीदास तेजपाल मैनशन का भविष्य खतरे में पड़ा हुआ है यानी देश का भविष्य खतरे में पड़ा हुआहै। अंडरवर्ल्ड गैरकानूनी ढंग से धन हड़पने, सौदेबाजी और जुगाड़ की दुनिया से पैसे ऐंठकर देश को ढहाने में लगे हुए है। इस दुनिया के कई पात्र हमारे जाने हुए है, लेकिन हम नहीं जानते कि वे किस हद तक हमारे जीवन को चलाते हैं और कब हमें अपने में शामिल कर लेते हैं। आज भूमंडलीकरण के कारण उत्पन्न समस्याओं के चलते हमारी संस्कृति खतरे में पड़ गई है। सांस्कृतिक धरोहर बचाए रखने के लिए हमारे साहित्य में न्याय, समता, बंधुता जैसे मानवीय मूल्य का संवहन होना जरूरी है।

संदर्भ संकेत:

१.अलका सरावगी, जानकीदास तेजपाल मैनसेन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–२०१५, पृष्ठ–१८४

२. वही, मलपृष्ठ से उद्धृत।

३.http://aajtak.intoday.in/story/review-of-alka-saraogis-novel-jankidas-tejpal-mansion-by-suresh-kumar-1-821676.html

Volume No. 5 Special Issue No.22	भूमंडलीकरण और हिन्दी साहित्य	ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

समकालीन हिंदी कविताओं में भूमंडलीकरण एवं युगबोध

व्यंकट बा. धारासुरे

शोधार्थी : हिंदी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय,हैदराबाद

समकालीन हिंदी कविताओं ने भारतीय व्यवस्था के साथ यहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को पूरी तरह प्रभावित ही नहीं किया है,बल्कि बदल भी डाला है ।सन् 1990 के बाद आयी आर्थिक उदारीकरण की नीति ने जिस तरह से समूचे भारत को बाज़ार में बदल दिया है यह इस शताब्दी की एक बड़ी सांस्कृतिक दुर्घटना है। यहीं से उपजे भूमंडलीकरण के दौर ने हमें एक ऐसे रास्ते पर धकेल दिया है जहाँ से पीछे लौटने का विकल्प हमारे पास नहीं है, खीजते, गिरते, लड़खड़ाते हम उसी रास्ते पर आगे बढ़ते रहने के लिए मजबूर हैं। अभी तक हमने आधुनिकता को ठीक ढंग से समझा भी नहीं था कि कब हम उत्तर आधुनिकता में उतर गये पता भी नहीं चला। बाजारवाद ने हमें केवल उपभोक्ता बनाकर छोड़ दिया है जिसके सामने बड़े-बड़े लोकतांत्रिक देश घुटने टेक चुके हैं ।लोकतंत्र के चारों खम्बे आज लूट,अन्याय और भ्रष्टाचार की गिरफ्त में पड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार मनुष्य विरोधी परिवेश की व्याप्ति लगातार बढती जा रही है। ऐसे में साहित्य से अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक अवमूल्यन के दौर में मोर्चा लेकर समाज को नेतृत्व प्रदान करे।

आज साहित्य की रचना बड़े पैमाने पर हो रही है। ढेर सारी पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। कविता, कहानी, आलोचना, लेख, रिसर्च खूब प्रकाशित हो रहे हैं, किताबें प्रकाशित हो रही हैं, साहित्यकारों को पुरस्कार और सम्मान मिल रहे हैं, लेकिन इनका समेकित असर बहुत कम दिखाई पड़ रहा है। एक रचना रत समय का यह रचना विरोधी माहौल अत्यंत ही दुर्भाग्य पूर्ण है। और देखा जाये तो यह दुर्भाग्य कविताओं के मामले में थोडा ज्यादा ही है। आखिर क्यों इस तरह का प्रचार किया जा रहा है कि 'यह समय कविता का नहीं है', लोग कविता नहीं पढ़ते, कविता की किताबें नहीं बिकती, नए लोगों को आकर्षित और प्रेरित करने की इनकी क्षमता क्षीण हो गयी है आदि आदि। जबकि कविता के विरोध में इस तरह की जितनी भी बातें की जा रही हैं केवल सच वही नहीं है। वास्तव में देखा जाये तो अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में कविता अधिक संप्रेषणीय होती हैं। कम शब्दों में ज्यादा असर करने की क्षमता जितनी कविता में है वह अन्य विधाओं में दुर्लभ है।

समकालीन हिंदी कविता की संवेदना को समझने के लिए हमें तत्कालीन परिवेश, विचार, भावबोध आदि की संक्षिप्त जानकारी कर लेना समीचीन होगा। इस दौर पर जब मोटी नजर से देखते हैं तो हमें पूंजीवाद का फैलाव बढ़ता दिखाई देता है। भारतीय राजनीती में विभिन्न परिवर्तन जिसमे उदारीकरण की नीतियाँ, निजीकरण, सत्ता गठबंधन आदि का बोलबाला नजर आता है। इसके साथ ही आतंकवाद का बढ़ता दौर, भ्रष्टाचार के मामले, साम्प्रदायिकता का माहौल भी इस दौर में कुछ अधिक ही दिखाई पड़ता है। इन सब की छत्रछाया में हमारे समाज के मानवीय मूल्यों का पिछड़ना इस दौर की प्रमुख स्थितियां रही हैं। व्यक्ति किस तरह से एक मशीन में तब्दील होता जा रहा था तथा उसकी ज़िन्दगी उत्तर-आधुनिकता की दौड़ में किसी अंतहीन दिशा में भागी जा रही थी यही इस दौर में प्रबल रूप में दिखाई देता है ।इस प्रकार इस दौर में जीवन दृष्टि, मूल्य बोध, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक क्षेत्रों में जो अभूतपूर्व परिवर्तन आयें उन्ही पर एक दृष्टि भूमंडलीकरण के विशेष प्रभाव में डाली जा सकती है।

समकालीन हिंदी कविताओं ने भूमंडलीकरण के इस दौर की विडम्बनाओं को गहराई से पकड़ने की कोशिश की है। इस दौर की आंतरिक जटिलता तथा उनसे उभरने की जिजीविषा यहाँ व्यक्त हुई है। इस समय त्रिलोचन, कुंवर

नारायण, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, अशोक वाजपेयी, नरेन्द्र मोहन, प्रताप सहगल आदि पुराने कवियों की पीढ़ी तथा चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु खरे, भगवत रावत, मंगलेश डबराल, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, उदय प्रकाश, राजेश जोशी, आदि की बीच वाली पीढ़ी एवं कुमार अम्बुज, अष्टभुजा शुक्ल, बोधिसत्व, ओमप्रकाश वाल्मीकि, एकांत श्रीवास्तव, नीलाभ उपाध्याय, हरिश्चंद्र पाण्डेय, स्वप्निल श्रीवास्तव, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, निलेश रघुवंशी, गगन गिल, कीर्ति चौधरी आदि की नई पीढ़ी काव्य सृजन में सक्रिय रही है। इन कवियों के इस दौर के कुछ महत्वपूर्ण काव्य संग्रहों में भूमंडलीकरण के साथ साथ उस समय में समस्त युगबोध की इन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को पकड़ा जा सकता है। सामयिक दृष्टि से यह काल राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय उथल-पुथल से भरा था। सभी स्तरों पर इस दौर में बड़े क्रन्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। नब्बे के दशक में भारत में धार्मिक एवं फासिस्ट शक्तियों का प्रवेश हुआ। धार्मिक साम्प्रदायिकता एवं आतंकवाद के उन्माद में संपूर्ण देश का वातावरण विषाक्त हुआ। सत्ता परिवर्तन के कई कीर्तिमान स्थापित हुए। सूचना तकनीकी, मीडिया विस्फोट, और भ्रष्टाचार के कारण मानवीय मूल्यों में गिरावट आई। साहित्य सतर पर जहाँ हिंदी की विभिन्न विधाओं में अपने समय समाज संवेदनाओं को मुखरित करती हुई रचनाएँ आई वहीं कविताओं ने भी उस युगबोध की पहचान की। इस दौर की हिंदी कविताओं ने मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का चित्रांकन किया जिसमे ग्रामीण एवं नगरीय जीवन बोध, आम आदमी, दलित, स्त्री जीवन, राजनैतिक अस्थिरता, भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद की स्थिति, नव साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद का बढ़ता स्वरुप, सूचना प्रोद्योगिकी तथा उत्तर आधुनिकता का बढ़ता सांस्कृतिक वैचारिक दबाव आदि को देखा जा सकता है।

इस दौर की विशेषता यह रही है कि समाज और जीवन में प्रगति की दिशा में बदलाव की प्रवृति सक्रिय है। इसका असर इस दौर के कवियों पर है और ये कवि इसकी सम्भावना भी दिखाते हैं। ये सभी अपने ढंग से समाज के इस युगबोध और उसके अंतर्विरोधों को व्यक्त करते हैं। कविता के इतिहास से परिचित लोग जानते हैं कि एक ही समय में लिखने वाले कवियों की कविता एक ही तरह की नहीं होती, उनके भावबोध अलग भी हो सकते हैं क्योंकि वे उस समय को अलग-अलग स्थिति से और कोणों से भी देखते हैं। यह भी होता है कि यथार्थ के व्यापक फैलाव में अलग-अलग वस्तुओं,दृश्यों,घटनाओं,आदि को देखते और ग्रहण करते हैं किन्तु इस दौर की कविताओं में भूमंडलीकरण और समकालीन जीवन के व्यापक फलक उभरे हैं जो समग्रत: एक प्रवृति मूलक दिशा में आगे बढे हैं ।भूमंडलीकरण से उपजी बाजारवाद की स्थिति को विभिन्न कवियों ने अपनी वाणी दी है। 'अपने हिस्से में लोग आकाश देखते हैं' शीर्षक कविता में विनोद कुमार शुक्ल लिखते हैं-

"अपने हिस्से में लोग आकाश देखते हैं /और पूरा आकाश
देख लेते हैं ...
अपने हिस्से की भूख के साथ/सब नहीं पाते अपने हिस्से का
पूरा भात
बाजार में जो दिख रही है /तंदूर में बनती हुई रोटी
सबके हिस्से की बनती हुई रोटी नहीं है
जो सबकी घड़ी में बज रहा है /वह सबके हिस्से का समय
नहीं है।" [1]

बाजारवाद के इस दौर में केवल पैसे की ही अहमियत चारों तरफ फैली हुई है। यदि जेब में पैसे हैं तो व्यक्ति की कीमत है अन्यथा वह इसके अभाव में खुद को हीन महसूस करता है। 'जेब में सिर्फ दो रूपये' शीर्षक कविता में कुमार अम्बुज कहते हैं-

"घर से दूर निकल आने के बाद अचानक याद आया
कि जेब में हैं सिर्फ दो रुपए ...
महज दो रूपये होने की निरीहता बना देती है निर्बल
जब चारों तरफ दिख रहा हो ऐश्वर्य।" [2]

इसी प्रकार हर तरफ बाजार की भयानक स्थिति को देखकर भगवत रावत भी लिखते हैं-

"जो भी खुली जगह दिखाई देती है कहीं
कुछ दिनों बाद निकलों वहां से तो पता चलता है
उस जगह भी खुल गयी है कोई/ दुकान[4]

इस प्रकार बाजारवाद की इस भयानक स्थिति ने किस प्रकार हमारे जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक विरासत को खतरे में डाला है ये विडंबनायें इस दौर की कविताओं में व्यक्त हुई हैं। हमारे विश्वास और स्मृतियाँ रातों रात किस प्रकार पुराने पड़ते जा रहे हैं इस समय के काव्य में दिखाई देते हैं। कुमार अम्बुज की ही एक कविता 'किवाड़' शीर्षक में इस अनुभूति को गहन रूप में पकड़ा जा सकता है –

"ये सिर्फ किवाड़ नहीं हैं
जब ये हिलते हैं / माँ हिल जाती है...
मोटी सांकल की/ चार कड़ियों में
एक पूरी उम्र और स्मृतियाँ/ बंधी हुई हैं
जब सांकल बजती है / बहुत कुछ बज जाता है घर में...
जब ये नहीं होंगे / घर
घर नहीं होगा।"[3]

इसके साथ ही न केवल भूमंडलीकरण के इस युग ने हमारे पारंपरिक मूल्यों को ही प्रभावित किया है बल्कि हमें अपनी जड़ों से ही उखड़ने से मजबूर कर दिया है।मशीनी युग में मानव केवल एक यंत्र बनकर रह गया है। वह रोजगार की तलाश में इधर से उधर भटकने के लिए मजबूर हुआ है क्योंकि उसके पारंपरिक खेती और घरेलू लघु उद्योगों की जगह बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने ले ली है और वह उसमे एक साधारण औजार बनकर रह गया है। और केवल एक व्यक्ति ही नही बल्कि उसके साथ उसका पूरा समाज ही अपनी जड़ों से उखड गया है। इस स्थिति को अरुण कमल ने अपनी 'यात्रा' शीर्षक कविता में बड़े ही मार्मिक रूप में व्यक्त किया है जब वह रेल यात्रा में एक पंजाबी युवक से उसके कलकता जाने के विषय में पूछते हैं और जवाब में अपनी जड़ों से विस्थापन की इस गहरी मार्मिक स्थिति से रूबरू होते हैं –

"पंजाब तो बहुत ही खुशहाल है निहाल सिंह
सुनते हैं लोग वहां दूध और मठे से तर हैं निहाल सिंह
फिर तुम क्यों जाते हो पश्चिम बंगाल् निहाल सिंह
कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन उगे / मिट्टी बन जाए वहीँ
पर दोमट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर तरबूज का
जहाँ निभे जिंदगी वहीं घर वहीं गाँव।"[5]

पूंजी वाद के बढ़ते चरण से भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई ।इसका उद्देश्य था बाजारवाद को बढ़ावा देना और मनुष्यों को बाँटना तथा समता की जगह असमानता और प्रेम की जगह द्वेष फैलाना । बाजारवाद में मानवीयता और नैतिकता के लिए जगह नहीं होती । यहाँ व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता है। पूंजीवाद समाज बिना इर्ष्या द्वेष के चल नहीं सकता । इस संबंध में एजाज अहमद लिखते हैं–" भूमंडलीकरण की मूल विचारधारा समानता नहीं है-हो नहीं सकती; यह असमानता है। किसी साझा मकसद या साझा स्वप्न के लिए कोई सहयोग नही; मगर भिन्न-भिन्न लक्ष्यों के लिए, अनन्त दु स्वप्नो में फूटती व्यक्तिगत या सामूहिक प्रतियोगिता।"[6] इस तरह विगत वर्षों की तुलना में कविता के क्षेत्र में कतिपय महत्वपूर्ण काव्य संग्रहों का प्रकाशन हुआ । समसामयिक घटनाएँ पूर्वतः चलती रही । साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, हिंसा, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, उपभोक्ता वाद आदि के संकट गहराते गये जिसे तत्कालीन रचनाकारों ने इसे चुनौती के रूप में लिया।

इस प्रस्तुत विषय का सरोकार समकालीन कविताओं भूमंडलीकरण से है। प्रत्येक युग में साहित्य के नए विकास रूप उसके पूर्व रूपों के मूल्यांकन को प्रभावित करते रहते हैं इसलिए आज की कविताओं में बदले युगबोध को ठीक तरह से पहचानने के लिए उसके ठीक पीछे के युगबोध पर दृष्टी डालना आवश्यक हो जाता है ।सन् 1990 के दौर में जो नया सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ बन रहा था उसमे भूमंडलीकरण ने जो हलचल पैदा की उसे इक्कीसवीं शताब्दी के के परिप्रेक्ष्य में पहचानना आवश्यक है। इस प्रकार हिंदी कविता के क्षेत्र में आज इसे समग्रतया परखना जरुरी प्रतीत होता है।

संदर्भ संकेत:

1. प्रतिनिधि कविताएँ, विनोद कुमार शुक्ल, सं. अरविन्द त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 93
2. प्रतिनिधि कविताएँ, कुमार अम्बुज, सं. विष्णु खरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, : 75
3. सच पूछो तो, भगवत रावत, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 61.
4. प्रतिनिधि कविताएँ, कुमार अम्बुज, सं. विष्णु खरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ : 23.
5. अपनी केवल धार, अरुण कमल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृति संस्करण2012,पृष्ठ : 13.
6. आलोचना (त्रैमासिक) जुलाई-सितम्बर 2001,सं. परमानन्द श्रीवास्तव, पृष्ठ 13.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com